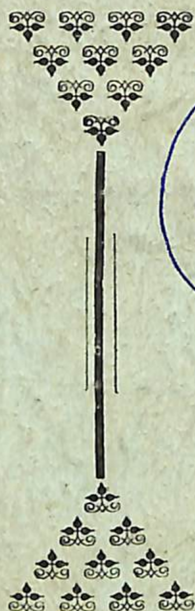
महाकाल विरचित-

कर्पूरस्तवराजस्य

रुचिरा व्याख्या



रचयिता

आचार्य श्री सदाशिव दीक्षित

श्री :

रुचिरा

श्री महाकाल विरचित-कर्पूरस्तवराजस्य

व्याख्या

रचयिता

आचार्य श्री सदाशिव दीक्षितः

No. 36

प्राप्ति स्थान

मोतीलाल बनारसीदास

संस्कृत पुस्तकालय

पो० बा० नं० ७५ नैपाली खपड़ा

वाराणसी (उ० प्र०)

प्रकाशक—
आचार्य श्री सदाशिव दीक्षित

मूल्य ८)

मुद्रक



विषय-सूची

चित्र-सूची

संस्कृत तथा हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित सुप्रसिद्ध समालोचक

सुकवि एवं नाटककार

आचार्य

श्री सदाशिव दीक्षित विरचित

कतिपय अमूल्य ग्रन्थरत्न

i संस्कृत में स्तोत्र एवं पूजन—

(१) श्री शम्भु पञ्चाशिका, (२) शिवशतकम्, (३) पूजनपद्धति

ii संस्कृत में काव्य एवं महाकाव्य —

(१) गरलपानम्, (२) शङ्खचूड़वध-काव्यम्, (३) गान्धिविजयः, (४) कामिनी-काव्यम्, (५) पद्मावती-चरितम्।

iii संस्कृत में नाटक—

(१) सरस्वती, (२) पाणिनिः, (३) कुसङ्गतिः, (४) निर्वाचननिर्बन्धः

iv संस्कृत में टीका ग्रन्थ —

(१) सुधा (रसमञ्जरी टीका), (२) प्रसादः (काव्य प्रकाश टीका), (३) वृन्द विमर्शिनी (वृन्द सतसई व्याख्या-हिन्दी में)

v अलङ्कार एवं छन्द ग्रन्थ—

(१) अलङ्कार कौमुदी (संस्कृत-हिन्दी), (२) दोष दिग्दर्शन, (३) छन्दो माला, (४) छन्दो दर्शन

vi हिन्दी में काव्य—

(१) राष्ट्रभाषा, (२) माधव, (३) केशव, (४) पाञ्चाली-परिणय

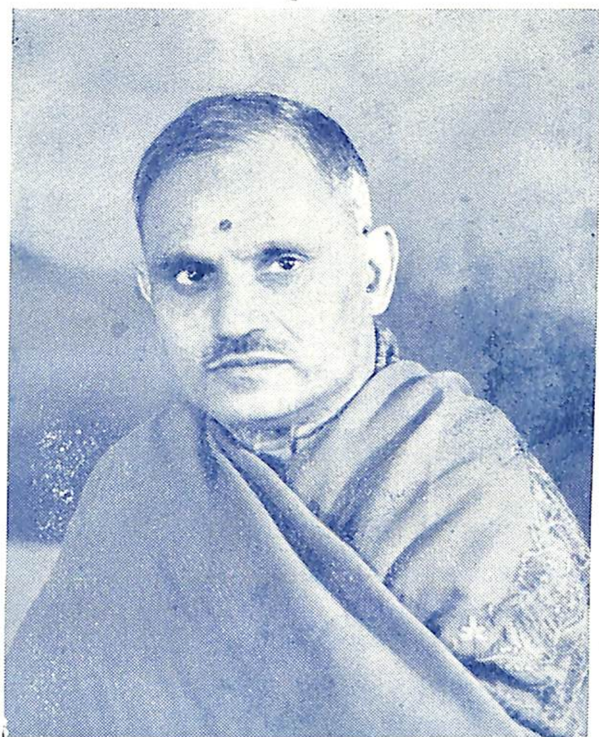
vii हिन्दी में उपन्यास—मोहन

viii आलोचना—

(१) वृन्द विनाश, (२) पाणिनि और उनके अनुयायी, (३) रासो समीक्षा, (४) रासो और उसकी ग्रन्थ संख्या

ix व्याकरण—

गौरी व्याकरण ८ भागों में



आचार्य

श्री सदाशिव दीक्षित

श्रीविविधविद्याविद्युदुद्योतितानां महामहिमकीर्तिभाजां श्रीजगद्गुरूणाम्
काशीस्थोर्ध्वाम्नायपीठाधीश्वराणाम् आचार्यचरणानाम्
श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणाम्

श्री १००८ श्री महेश्वरानन्दसरस्वतीनाम्

शुभाशिषः

श्रीमन्महाकालविलासहासोल्लसन्महानन्दतरङ्गिताङ्गीम् ।
नेदीयसीं संभजतां जनानां भजामहे दक्षिणमेचकाभाम् ॥

द्वारमिवोद्घाटितं सर्वसिद्धीनाम्, भवनमिवोद्भासितं विभूतीनाम्, सदनमिव वन्दितं रहस्यानां, भद्रासनमिव स्वतःसिद्धं विश्वासानां, कार्मणमिवाकलितं कृतीनां विजयते कर्पूरस्तवराजाभिधानं महामहिममण्डितं स्तवनम्। सुप्रभातमद्य समुल्लसितं तन्त्राटवीविटपिनां महामहिम्नां, रत्नराशिः समुत्सेधितः, समासादितो रत्नाकरान्दोलनकलाकलितानां, शस्यसमृद्धिः सुलभा प्रभूता अतिभरं प्रयस्यतां कृषकाणाम्, वासन्ती सुमनःसम्पत्तिः प्रपञ्चप्रचुरा चञ्चुरिता रसिकालिचञ्चरीकाणां सतृष्णानां, जलदजालमलिनं महाबिलं मिलितं प्रचण्डचण्डांशुपिचण्डिलप्रतापप्रतप्तानां प्रयस्यताम्, तपश्चर्याश्चर्यचारिमाचान्तचूर्णं विकीर्णं चरित्रचित्राणां विपश्चिदपश्चिमानाम् स्तोत्रप्रत्नरत्नरमणीयमिदम्। किं वर्ण्यतां, कथं कथ्यतां, कीदृगुपक्रम्यतां, कया वाचा प्रभूयतां, का पद्धतिरवलम्ब्यताम्। अत्र वाक्पथातीतो महिमा मुखरितः, काव्यकला कलिता ललिता निभालिता, रससारस्रोतः सहस्रधारं प्रसृमरं समुद्बलितं, प्रत्यग्रा समग्रा दृष्टिसृष्टिर्विशकलिता अखण्डपाण्डित्यसमुद्दण्डताण्डवं मण्डलितम्।

इह विराजन्ते द्वाविंशतिः श्लोका जगदम्बिकायाः, विद्योतन्ते प्रबन्धायमाना एकैके प्रबद्धा वर्णराशयो भगवत्याः, अङ्कुरयन्ति बीजकोशा निहिताः किमपि सौभाग्यभाग्यवैभवं भरितं भुवनानाम्।

दिव्यं मन्दिरमिदं देव्याः; द्वाविंशतिः प्राकाराश्चारवो हिरण्मयादयो रमणीयाः, हृद्यानि अनवद्यानि पद्यानि, बीजगुम्फनाः सहस्रशः समुल्लसन्त्यः कलशाः,

मन्त्ररत्नमयं कमनीयं महासिंहासनम्, ईशानादिपदकदम्बागूरितगौरवा देवाः परिजनकोटयः, सदनुष्ठानप्रस्थानसहस्रसुलभाः सिद्धयः परिचारिकाः, वामाचार-दक्षिणाचार-दिव्याचारप्रचयपरिचयप्रचुरा दिव्यप्रदीव्यातिदिव्याः उत्तरोत्तर-नेदीयस्यः सोपानपारम्पर्यः, मुदितोदितसमुदितैदम्पर्यासमानभासमानमहनीय-महामहिमा, अखिलाखिलब्रह्माण्डविशङ्कटघटनापटुपाटवाटोपविकटपराक्रमचंक्र-मणकमनीया, श्रीमन्महाकालालिङ्गनमहानन्दसन्दोहसामरस्यसारसर्वस्वसीमा, संहारमूर्त्तिरपि विश्वजननी, नीरदनिविडनीलाऽपि महागौरी, भुवनभरभयानक-भयभाविकाऽपि करुणावरुणालयमूर्त्तिः सुप्रतिष्ठिता प्रकटिता श्रीदक्षिणश्यामला, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, श्रीतारा, पराम्बा, जगदम्बिका पार्यवसानिकलक्ष्यलक्ष्या-भिवीक्ष्यते अत्र स्तवे।

इयमेव जगज्जननी, जगदधिष्ठात्री, अखिलब्रह्माण्डाधीश्वरी, श्रीदक्षिण-कालिका। अस्या एव महाशक्तेः चिदानन्दसन्दोहरूपस्य सर्वव्यापिनः साम-रस्यान्निर्विशेषरूपस्य विमर्शस्वरूपाया इच्छात्मिकायाः किंचिदुच्छूनबीजसरूपाया ज्ञानप्राधान्येन सदाशिवः, क्रियाप्रधानतया ईश्वरः, एवं पारम्पर्या समस्तं जगदनेकभेदभिन्नं भूतभौतिकप्रपञ्चमयं वस्तुतः सार्वदिकं चिदानन्दरूपं विजृम्भ-माणं जीवरूपैर्निखिलैः सर्वथा सर्वदा तदाकारैरेवानुभूयते। संकोचविकास-शालिनी हीयं चितिशक्तिः, स्वत एव कदाचन संकुचति तथैव विकसति च परम-स्वतन्त्रा। विकासक्रमश्च-षट्त्रिंशत्तत्त्वान्येवैतन्मते। महाशक्तिसामरस्यापन्न-स्तत्त्वातीतः सर्वप्रपञ्चरूपः परमशिवः। स च आनन्दचिन्मयसुधासिन्धुः। ततः १—अहमिति विमर्शरूपः किंचिदिवोद्भिन्नः शिवः। २—प्रपञ्चनिर्माणरम-णीया सर्जनेच्छा महाशक्तिः। ३—प्रपञ्चमहन्तया निभालयन् शिव एव सदाशिवः। ४—इदन्तया तमेवानुभवन्नीश्वरः। ५—प्रपञ्चपरशिवयोरद्वैत-दृष्टिः शुद्धविद्या। ६—तयोर्भेददृष्टिः माया। ७,८,९,१०,११–नियति-काल-राग-कला-विद्याः संकुचिता जीवगताः, इमा एव असंकुचिताः परमशिव-शयानाः स्वतन्त्रता-नित्यता-नित्यतृप्तता-सर्वकर्तृता-सर्वज्ञताः क्रमेण सन्ति। एभि-रेव तत्त्वैः कञ्चुकापरपर्यायैः लीलयालिङ्गितैः आवृताकार ईश्वर एव जीव इति निष्कर्षः। १२—चित्तं जीवः। स च पुरुष इत्युच्यते। १३—प्रकृतिः सत्त्व-

रजस्तमसां साम्यावस्था १४ १५-१६ रजः-सत्त्व-तमः स्वरूपाणि अहंकार-बुद्धि-मनांसि अन्तःकरणवृत्तयः। १७-१८-१९-२०-२१-पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। २२-२३-२४-२५-२६-पञ्च कर्मेन्द्रियाणि। २७-२८-२९-३०-३१-पञ्च तन्मात्राः शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धाः। ३२-३३-३४-३५-३६-गगनानिलानलजलाचलाः पञ्च भूतानि। वस्तुतः प्रपञ्चोद्भेद-एव संकोचः, असंकोचः क्रमेण जायमानो भावनया परमं प्रकर्षं प्रतिपद्यमानः परमशिवः, इति विवेकः। परमशिवः शक्तिसामरस्यविश्रान्तस्तत्त्वातीत इति समयिनां सिद्धान्तः। कौलास्तु महाशक्तिरेवैका दक्षिणकालिकादिपदावलम्बिनीति निःसंशयमाशेरते।

तदिदं निखिलं गभीरं रहस्यम्। अन्यच्च मार्मिकं पचेलिमं तत्त्वम्। अत्र स्तवराजिराजे गुप्तप्रकटाकारेण संभृतम्। तदेतत् तलावगाहनैकनिपुणानामपि परिश्रमातिरेककर्मठानामपि संप्रदायसिद्धमहापुरुषोपदेशमन्तरा ऋते च परश्शततन्त्रतात्त्विकनिगूढमहाग्रन्थपरिशीलनकौशलं नासादनीयतामञ्चमञ्चेदिति। उपशतनैकविधप्रौढ़प्रबन्धनिर्माणालंकर्मीणानां विविधभाषापरिज्ञानान्तर्वाणीनां महामहोपाध्यायविरुदभाजां विद्वत्तल्लज-श्रीमथुराप्रसाददीक्षितानां विद्यातपोवयोवृद्धानां तनूजन्मना 'रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यमि' त्यादिलक्षणलक्षितविलक्षणविचक्षणेन श्रीकान्यकुब्जाग्रजन्मवंशमुक्ताकलापेन कविताकामिनीस्वयंवृतेन विरचितानेकसन्दर्भसुन्दरयशोभूषणेन महाकविना श्रीमता सदाशिवदीक्षितेन तथा विशकलनया व्याख्यातं तथा च मार्मिकाणि स्थानानि स्फुटिकर्मतासोमानमानीतानि यथा अनुसन्दधतां विस्मयभरं प्रविश्य पश्यतां समन्ततः सर्वाङ्गीणमानन्दसन्दोहं समुपासकानां वरिवस्यारहस्यं निश्चिकीषतां सन्देहनिरासं जनयति, वितरति विदधाति चेति अहमहमिकया निभालनीयमिदम्। पर्यालोचनीयमदः। परिवीक्षणीयमेतत्।

पार्यवसानिकं च महाकवेः सूक्तिरत्रैव रामणीयकं समुद्गिरति—

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्ता जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।

कश्चिद् भिक्षुः।

● ● ●

महामहोपाध्यायानां राजगुरूणां पूज्यपादानां पितृचरणानां
श्री मथुराप्रसाद दीक्षितानाम् शुभाशीर्वादाः

तन्त्रक्षीरनिधिं विलोड्य फलवत् सारं ततः कर्षयन्
श्यामाम्बाचरणारविन्दयुगले तं स्नेहतश्चार्पयन् ।
विद्वद्वृन्दमनोऽरविन्दमखिलं कर्पूरतः फुल्लयन्
जीयादेष सदाशिवः शतसमाः सन्तोषयन् सज्जनान् ।



सोलन नरेश

राजा श्री दुर्गासिंह महोदय की

अमूल्य सम्मति

आपने कर्पूर स्तवराज की व्याख्या बड़ी ही रोचक और प्रमाण सहित की है । मुझे तो बहुत पसन्द आई । आपको बधाई हो ।

बघाट हाउस
हरिद्वार

दुर्गासिंह ।
३-२-६१

दो शब्द

॥ : श्री : ॥

अनङ्गरङ्गप्रसरद्विलासां महाश्मशानाहितसुप्रकाशाम् ।
मनोजमर्मज्ञमहेशकान्तां नमाम्यहं दक्षिणकालिकान्ताम् ।

श्री जटिल महाराज का आदेश है कि भगवती श्री दक्षिणकालिका की गुण-गीतिका का गान करो, इसके प्रभाव से अवांछनीय तत्त्वों से अनुप्राणित एवं समानीत मूतिमती मृत्युविभीषिका का विलय हो जायगा। पर हृदय कहता है कि भगवती महारानी की गुण-गीतिका सुगम नहीं है, मत्सदृश साधनशून्य अल्पज्ञ पुरुष के लिये तो दुरूह है और उस पर भी महिम्नकार श्री पुष्पदन्त महाराज का यह अधोलिखित दुन्दुभिनाद हमारे कष्टसञ्चित साहस के समापनयन में सहायक है।

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानाम् [1]ईशि पारं न याति ।

श्री जटिल महाराज की उक्ति बारंबार हृदय को उद्वेलित करती रहती है, श्री कर्पूरस्तवराज की व्याख्या लिखने के लिये प्रेरित करती रहती है, परन्तु बाधामयी विवशता विघ्नवती बन कर अनुत्साहित करती रहती है, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। दिन रात चिन्तन किया करता हूँ, पर समस्या का समाधान नहीं होता।

---

१. अविनाभाव सम्बन्ध के कारण ईश और ईशी में अभेद कल्पना के कारण ईश के स्थान पर ईशि पद प्रयुक्त है।

एक दिन क्या देखता हूँ कि स्वर्ग में एक समिति का अधिवेशन हो रहा है। देव, दानव, मानव, भूधर, भुजङ्ग आदि समस्त जीवों के प्रतिनिधि अपने-अपने स्थान पर विराजमान हैं और श्री महाकाल महाराज अध्यक्ष पद पर समासीन हैं। श्री महाकाली की गुणगाथा के परिगणन का निश्चय हो चुका है। उसके लिये उपयुक्त व्यक्ति का पर्यवेक्षण हो रहा है। ब्रह्मा विष्णु एवं महेश ने अपनी असमर्थता अभिव्यक्त कर दी है (पृष्ट ७४), प्रकृतिमुखरा श्री वाग्देवी से इस कार्य के सम्पादन के लिये आग्रह किया जा रहा है, समुपस्थित सभी सदस्य एक-मत से इस मत का समर्थन कर रहे हैं। श्री वाग्देवी के 'नानू' करने पर भी सभी एकस्वर से अनुनय विनय कर उन्हें इस कार्य के लिये राजी कर रहे हैं।

अब लेखनसामग्री का प्रश्न उपस्थित हुआ। 'अनन्त गुणगाथा की गीतिका साधारणतया नहीं लिखी जा सकती। निरन्तर लिखना पड़ेगा। कलम चाहिये, स्याही चाहिये, पानी चाहिये, कागज चाहिये और वह भी साधारण रूप में नहीं। साधारण उपादान से महान् कार्य का सम्पादन नहीं हो सकता। महान् कार्य के लिये महान् उपकरण चाहिये। परन्तु ऐसे उपकरण (कलम, दवात, कागज आदि) दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। अतः कार्य का सम्पादन असम्भव है।' यह कह कर श्री वाग्देवी ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। सभा में सन्नाटा छा गया। सदस्य एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। ऐसा आभासित होने लगा कि अब इस कार्य का स्थगन ही हितकर है। श्री वाग्देवी ने स्थगन प्रस्ताव रखा, श्री गणपति ने उसका समर्थन किया, अनुमोदकों की कमी न थी।

'यह क्या हो रहा है' यह एक कोने से ध्वनि सुनाई दी। लोगों ने देखा कि एक स्थावर व्यक्ति रोष भरे शब्दों से स्थगन प्रस्ताव का विरोध कर रहा है। उसका कथन है कि 'मेरी हड्डियाँ ले लो पर काम करने से न हटो। ये कलम का काम करेंगी'। लोगों में उल्लास भर गया। सदस्यों ने मुक्तकण्ठ से उसका जय-जयकार मनाया।

लोगों के शान्त होने पर श्री महाकाल महाराज ने कहा कि 'कल्पतरु, तुम महान् हो, तुम्हारे सदश व्यक्तियों के बल पर ही श्री महाकालीगुणगीतिका का प्रस्ताव रखा गया है। देखो श्रीमती वसुन्धरा देवी की अभ्यर्थना है कि इसके

पङ्कमय शरीर की शुद्धि के लिये इसे कागज के रूप में परिणत कर किया जाय। मेरी सम्मति से इसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिये। स्याही और पानी के प्रश्न पर हमने श्री असितगिरि और जलनिधि से विचारविनिमय किया है। ये दोनों इस कार्य के लिये सहमत हो गये हैं। अब हम आप सब लोगों की ओर से श्री वाग्देवी से प्रार्थना करते हैं कि इन सब उपकरणों को ले कर श्री महाकाली की गुणगाथागीतिका प्रारम्भ कर दें।' यह कह कर श्री महाकाल महाराज ने सभा विसर्जित कर दी।

श्री वाग्देवी ने सदावसन्त नामक स्थान पर अपना आसन जमाया। प्रकृति देवी ने परिचारिका रूप से आपकी परिचर्या की। सुधा-निर्झरिणी के सलिल-कण से सिक्त शीतल मन्द सुगन्ध समीर ने भी सेवा करने में किसी प्रकार की कोर कसर न की।

श्री वाग्देवी की लेखनी अविरल गति से चल रही है। समय की उन्हें सुध बुध नहीं। उनके भ्रमरोपमेय केशकलाप कलहंस के समान हो रहे हैं, शरीर में झुर्रियाँ पड़ रही हैं, दीनार में एक कपर्दिका के समान ही, महोदधि में एक विन्दु के समान ही श्री महाकाली-गुणगाथा-गीतिका लिखी जा सकी है। कागज समाप्त हो गया है, दवात में स्याही का एक कण भी नहीं बचा है, कलम ने घिसते घिसते अभाव का रूप धारण कर लिया है, बेचारी वाग्देवी क्षुब्ध हो कर ऊपर की ओर देखती है, तो विशाल गुणगरिम-पर्वतमाला का अवलोकन कर अवाक् हो जाती है 'Alps over Alps asise' की स्मृति उद्बुद्ध हो जाती है, अनन्त गुण-गाथा से टकरा कर गर्व विशीर्ण हो जाता है।

श्री हजरत मोहम्मद साहब ने भी कुरान शरीफ में इसी रहस्यमय सन्देश की अभिव्यक्ति की है--

बलौ अन्न मा फिल् अर्जे मिन् शज रतिन्
अकला मुन् दल् वहरो यमुद दोहू मिन्
वादिहि सब् शतो शव् होमिन् मा नफेदत्
कले मातुल् लाहं इन् लल् लाहा अजीजुन हकीम।

सूरत लुकमान

अर्थात् भूमण्डल पर जितने वृक्ष हैं, वे सब कलम हो जायँ और सागर स्याही बन जाय और उसके रिक्त होने पर दूसरे महासागर स्याही रूप से उपस्थित हो जायँ और इन साधनों से अल्ला नामक ईश्वर का ज्ञान और उसकी बातें लिखी जायँ, तो भी उसकी बातों की इतिश्री न होगी क्योंकि वह सबका ईश्वर है और उदार है।

इस स्थल पर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भगवती श्री कालिका का नाम अल्ला भी है।

विश्वविधानमतल्ला दुर्गतिदारणकृते तु शितभल्ला।
हतनवदानवमल्ला विदधातु जनान् शुभान् अल्ला।

आंख खुल गई, श्री कर्पूरस्तवराज का यह श्लोकार्ध कर्णकुहरों में गुञ्जरित होने लगा--

'तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्मानममिते
तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः।

उपर्युक्त निर्वचन से इस 'रुचिरा' की रचना का उद्देश्य प्रकट हो जाता है। इस स्थल पर यह कथन अनुपयुक्त एवं अप्राङ्गिक न होगा कि धर्ममार्तण्ड आदि विविधविरुदावलीविभूषित नीरक्षीरविवेकहंस परमारवंशावतंस आदर्श-महीपाल बघाटभूपाल भगवती श्री कालिका-पदारविन्दानुरक्त परमभक्त योगिराज महाराज श्री १०५ श्री दुर्गासिंह महोदय के समाश्रय एवं साहाय्य की समुपलब्धि यदि न होती तो आज हम इस ग्रन्थ को ले कर आपके सम्मुख उपस्थित होने का साहस न कर सकते। इसका विरचन हिमालयप्रदेशाधिष्ठित सोलन क्षेत्र में हुआ है और इसका प्रकाशन वाराणसी क्षेत्र में। सौभाग्य से दोनों कार्यों के लिये पुण्य क्षेत्र उपलब्ध हो सके हैं।

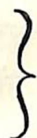
काशीस्थ ऊर्ध्वाम्नायपीठाधीश्वर अभिनव शंकराचार्य परमहंसपरिव्राजकाचार्य जगद्गुरु श्री १००८ श्री महेश्वरानन्द सरस्वती महाराज का मैं विशेष आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ का सम्यक् पर्यवेक्षण कर शुभाशीर्वाद प्रदान से मुझे विशेष उपकृत किया है।

इस स्थल पर ज्योतिष्मती के यशस्वी सम्पादक ज्योतिषाचार्य श्री हरदेव जी शर्मा का एवं तान्त्रिकशिरोमणि आचार्य श्री उमाशङ्कर जी पाण्डेय का विस्मरण कृतघ्नता द्योतक होगा क्योंकि आप लोगों की उत्साहमयी प्रेरणा से इस ग्रन्थ के निर्माण एवं प्रकाशन में विशेष स्फूर्ति का अधिगम हुआ है ।

अन्त में भगवती जगदम्बिका श्री दक्षिणकालिका के चरणकमलों में हमारी यह विनीत विनति है कि—

त्वन्मन्त्रं जपतः त्वङ्वद्घ्रि भजतः स्यान्मे शरीरव्ययः ।

सरस्वती सदन
महाशिवरात्रि
वि० सं० २०१७



सदाशिव दीक्षित

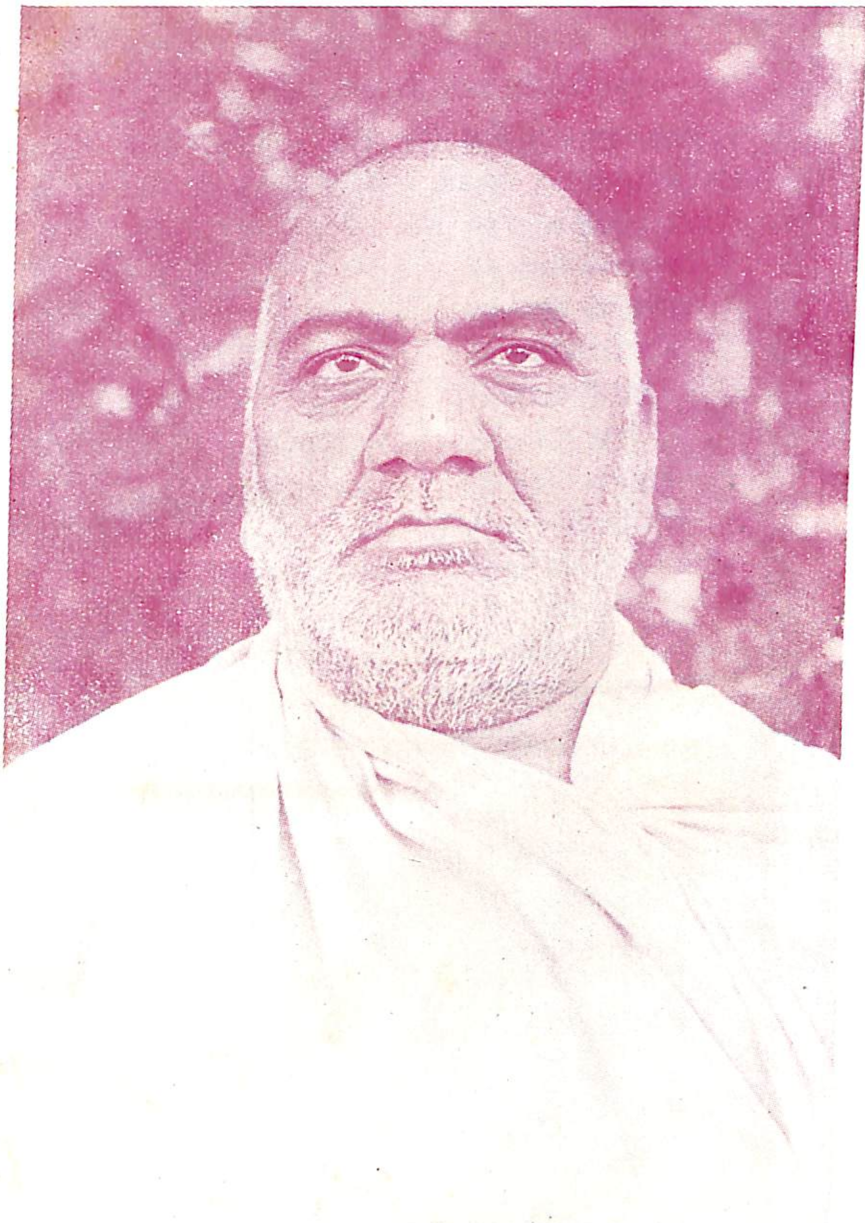
समर्पणम्

श्री :

तन्त्राम्भोनिधिनिर्गतस्य कमलाबन्धोः सुधादीधितेः
कर्पूरस्तवराजकस्य रुचिरां व्याख्यां मनोहारिणीम्
'श्रीपीताम्बरभूषणा'- कुलपतेर्मृत्युञ्जयोल्लासिनः
लोकक्षेमपरायणस्य विदुषे ज्योतिष्मतीं यच्छतः
ब्रह्मज्ञाननिधेः सदागमविधेः शास्त्रैकपाथोनिधेः
योगाभ्यासवशात् पदाग्रपतिताः सिद्धीस्तिरस्कुर्वतः
शक्त्याराधनतत्परस्य महतः श्री स्वामिनः स्वामिनः
पादाब्जेषु समर्प्य भक्तिभरितो मोदं 'शिवो' गच्छति ।

इति

सदाशिव दीक्षितः



श्री १०८ श्री स्वामी जी पीताम्बरापीठ वनखण्डेश्वर, दतिया (म० प्र०)

रुचिरा में प्रमाण रूप से समुद्धत ग्रन्थों की तालिका।

घृतमिव पयसि निगूढं ग्रन्थे ग्रन्थे च वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन।

१ अत्रि स्मृति
२ अथर्व वेद
३ अद्भुत रामायण
४ अन्नदा कल्प
५ अर्गला स्तोत्र
६ अष्टाध्यायी
७ आगम सार
८ आनन्द पटल
९ उणादि सूत्र
१० उत्तर तन्त्र
११ कमला स्तुति
१२ कर्पूर स्तवराज
१३ कवच (सप्तशती)
१४ कामधेनु तन्त्र
१५ काम शास्त्र
१६ कामाख्या तन्त्र
१७ कात्यायन
१८ काल तन्त्र
१९ कालानल तन्त्र
२० कालिका कल्प
२१ कालिका पुराण
२२ कालिका श्रुति
२३ कालिकोपनिषद्
२४ कालिदास
२५ काव्य प्रकाश
२६ काली कल्पलता
२७ काली कुल सर्वस्व
२८ काली तन्त्र
२९ काली विलास
३० काली रहस्य
३१ काली सहस्रनाम
३२ काल्यर्चन चन्द्रिका
३३ कीलक (सप्तशती)
३४ कुब्जिका तन्त्र
३५ कुमारी तन्त्र
३६ कुल चूडामणि
३७ कुल रत्नावली
३८ कुल रहस्य
३९ कुलार्णव तन्त्र
४० कुलावली तन्त्र
४१ कुलोड्डीश
४२ कैवल्योपनिषद्
४३ कौलावली तन्त्र
४४ कौलिकार्चन दीपिका
४५ गन्धर्व तन्त्र
४६ गन्धर्व मालिका तन्त्र
४७ गरल पान
४८ गायत्री तन्त्र

४९ गुप्त साधन तन्त्र
५० गुप्तार्णव तन्त्र
५१ गोरक्षनाथ
५२ गोरक्ष संहिता
५३ गौतमीय तन्त्र
५४ घेरण्ड संहिता
५५ ज्ञान माला
५६ ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र
५७ ज्ञानार्णव
५८ तन्त्र (अनिर्दिष्ट)
५९ तन्त्र कल्पद्रुम
६० तन्त्र चूडामणि
६१ तन्त्र शास्त्र
६२ तन्त्र सार
६३ तारा कर्पूर स्तोत्र
६४ तारा कर्पूर स्तोत्र व्याख्या
६५ तारा रहस्य
६६ तोडल तन्त्र
६७ त्रिपुरा स्तोत्र
६८ त्रिपुरोपनिषद्
६९ त्रिशक्ति रत्नाकर
७० दीक्षितोपनिषद्
७१ देवी गीता
७२ देवी रहस्य
७३ देवी सूक्त
७४ देव्यपराध क्षमापन स्तोत्र
७५ धर्म शास्त्र
७६ नवरत्नेश्वर
७७ निगम कल्पद्रुम
७८ निगम कल्पानन्द
७९ निगम तत्त्व
८० निगमानन्द
८१ नित्य तन्त्र
८२ निरुत्तर तन्त्र
८३ पञ्चदशी
८४ पञ्चरात्र
८५ पतञ्जलि
८६ पद्मावती महाकाव्य
८७ परमानन्द तन्त्र
८८ परशुराम कल्प सूत्र
८९ परा पूजा
९० पाणिनि
९१ पिच्छिला तन्त्र
९२ पुरश्चर्यार्णव
९३ पूजन पद्धति
९४ पूजा पद्धति
९५ प्रपञ्च सार
९६ प्राणतोषिणी
९७ प्राणाग्नि होत्र
९८ फेत्कारिणी तन्त्र
९९ बगला पूजन पद्धति
१०० बृहद् योनि तन्त्र
१०१ बृहन्नील तन्त्र
१०२ बृहन्मत्स्य सूक्त

१०३ बोधायन
१०४ ब्रह्माण्ड पुराण
१०५ ब्रह्मोपनिषद्
१०६ भगवद्गीता
१०७ भविष्य पुराण
१०८ भाव चूड़ामणि
१०९ भूति तन्त्र
११० भूति शुद्धि तन्त्र
१११ भैरव तन्त्र
११२ भैरव यामल
११३ भैरवी तन्त्र
११४ मनु स्मृति
११५ मन्त्र महोदधि
११६ मन्वर्थ मुक्तावली
११७ महाकाल संहिता
११८ महाकाली स्तोत्र
११९ महानिर्वाण तन्त्र
१२० महिम्न स्तोत्र
१२१ महीधर
१२२ महोपनिषद्
१२३ मातृका भेद तन्त्र
१२४ मुण्डमाला
१२५ मेरु तन्त्र
१२६ यजुर्वेद
१२७ याज्ञवल्क्य संहिता
१२८ यामल तन्त्र
१२९ योग शास्त्र
१३० योग सूत्र
१३१ योगिनी तन्त्र
१३२ योनि स्तोत्र
१३३ राधा तन्त्र
१३४ रुद्रयामल तन्त्र
१३५ ललिता हृदय
१३६ वक्रतुण्ड कल्प
१३७ वरद तन्त्र
१३८ विद्यार्णव तन्त्र
१३९ विरूपाक्ष ध्यान
१४० विवेक चूडामणि
१४१ विश्वसार तन्त्र
१४२ विष्णु यामल तन्त्र
१४३ वीर तन्त्र
१४४ वेद
१४५ शङ्कराचार्य
१४६ शक्तिसङ्गम तन्त्र
(क) काली खण्ड
(ख) तारा खण्ड
(ग) सुन्दरी खण्ड
१४७ शाण्डिल्य सूत्र
१४८ शाक्त प्रमोद
१४९ शाक्तागम
१५० शाक्तानन्द तरङ्गिणी
१५१ शारदा तिलक
१५२ शिवधर्मोत्तर
१५३ शिव पुराण

१५४ शिव संहिता
१५५ श्यामा कल्प
१५६ श्यामा रहस्य
१५७ श्राद्ध कल्प सूत्र
१५८ श्रीकान्त
१५९ श्रीकान्त कल्पवल्ली
१६० श्री पूर्व शास्त्र
१६१ श्रीमद् देवी भागवत
१६२ श्रीमद् भागवत
१६३ सप्तशती
१६४ समय विज्ञान
१६५ समयाचार तन्त्र
१६६ सरस्वती नाटिका
१६७ सरस्वती ध्यान
१६८ सर्वोल्लास तन्त्र
१६९ सार सङ्ग्रह
१७० सिद्धान्त सङ्ग्रह
१७१ सिद्धेश्वर तन्त्र
१७२ सुन्दरी रहस्य वृत्ति
१७३ सौन्दर्य लहरी
१७४ स्कन्द पुराण
१७५ स्तुति कुसुमाञ्जलि
१७६ स्तोत्र
१७७ स्त्री परीक्षा
१७८ स्मृति
१७९ स्वच्छन्द तन्त्र
१८० स्वतन्त्र तन्त्र
१८१ हरविजय महाकाव्य

कर्पूरस्तव राज – मूलमात्र (हस्तलिखित)
कर्पूरस्तव राज–श्री रङ्गनाथ विरचित टीका
कर्पूरस्तव राज म० म० श्री नारायण शास्त्री खिस्ते विरचित टीका
कर्पूरस्तव राज श्री विमलानन्द विरचित टीका
कर्पूरस्तव राज श्री रामप्रसाद रचित टीका।
कर्पूर स्तवराज—
with introduction and translation
by Arthur Avalon

———

कर्पूर-स्तवः

ॐ अस्य कर्पूरस्तवराजस्य महाकाल ऋषिः गायत्री छन्दः श्रीदक्षिण-कालिका देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं श्रीदक्षिण-कालिका देवताप्रसादसिद्धयर्थं तत्तत्कामनासिद्धये वा विनियोगः।

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं
बीजं ते मातरेतत् त्रिपुरहरवधु त्रिःकृतं ये जपन्ति।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम्।

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन् महेशि
द्वन्द्वं ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित्।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षी-
वृन्दं चन्द्रार्धचूडे प्रभवति स महाघोरशावावतंसे।

ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो
बीजं ते द्वन्द्वमन्यद् विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमभितो वश्यभावं नयन्ति
सृक्द्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति।

ऊर्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं ततोऽधः
सव्ये ऽभीतिं वरं च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च ।
जप्त्वैतन् नाम ये वा तव विमलतनुं भावयन्त्येतदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितरदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ॥

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिललितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वं च पश्चात् स्मितमुखि तदधष्ठद्वयं योजयित्वा ।
मातर्ये त्वां जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपं
ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ॥

प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति ।
तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे
वाग्देवी, देवि मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठ पीनस्तनाढ्ये ॥

गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्-
नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम् ।
श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रसक्तां त्वां ध्यायन् जननि जडचेता अपि कविः ॥

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः
परं संकीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम् ।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरिसुरतेनातियुवतीं
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः ॥

वदामस्ते किंवा जननि वयमुच्चैर्जडधियो
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम् ।
तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माननमिते
तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥

समन्तादापीनस्तनजघनदृग्यौवनवती—
रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम् ।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥

समाः स्वस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा
विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम् ।
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः
कराम्भोजे वश्या हरवधु महासिद्धिनिवहाः ॥

प्रसूते संसारं जननि जगतीं पालयति च
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च ।
अतस्त्वां धाताऽपि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौति भवतीम् ॥

अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान्
विमूढास्ते मातः किमपि नहि जानन्ति परमम् ।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरञ्च्यादिविबुधैः
प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातर्निजकरुणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥

श्मशानस्थः स्वस्थो गलितचिकुरो दिक्पटधरः
सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम् ।
जपंस्त्वत् प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ॥

गृहे संमार्जन्या परिगलितवीर्यं हि चिकुरं
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने ।
समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत् कालि सततं
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ॥

स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो
पुरो ध्यायन् ध्यायन् यदि जपति भक्तस्तव मनुम् ।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरपि कवित्वामृतनदी-
नदीनः पर्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ॥

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम् ।
समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो
जनो यो ध्यायेत् त्वामयि जननि स स्यात् स्मरहरः ॥

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमसिते
परं वौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा ।
बलिं ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥

वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो
दिवा मातर्युष्मच्चरणकमलध्याननिरतः ।
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं
जपेल्लक्षं स स्यात् स्मरहरसमानः क्षितितले ॥

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणमनु
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ।
निशार्धे वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति
प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥

कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं
वशस्तस्य क्षोणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ।
रिपुः कारागारं कलयति च तं, केलिकलया
चिरं जीवन्मुक्तः प्रभवति स भक्तः प्रतिजनुः ॥

इति श्रीमहाकालविरचितं
"श्रीदक्षिणकालिकायाः स्वरूपाख्यं स्तोत्रं"
समाप्तम् ।

काली-माहात्म्यम्

कलौ काली कलौ काली कलौ काली तु केवला ।
साधिता कालनाथेन प्रत्यक्षा कालिका कलौ ॥
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चिन्मोक्षकामुकः ।
स भोजनं विना नूनं क्षुन्निवृत्तिमभीप्सति ॥
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चिच्छान्तिमिच्छति ।
स हि शीतनिवृत्त्यर्थं हिमशैलं निषेवते ॥
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित् काव्यमिच्छति ।
स तु दुःखनिवृत्त्यर्थं पापानि कुरुते सदा ॥
श्रीमहाकालिका विद्या कलौ पूर्णफलप्रदा ।
कलिर्हि यस्या दासस्य पादपूजां करोति हि ॥
अज्ञानाज्ज्ञानतो वाऽपि सलीलं वा सहेलया ।
स्मृताऽपि सिद्धिदा काली सकृदेव महेश्वरि ॥
महाविद्या सिद्धिविद्या विद्याभेदैः प्रतिष्ठिता ।
उपविद्यादिभेदैश्च कालिका संस्थिता भुवि ॥
ताराद्याः सकला विद्याः कालिकायां प्रजज्ञिरे ।
सर्वा विद्याः कालिकायां संस्थिता एव पार्वति ॥



★ कर्पूर-स्तव ★

❀ नमो नमो दक्षिणकालिकायै ❀

मन्त्रोद्धार प्रकरण

(१)

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं
बीजं ते मातरेतत् त्रिपुरहरवधु त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ।

व्याख्याकर्तुः मङ्गलाचरणम्—

ज्योतिर्लिङ्गं समासाद्य रममाणोपसृप्तकैः ।
विपरीतरतासक्ता पायाद् दक्षिणकालिका ॥

अन्वय

हे मातः, हे त्रिपुरहरवधु, हे ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे, मध्यमान्त्यस्वरपररहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं 'कर्पूरम्' एतत् ते बीजं त्रिःकृतं ये जपन्ति, सर्वसिद्धिं गतानां तेषां मुखकुहरात् गद्यानि पद्यानि च वाचः स्वच्छन्दम् उल्लसन्ति एव ।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान—

हे जगज्जननी (मातः)। दार्शनिकों के मतानुसार महाप्रलय के अन्त में एक ही अवशिष्ट रह जाता है, उसे चाहे हम 'ब्रह्म' इस नाम

से पुकारें, अथवा 'शक्ति' इस नाम से। शाक्तों के मत से शक्ति ही प्रधान बीज है, अतः हरिहरादि देवों की जननी होने के कारण 'मातः' इस पद की सार्थकता समझ में आ जाती है। 'मातः' इस पद से एक और अर्थ की भी अभिव्यक्ति होती है। 'मा' धातु से 'तृच्' प्रत्यय करने पर 'माति परिमितं ददाति इति माता' इस पद की निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ होता है परिमितदात्री, अर्थात् पात्र भेद से भोगाभिलाषियों को ऐश्वर्य और मोक्षार्थियों को निर्वाण देने वाली।

उपासना क्षेत्र में मातृमूलक उपासना का भी इस लिए अधिक महत्त्व है कि वत्स के प्रति माता का हृदय सदा करुणामय रहता है। पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर माता किसी भी अवस्था में कुमाता नहीं हो सकती—इस सिद्धान्त के प्रतिपादक 'देव्यपराधक्षमापन' स्तोत्र की प्रामाणिकता सर्वमान्य है।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

'देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र।

महाप्रलय के समय बिन्दु व्यापक रूप से अपने स्वरूप को धारण करने वाली भगवती दक्षिणकालिका महारानी का विग्रह एकीभूत शिवशक्तिमय था। इसी समय आपने अपने बिम्ब की ओर निहारा, जिससे सृष्टि के निर्माण के लिए आपका वह बिम्ब मायारूप में और मानसिक शिव पति रूप में परिणत हो गये।

महाप्रलयमासाद्य कोटिब्रह्माण्डनायिका।
शिवशक्तिमयं देहम् एकीकृत्य सदा स्थिता।
विन्दुव्यापकरूपेण स्वरूपं बिभ्रती परम्।
एतस्मिन्नेव काले तु स्वबिम्बं पश्यति शिवा।
तद्बिम्बं तु भवेन्माया तत्र मानसिकं शिवम्।
सृष्टेरुत्पादनार्थं तु भर्तृरूपमकल्पयत्।

रुद्रयामल तन्त्र।

योगिनी तन्त्र भी महाकाली को सृष्टि की जननी बतला कर उपर्युक्त पक्ष का ही समर्थन करता है। यहाँ पर एक यह प्रश्न उठ सकता है कि भगवान् महाकाल के द्वारा भगवती कालिका को लक्ष्य कर कहा गया 'माता' यह पद अटपटा-सा लगता है, परन्तु इसका उत्तर त्रिपुरोपनिषद् में मिल जाता है, जहाँ पर भगवान् महाकाल ने श्री कालिका की स्तुति जगज्जननी के रूप में की है।

त्रिविष्टपं त्रिमुखं विश्वमातुर्नवरेखाः स्वरमध्यं तदीडे।
त्रिपुरोपनिषद्।

अद्भुत रामायण में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र ने भी जगज्जननी भगवती सीता को माता के रूप से स्मरण किया है।

सीता मा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलाऽमला।
प्राणेश्वरी प्रिया माता महामहिषमोहिनी।
अद्भुत रामायण।

अतः हे दक्षिणकालिके, आप हमारी मा हैं, और त्रिपुरारि भगवान् महाकाल की पट्टमहिषी, (त्रिपुरहरवधु)। यद्यपि त्रिपुरासुर के वध की कथा अनेक पुराणों में विस्तार के साथ उल्लखित है, तथापि स्कन्द पुराण के आवन्त्यखण्डान्तर्गत रेवाखण्ड के २८ वें अध्याय में जैसा वर्णन पाया जाता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस त्रिपुरदाह के वर्णन से ऐतिहासिक विद्वानों के हृदय में 'पाम्पियाई दाह' की स्मृति उद्बुद्ध हो जाती है।

अथवा त्रिपुर इस पद से स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण इन त्रिविध देहों का बोध होता है। इस देहत्रयी का नाश कर विदेह मुक्ति देने वाले को त्रिपुरहर कहते हैं। उसकी शक्ति आप हैं, अर्थात् आप विदेह कैवल्यदायिनी हैं। 'त्रिपुरहर' पद की व्याख्या करते हुए कैवल्योपनिषद् में लिखा है कि सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा पुरत्रय का निर्माण कर

उसमें क्रीड़ा किया करता है और अन्त में अपने में उसका लय कर लेता है।

पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवः ततस्तु जातं सकलं विचित्रम्।
आधारमानन्दमखण्डबोधं यस्मिंल्लयं याति पुरत्रयं च।
कैवल्योपनिषद्।

हे ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे अर्थात् हे श्याम जलधर की कान्ति के समान मनोहारिणी। जिस प्रकार मेघ शीतल जल के वर्षण से आतप परितप्त धरातल की उष्णता को हर लेता है, उसी प्रकार आप भी अमृतमयी अपनी कृपादृष्टि से त्रिविध तापों से सन्तप्त साधकों के सन्ताप को भगा देती हैं। तन्त्रों में श्री कालिका का वर्ण मेघादि विरहित निर्मल आकाश के समान ही माना गया है। इसका एक और कारण भी है। चिदाकाशमयी भगवती श्री कालिका घनीभूत शुद्ध सत्त्व गुणस्वरूपिणी हैं; अतः इनके नील वर्ण की प्रतिष्ठा तर्कसम्मत है। इस कृष्ण वर्ण का एक और भी कारण है। जिस प्रकार श्वेत पीत आदि वर्ण कृष्ण वर्ण में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण पञ्च भूत भगवती काली में प्रवेश कर जाते हैं। अतः योगिकल्याणकारिणी निर्गुण निराकार कालशक्ति (कालिका) का वर्ण कृष्ण बतलाया गया है।

श्वेतकृष्णादिको वर्णो यथा कृष्णे विलीयते।
प्रविशन्ति तथा काल्यां सर्वभूतानि शैलजे।
अतस्तस्याः कालशक्तेर्निर्गुणाया निराकृतेः।
हितायाः प्राप्तयोगानां वर्णः कृष्णो निरूपितः।
महानिर्वाण तन्त्र।

कालिका के कृष्ण स्वरूप की प्रामाणिकता के लिये विरूपाक्ष ध्यान तथा काली तन्त्र के अधोलिखित पद विशेष मननीय हैं।

(१) नीलाञ्जनचयप्रख्याम्।
(२) महामेघप्रभां श्यामाम्।

वस्तुतः काली की श्यामता श्यामाजातीय नितम्बिनी की परिचायिका है। श्यामा पद से उस षोडशवर्षीया अतिसुन्दरी नितम्बिनी का बोध होता है जिसका अङ्गस्पर्श शीत काल में उष्ण हो, और उष्ण काल में शीतल। इसके शरीर की आभा प्रतप्त सुवर्ण के समान होती है।

शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला।
प्रतप्तकाञ्चनाभा, सा श्यामा स्त्री परिकीर्तिता।
स्त्री परीक्षा।

मन्त्रोद्धारपरक श्लोक षट्क के प्रत्येक श्लोक में तीन पदों से भगवती कालिका को सम्बोधित करना एक विशिष्ट महत्त्व रखता है। इस का आभास बीजत्रय (क्रीं हूं ह्रीं) के उपादान से मिल जाता है।

(२) बीजोद्धार—

इस प्रकार भगवती श्री कालिका को सम्बोधित कर 'कर्पूर' पद से 'क्रीं' बीज के उद्धार की विधि बतलाते हैं। 'कर्पूर' इस पद को मध्यम और अन्तिम स्वर से अर्थात् ऊ और अ से, तथा मध्यम 'प्' और अन्तिम 'र्' से रहित कर दें (स्वरपररहितम्) तो क् र् अवशिष्ट रह जाता है। क में अ उच्चारण के लिये है, अन्यथा क् र् का उच्चारण ही न होगा। इस क् र् को अनुस्वार सहित ई से यदि संयुक्त कर दें (सेन्दुवामाक्षियुक्तम्), तो 'क्रीं' इस बीज की निष्पत्ति होती है। इस क्रीं (क् र् ई म्) से पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति होती है। ककार से धर्म, ईकार से अर्थ, रकार से काम और मकार से मोक्ष मिलता है। सब को एक साथ उच्चारण करने पर निर्वाण मोक्ष का अधिगम होता है।

ककारं धर्मदं देवि, ईकारं चार्थदायकम्।
रकारं कामदं कान्ते, मकारं मोक्षदायकम्।
एकत्रोच्चारणाद् देवि, निर्वाणमोक्षदायिनी।
तोडल तन्त्र।

यामल तन्त्र के मत से क् और र् से स्वरूप का निरूपण किया गया है, और ई और म् से फलदात्रीत्व का, क्योंकि उज्ज्वल स्वरूप क से आप ज्ञानस्वरूपा हैं और र् के संयोग से तेजः स्वरूपा। ईकार से आप भक्ताभीष्ट दायिनी हैं और अनुस्वार से कैवल्य मोक्ष दायिनी।

ककारोज्ज्वलरूपत्वात् केवलं ज्ञानचित् कला।
ज्वलनार्णसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा।
दीर्घकारेण देवेशि साधकाऽभीष्टदायिनी।
बिन्दूनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी।
यामल तन्त्र।

वरद तन्त्र में 'क्रीं' इस बीज का अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है। ककार से काली का, रकार से ब्रह्म का, ईकार से महामाया का, नाद से विश्वयोनि का एवं बिन्दु से सन्तापविनाशिनी का बोध होता है, तथा अक्षरों के संयोग से चैतन्य की अनुभूति होती है। मुसलमान भी क्रीं इस बीज मन्त्र को 'करीम्' इस रूप में सदा जपा करते हैं।

(३) फलस्तुति—

इस प्रकार 'कर्पूर' इस पद से निष्पन्न आपके—भगवती श्री काली के—क्रीं इस बीज को त्रिगुणित कर अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं इस रूप से जो साधक जप करते हैं, उन्हें अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ अनायास ही उपलब्ध हो जाती हैं, और उनके मुखविवर से गद्य-पद्यमयी वाणी स्वच्छन्द निर्मल धाराप्रवाह के समान प्रवहित हो कर लोगों के हृदयों को उल्लसित करती है। विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि हे माता, यदि मुक्ति प्राप्ति के लिये सिद्ध पुरुष आपके इस बीज को त्रिगुणित कर जपते हैं, तो वे तीन ही दिनों में आपके चरणकमलों की उपलब्धि कर लेते हैं।

त्वदीयबीजत्रयमेतदम्ब जपन्ति सिद्धास्तु विमुक्तिहेतोः।
तदैव मातः पदपद्मयाता भवन्ति सिद्धाश्च दिनत्रयेऽपि।
विश्वसार तन्त्र।

ताराकर्पूर के निम्नलिखित पद्यार्ध से इसके अन्तिम चरणद्वय की समानता दर्शनीय है। वहाँ कहा गया है कि उन सिद्धिसम्पन्न पुरुषों के मुखारविन्द में गद्य-पद्यमयी मधुर वाणी सदा विहार किया करती है।

तेषां वक्त्रारविन्दे विहरति मधुरा गद्यपद्यावली गीः
मातश्चन्द्रार्धचूडे सकलभयहरे सिद्धिभाजां नराणाम्।
ताराकर्पूर स्तव।

---

(२)

ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि
द्वन्द्वं ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित्।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि, चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षी-
वृन्दं चन्द्रार्धचूडे प्रभवति स महाघोरशावावतंसे।

अन्वय

हे महेशि, हे चन्द्रार्धचूडे, हे घोरशावावतंसे, सेन्दुवामश्रवण-परिगतः ईशानः इति ते अन्यद् बीजं द्वन्द्वं कृत्वा यदि मन्दचेता जनः कदाचित् एकं वारम् अपि जपति, तदा स चिरं वाचाम् अधीशम् धनदम् अपि जित्वा अम्बुजाक्षीवृन्दं मोहयन् प्रभवति।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान—

हे महेशि, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के प्रभु महेश्वर की पट्टमहिषी। अथवा 'ईशी' पद स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत है, ईश की पत्नी के रूप में नहीं प्रयुक्त है। अतः इस अवस्था में इसका अर्थ होगा सृष्टि-

स्थिति-प्रलयात्मक महत् ऐश्वर्य से समन्वित महादेवी। महेशि इस पद से साधकों के सम्पूर्ण मनोरथों के पूर्ति की क्षमता काली में प्रदर्शित की गई है।

हे चन्द्रार्धचूडे अर्थात् चन्द्रार्धसमलंकृतमस्तके। चन्द्रार्धचूडे इस पद से इस भाव की अभिव्यक्ति होती है कि आप भक्तजनों को परम आनन्द देने वाली हैं, भवताप सन्तप्तों पर अमृत की वर्षा करने वाली हैं, एवं साधकों के मन से अज्ञान-रूपी अन्धकार की हरने वाली हैं। अथवा चन्द्रार्धचूडे इस पद से निर्वाणमोक्षदायिनी इस अर्थ की अभिव्यञ्जना होती है। महानिर्वाण तन्त्र में लिखा है कि सनातन कालस्वरूप निराकार इस भगवती के ललाट में कल्याणमय अमृत प्रदर्शन के लिये शशिरूप प्रतीक स्थापित किया गया है।

नित्यायाः कालरूपायाः अरूपायाः शिवात्मनः।
अमृतत्वात् ललाटेऽस्याः शशिचिह्नं निरूपितम्।
महानिर्वाण तन्त्र।

कालीतन्त्र में भी भगवती का स्मरण—
'अष्टमीशकलाकारचन्द्रालङ्कृतमस्तकाम्।'
इस रूप में ही किया गया है।

हे महाघोरशावावतंसे, अर्थात् अत्यन्त भयानक शवविरचित विभूषणों से विभूषित। अथवा अवतंस पद का एक विशिष्ट अर्थ है कर्णविभूषण। इस अवस्था में इसका अर्थ होगा—अत्यन्त भयानक बालशव विरचित कर्णाभरण से समलंकृत। कतिपय विद्वानों के मत से 'महाघोरशावावतंसे' के स्थान पर 'महाघोरबालावतंसे' यह पाठ होना चाहिये। इस पाठ की सत्ता में एक सुन्दर अर्थ की भी अभिव्यञ्जना होगी। भगवती श्री कालिका को दो प्रकार के साधक अत्यन्त प्रिय हैं, या तो वे भगवान् शङ्कर के सदृश निर्विकार हों, या बालक के सदृश निष्काम। विवेक-चूड़ामणि में लिखा है कि क्षुधा, पिपासा तथा

शारीरिक व्यथा की परवाह न कर बालक जिस प्रकार अपने क्रीडनक (खिलौने) से खेला करता है, उसी प्रकार ममता एवं अहङ्कार से विरहित हो कर विद्वान् भी सुखपूर्वक रमण किया करता है।

क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि।
तथैव विद्वान् रमते निर्ममो निरहं सुखी।

जिस प्रकार निष्काम बालक को आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार निष्काम साधक को भी आनन्द की उपलब्धि होगी।

यथा कुमारो निष्काम आनन्दम् उपयाति।
ब्रह्मोपनिषद्।

इस 'महाघोरशावावतंसे' से यह भी सूचित होता है कि काम, क्रोध आदि पर विजय पाने के अनन्तर ही साधक श्री कालिका की उपासना करे। यद्यपि साधारण साधक के लिये काम क्रोध आदि पर विजय पाना सुगम नहीं है, तथापि उपासना के समय इन काम क्रोध आदि विकारों से दूर रहने में ही साधक का कल्याण है।

कामादींश्च रिपून् हत्वा शिरः कण्ठादिभूषणम्।
कृत्वा सम्यक् स्थितां कालीं चिन्तयेद् ब्रह्मरूपिणीम्।
काली तन्त्र।

(२) बीजोद्धार—

इस प्रकार कालिका को संबोधित कर हूं इस कूर्च बीज के उद्धार की विधि बतलाते हैं। यदि हकार (ईशानः) अनुस्वार सहित (सेन्दु) ऊकार से संयुक्त कर दिया जाय (वामश्रवणपरिगतः), तो हूं इस बीज की निष्पत्ति होती है। ताराकर्पूर स्तोत्र में हूं बीज (कूर्च बीज) का उद्धार इस प्रकार कहा गया है—

'ईशानं वामकर्णोल्लसितशशिकलाबिन्दुयुक्तं सुगुह्यं
बीजं मातस्त्वदीयं यदि जपति जनो वारमेकं जडात्मा।'
ताराकर्पूर स्तोत्र।

वरद तन्त्र में 'हूं' इस बीज का अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है। हकार से शिव का, ऊकार से भैरव का, नाद से श्रेष्ठता का एवं विन्दु से सन्तापविनाशिनी का बोध होता है, तथा इन अक्षरों से निष्पन्न हूं बीज से चैतन्य की अनुभूति होती है।

(३) फलस्तुति—

इस प्रकार निष्पन्न आपके भगवती श्री तारा के इस द्वितीय हूं बीज को द्विगुणित कर अर्थात् हूं हूं इस रूप से जो मन्दबुद्धि किसी भी अवस्था में एक बार भी जपता है, तो वह वाणी के अधिपति बृहस्पति को भी अपने प्रखर पाण्डित्य के प्रभाव से पराजित कर, तथा धनाधिपति कुबेर से भी अधिक संपत्तिशाली बन कर तथा कमलनयनी कामिनियों को मोहित कर जीवनपर्य्यन्त अकरण करण में समर्थ बन जाता है, अर्थात् इस बीज मन्त्र के प्रताप से विद्वत्ता, संपत्तिशालिता, सुन्दरीसंमोहनता तथा प्रभुता की प्राप्ति होती है। विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि हे माता आपके इस कूर्चद्वय के जप से साधक देवदानवों से भी पूजनीय, धनी और पण्डित हो जाता है।

त्वदीयकूर्चद्वयजापकत्वात् सुरासुरेभ्योऽपि भवेच्च पूज्यः।
धनित्वपाण्डित्यमथो लभेत किंवा परं देवि परापराख्ये।

विश्वसार तन्त्र।

स्वामी शङ्कराचार्य जी का कथन है कि 'हे परमेश्वरी, एक पतित पलित पर्य्युपासक के ऊपर आपके जरा-से अनुग्रह होने पर एक विचित्र अवस्था हो गई। उसमें बेध शक्तिपात के होने से कमलनयनी कामिनियां काममुग्ध हो कर उस पर निछावर होने लगीं। उस कामकलानभिज्ञ वृद्ध पुरुष के नेत्रों में मादकता का अभाव था, पर आपके अनुग्रहलेश की उपलब्धि से युवतियां उस पर ऐसी अनुरक्त हुईं कि उनकी चोटियां शिथिल हो गईं, चोलियाँ चिर गईं, तथा करधनी की कड़ी के टूट जाने से उनके नितम्ब से साड़ियाँ सरक गईं, अर्थात्

युवतियों के आकर्षण के लिये वस्तुत्रितय अपेक्षित है युवत्व, सुरूपत्व तथा कामकलाभिज्ञत्व, परन्तु इन तीनों के अभाव में युवतियों का रीझना आपके अनुग्रह का प्रताप है।

नरं वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं
तवापाङ्गाल्लोके पतितमनुधावन्ति शतशः।
गलद्वेणीबन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया
हठात् त्रुटयत्काञ्चीविगलितदुकूला युवतयः।
सौन्दर्यलहरी।

इस पद में 'वारमेकम्' इस पद से यह अभिव्यञ्जित होता है कि प्रयोग पद्धति से जप करने पर अगणित फलों की प्राप्ति होगी। इस 'वारमेकम्' में अर्थवाद की कल्पना भक्तिमान् साधक के हृदय में व्यथा की जननी है। इसी प्रकार 'कदाचित्' पद से जप के समय का – प्रातः, मध्याह्न, सायम् एवं रात्रि का – नियमन नहीं प्रतीत होता। साधक भक्त चाहे पवित्र हो अथवा अपवित्र, चाहे पूजा भवन में हो अथवा शयनागार में, पर वह सदैव जप का अधिकारी है। इस जप के लिये सभी काल शुभ माना गया है, क्योंकि इसके लिये अशुभ कभी होता ही नहीं। दिन, रात, सन्ध्या अथवा महारात्रि में किसी विशिष्ट मुहूर्त का उद्भावन न करना चाहिये।······श्री भगवती के मन्त्रजप, पूजन एवं बलि के लिये दिशा, काल, तिथि आदि का परिगणन नहीं किया गया है। इसके लिये स्वेच्छानियम कहा गया है।···· इस मन्त्र की साधना के लिये देश काल के नियम नहीं हैं, भक्ष्य भोज्य के नियम नहीं हैं, शौच आदि के भी नियम नहीं हैं। अतः दिन अथवा रात में, उषःकाल अथघा प्रदोष में सदा जप किया जा सकता है।

सर्व एव शुभः कालो नाशुभो विद्यते क्वचित्।
न विशेषो दिवा रात्रौ न सन्ध्यायां महानिशि।

× × ×

दिक्कालनियमो नास्ति तिथ्यादिनियमो न च।
न जपे कालनियमो नार्चादिषु बलिष्वपि।
स्वेच्छानियम उक्तोऽत्र महामन्त्रस्य साधने।

× × ×

न देशकालनियमो भद्यादिनियमो न हि।
शौचादिनियमो नास्ति महामन्त्रस्य साधने।
दिवसे वा तथा रात्रौ रात्रिशेषे निशामुखे।
... ... चरेज्जपम्।

पुरश्चर्यार्णव।

देखते हुए, सुनते हुए, छूते हुए, सूंघते हुए, खाते हुए, जाते हुए, सोते हुए, सांस लेते हुए, प्रलाप करते हुए, छोड़ते हुए, लेते हुए एवं पलक मारते हुए सदा जप करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं लगता।

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्।
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन् अपि।
सर्वदैव जपः कुर्यात् न दोषस्तत्र कश्चन।

ताराकर्पूर के निम्नलिखित पद्यार्ध से इसके अन्तिम चरणद्वय की समानता दर्शनीय है। वहाँ कहा गया है कि आपके भक्त धन में कुवेर के समान, तर्क काव्य शास्त्र आदि में शुक तथा गुरु के समान और सौन्दर्य में काम के समान हो जाते हैं।

वित्ते वित्तेशतुल्याः शुकगुरुसदृशास्तर्ककाव्यागमादौ,
ते ते नीलाम्बुदालीरुचिररुचितनो कामरूपा भवन्ति।

किसी पण्डित ने अन्तिम चरण का पाठ माना है—

जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयत्यम्बुजाक्षि,
चञ्चच्चन्द्रार्धचूडे प्रभवति स महाघोरशावावतंसे।

परन्तु इस पाठ में अनेक दोष दिखाई पड़ते हैं। धनद का मोहन तर्कसंमत नहीं जचता (धनदमपि मोहयति)। अम्बुजाक्षि विशेषण की सार्थकता नहीं प्रतीत होती। अन्तिम अक्षर लघु होने से 'हतवृत्त' नामक दोष का अपलाप असंभवित है। चञ्चत् पद निरर्थक है। अतः दोषचतुष्टय की सत्ता में उपर्युक्त पाठ अग्राह्य है।

—:०:—

(३)

ईशो वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो
बीजं ते द्वन्द्वमन्यद् विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमभितो वश्यभावं नयन्ति
सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति।

अन्वय

हे विगलितचिकुरे, हे सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने, हे दक्षिणे कालिके, वैश्वानरस्थः शशधरविलसद्वामनेत्रेण युक्तः ईशः इति ते अन्यद् बीजं द्वन्द्वं कृत्वा कालिका इति भावयन्तः ये जपन्ति, ते द्वेष्टारं घ्नन्ति, त्रिभुवनम् अभितः वश्यभावं च नयन्ति।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान—

हे विगलितचिकुरे अर्थात् हे मुक्तकेशी। इस पद से भगवती श्री दक्षिणकालिका की आनन्दमयता व्यक्त की गई है। अथवा केश-विन्यास आदि विकार से शून्य निर्विकाररूपमयी। हे सृक्कद्वन्द्वास्र-धाराद्वयधरवदने, अर्थात् ओष्ठद्वय प्रान्त से प्रवहमान रुधिर धारा-द्वय से सुशोभित मुखारविन्द वाली। यहाँ पर रक्त धारा से रजोगुण

सूचित होता है। हे दक्षिणे कालिके, अर्थात् सर्वदा सकल साधकों के अनुकूल हे भगवती कालिका। यहाँ पर कालिका पद से श्याम वर्ण बोधित होता है, जिससे तमोगुण व्यञ्जित होता है। हे कालिकेति अर्थात् हे अतिकालिके—निर्गतश्यामस्वरूपे अर्थात् शुद्ध चैतन्यरूपिणी। इससे सत्व गुण व्यञ्जित होता है। विशेषणत्रय से देवी त्रिगुणमयी प्रतीत होती हैं। प्रत्येक अक्षर की विवेचना से 'कालिका' इस पद का एक विलक्षण अर्थ प्रतीत होता है। 'कालिका' इस पद में ६ अक्षर हैं—क् + आ + ल् + इ + क् + आ।

क् = ब्रह्म, आ = अनन्त, ल् = विश्वात्मा,

इ = सूक्ष्मा, क् = ब्रह्म, आ = अनन्त।

अर्थात् आदि तथा अन्त से रहित ब्रह्मस्वरूपिणी। इससे आद्यन्तहीनत्व, अनन्तत्व, सूक्ष्मत्व तथा विश्वात्मकत्व ये गुण भगवती श्री काली में प्रतीत होते हैं। निर्वाण तन्त्र में लिखा है कि दक्षिण दिशा का अधिपति सूर्यसुत यमराज कालिका का नाम सुनते ही भयभीत हो, पलायनपरायण हो जाता है, अतः श्री कालिका का नाम दक्षिण हो गया है।

दक्षिणस्यां दिशि स्थाने संस्थितश्च रवेः सुतः।
कालीनाम्ना पलायेत भीतियुक्तः समन्ततः।
अतः सा दक्षिणा काली त्रिषु लोकेषु गीयते।
महानिर्वाण तन्त्र।

कामाख्या तन्त्र का मत है कि जिस प्रकार कर्म की समाप्ति पर दक्षिणा फलसिद्धि की देने वाली होती है, उसी प्रकार आराधना के पर्य्यवसान पर मुक्तिस्वरूपा देवी भी सब को फल देने वाली हैं, अतएव लोग इन्हें दक्षिणकालिका कहते हैं। श्री भगवती के इस नाम का एक और भी कारण हैं। पुरुष को दक्षिण कहा गया है शक्ति को वामा। जब से इस वामा ने दक्षिण को जीत कर महामोक्ष का देना प्रारम्भ कर दिया, तब से इसका नाम तीनों लोकों में दक्षिणा पड़ गया।

एक और भी कारण है। भगवती कालिका निर्गुण पुरुष का आविर्भाव करती हैं और तिरोभाव। अत एव तीनों लोकों में दक्षिणा इस नाम से इनका गान किया जाता है।

[१] यथा कर्मसमाप्तौ च दक्षिणा फलसिद्धिदा।
तथा मुक्तिरसौ देवी सर्वेषां फलदायिनी।
अतो हि दक्षिणा काली कथ्यते वरवर्णिनि।

[२] पुरुषो दक्षिणः प्रोक्तो वामा शक्तिर्निगद्यते।
वामा सा दक्षिणं जित्वा महामोक्षप्रदायिनी।
ततः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते।

[३] निर्गुणः पुरुषः काल्या सृज्यते लुप्यते यतः।
अतः सा दक्षिणा नाम्ना त्रिषु लोकेषु गीयते।
कामाख्या तन्त्र।

किसी के मत से 'दक्षिणे कालिकेति' के स्थान पर 'दक्षिणे त्र्यक्षरेति' यह पाठ माना गया है। अतः इसका अर्थ होगा – शिवसमारूढा कालिका। (अतिक्रान्तः त्र्यक्षरः ॐ कारात्मकः शिवो यया सा अतित्र्यक्षरा, तत्संबुद्धौ हे अतित्र्यक्षरे।) अथवा त्र्यक्षरे दक्षिणे कालिके का अर्थ है - ऐं क्लीं ह्रीं इन तीन बीजाक्षरों से निष्पन्न मन्त्रराज से बोधित, दक्षिणामूर्ति भैरव से समाराधित रक्तकालिका, अर्थात् भुवनेश्वरी।

(२) बीजोद्धार—

इस प्रकार श्री दक्षिणकालिका को संबोधित कर 'ह्रीं' इस लज्जा बीज के उद्धार की विधि बतलाते हैं। यदि हकार (ईशः) रकार से संयुक्त हो कर (वैश्वानरस्थः) अनुस्वार से सुशोभित ईकार से (शशधरविलसद्वामनेत्रेण) मिल जाता है, तो ह्रीं इस लज्जा बीज की निष्पत्ति होती है। ताराकर्पूर स्त्रोत्र में 'ह्रीं' इस लज्जा बीज का उद्धार इस प्रकार दिखाया गया है—

व्योमार्णं वामनेत्रान्वितमनलयुतं विन्दुचन्द्रार्धयुक्तं,
बीजं ते गुह्यमेतत् त्रिभुवनजननि त्रिक्षणे ये जपन्ति ।
ताराकर्पूर स्तोत्र ।

वरद तन्त्र में ह्रीं इस बीज का अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है। हकार से शिव का, रकार से प्रकृति का, ईकार से महामाया का, नाद से विश्वयोनि का तथा बिन्दु से सन्तापहारिणी का बोध होता है।

श्रीमद् देवीभागवत के सप्तम स्कन्ध में इस 'ह्री' का विशद विवेचन किया गया है। हकार से स्थूल देह का बोध होता है और रकार से सूक्ष्म देह का। इसी प्रकार ईकार से कारण देह का परिज्ञान होता है और ह्रींकार से भगवती का। विश्वात्मा हकार को रकार में विलीन कर दे, तैजसात्मा रकार को ईकार में विलीन कर दे, और चिदात्मा ईकार को ह्रीं में विलीन कर दे।

हकारः स्थूलदेहः स्यात् रकारः स्थूलदेहकः ।
ईकारः कारणात्माऽसौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम् ।
हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत् ।
रकारं तैजसं दैवम् ईकारे प्रविलापयेत् ।
ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत् ।
श्रीमद् देवीभागवत ।

इस बीजोद्धारपरक श्लोकार्ध से एक विशिष्ट अर्थ का भी भान होता है। ज्योतिः स्वरूप (वैश्वानरस्थः) चन्द्रशेखर (शशिधर विलसत्) सूक्ष्म बीजात्मक ईश्वर अमृतदायिनी सत्वगुणात्मिका माया से (शशधरविलसद्वामनेत्रेण) संयुक्त हैं। साधक को चाहिये कि वह इस द्वन्द्वात्मक शिवशक्त्यात्मक स्वरूप का ध्यान करे।

इस्लाम मतावलम्बी इस ह्रीं बीज को रहीम इस रूप से स्मरण करते हैं।

फलस्तुति—

इस प्रकार निष्पन्न आपके (भगवती त्रिपुरसुन्दरीरूपात्मिका

काली के) इस तृतीय बीज को द्विगुणित कर अर्थात् ह्रीं ह्रीं इस रूप से जो मनुष्य भगवती श्री कालिका की भावना करते हुए जपते हैं, वे अपने विद्वेषियों का, साधना में विघ्न डालने वाले काम, क्रोध आदि का विनाश कर त्रिभुवन को, स्वर्ग लोक, मर्त्य लोक और नाग लोक के निवासी देव मनुष्य नाग दानवादिकों को सर्वतोभाव से वश में कर लेते हैं।

विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि आपके इस लज्जा बीज की द्विरावृत्ति कर अर्थात् ह्रीं ह्रीं इस रूप से जो साधक जप करता है उसे पुरुषार्थ चतुष्टय के चतुर्थ पुरुषार्थ की अर्थात् मोक्ष की उपलब्धि होती है, और दयामयी कालिका के अनुग्रह से महीपाल हो कर वह संसार का शासक होता है।

त्वदीयलज्जाद्वयजापकत्वात् भवेन् महेशानि चतुर्थसिद्धिः।
दयासमुद्रस्य वरप्रसादात् भवाधिपत्यं लभते नरेशः।
विश्वसार तन्त्र।

इन पूर्वोक्त तीन श्लोकों में तीन बीज मन्त्रों के क्रीं, हूं और ह्रीं के उद्धार का क्रम निर्दिष्ट किया गया है, जिनकी अधिष्ठात्री देवता तीन हैं काली (क्रीं) तारा (हूं) एवं त्रिपुरसुन्दरी (ह्रीं), और इन तीन बीज मन्त्रों के जप का विधान भी काली को लक्ष्य कर बतलाया गया है। अतः इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक-सा है कि यह कैसे हो सकता है। विभिन्न बीज मन्त्रों से निष्पन्न मूर्ति का एकरूपत्व कुछ अटपटा-सा है। परन्तु इसका उत्तर तारारहस्य तन्त्र में स्पष्ट रूप से मिल जाता है। वहाँ कहा गया है कि 'जो काली है, वही तारा है, वही नील सरस्वती है, और वही त्रिपुरसुन्दरी है। ये सब सकल वांछित मनोरथों की देने वाली हैं। जो कोई साधक इनमें अभेद बुद्धि रख कर साधना करता है, वह संसार में पूजनीय होता है और तारा (बृहस्पति की स्त्री) के पुत्र बुध से अभिन्न हो जाता है, अर्थात् बुध के समान बुद्धिसम्पन्न हो जाता है, परन्तु जो साधक इनमें भेद भावना रख कर

समाराधना करता है उसका किसी प्रकार भी उद्धार नहीं हो सकता, और वह नरकगामी होता है।'

यथा काली तथा तारा तथा नीलसरस्वती।
सर्वाभीष्टफलप्रदा तथा त्रिपुरसुन्दरी।
अभेदमतमास्थाय यः कश्चित् साधयेन्नरः।
त्रिलोके स तु पूज्यः स्यात् तारापुत्रश्च एव सः।
भेदं कृत्वा यदा मन्त्री साधयेदत्र साधनम्।
न तस्य निष्कृतिर्देवि निरये पच्यते हि सः।
तारारहस्य।

वृहन्नील तन्त्र में भी काली तारा तथा त्रिपुरसुन्दरी में अभेद प्रदर्शित किया गया है। वहाँ लिखा है कि यह नारायणी काली है, शून्य-वाहिनी तारा है, रक्तकाली त्रिपुरसुन्दरी है और नादिनी भैरवी है।

इयं नारायणी काली तारा स्यात् शून्यवाहिनी।
सुन्दरी रक्तकालीयं भैरवी नादिनो तथा।
वृहन्नील तन्त्र।

कालिका के दो भेद बतलाए गए हैं, कृष्णा और रक्ता। कृष्णा कालिका को दक्षिणकालिका कहते हैं, और रक्ता कालिका को त्रिपुरसुन्दरी।

कालिका द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ता प्रभेदतः।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता।

इस स्थल पर सत्व रज तथा तम का, गुणत्रितय का विवेचन अनुपयुक्त न होगा।

(क) सत्वगुण —

सत्व गुण प्रीत्यात्मक होता है, और सुख से प्रीति की समुत्पत्ति होती है। इस सत्व का वर्ण श्वेत होता है, और यह धर्म में प्रीति-जनक है। इससे सत् श्रद्धा की उत्पत्ति होती है और असत् श्रद्धा की

निवृत्ति। ऋजुता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धृति, अनुकम्पा, लज्जा, शान्ति एवं सन्तोष इसके परिचायक हैं।

सत्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात् प्रीतिसमुद्भवम्।
श्वेतवर्णं तथा सत्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा।
सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यम् असच्छ्रद्धानिवारकम्।
आर्जवं च तथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः।
अनुकम्पा तथा लज्जा शान्तिः सन्तोष एव च।
एतैः सत्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा।

(ख) रजोगुण—

रजोगुण अद्भुत अप्रीति का जनक है, और दुःख से अप्रीति का उद्भव होता है। इस रजोगुण का वर्ण रक्त होता है। द्वेष, द्रोह, मात्सर्य, स्तम्भ, उत्कण्ठा, निद्रा, राजसी श्रद्धा, मान, मद एवं गर्व इसके परिचायक हैं।

रक्तवर्णं रजः प्रोक्तम् अप्रीतिकरमद्भुतम्।
अप्रीतिः दुःखयोगत्वाद् भवत्येव सुनिश्चिता।
प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च।
उत्कण्ठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी।
मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते।

(ग) तमोगुण—

तमोगुण मोहन स्वरूप है तथा विषाद का जनक है। इसका वर्ण श्याम होता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कृपणता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, नास्तिकता एवं परच्छिद्रानुदर्शन इसके परिचायक हैं।

कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत्।
आलस्यं च तथाऽज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा।
विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च।

बैषम्यं वातिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम् ।
दे० भा० अ० स्क० ८ अ० ।

—:o:—

(४)

ऊर्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं ततोऽधः
सव्येऽभीतिं वरं च त्रिजगदघहरे दक्षिणे कालिके च ।
जप्त्वैतन्नाम ये वा तव विमलतनुं भावयन्त्येतदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितरदने सिद्धयस्त्र्यम्बकस्य ।

अन्वय

हे त्रिजगदघहरे, हे अम्ब, हे प्रकटितरदने, ये साधकाः दक्षिणे कालिके च (इति) एतन्नाम जप्त्वा वामे करकमलतले ऊर्ध्वं कृपाणम्, ततः अधः छिन्नमुण्डम्, सव्ये करकमलतले ऊर्ध्वम् अभीतिम्, ततः अधः वरं च (इति) एतत् तव विमलतनुं भावयन्ति, तेषां करस्थाः त्र्यम्बकस्य अष्टौ सिद्धयः भवन्ति ।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान---

हे त्रिजगदघहरे, हे त्रिभुवन के त्रिविध कायिक वाचिक मानसिक पाप विनाशिनी । इस पद से यह अभिव्यञ्जित होता है कि अपने पापों से छुटकारा पाने के लिये त्रिभुवन के प्रत्येक प्राणी को भगवती कालिका की उपासना मातृरूप से करनी चाहिये । अत एव श्री महाकाल महाराज ने अम्ब इस पद से श्री कालिका को संबोधित किया है ।

हे अम्ब, हे जगन्माता। माता पद की विवेचना प्रथम पद्य की व्याख्या में विस्तार से की गई है। यहाँ पर हम इतना कहे विना नहीं रह सकते कि पुत्र सैकड़ों अपराध कर सकता है, माता की उपेक्षा भी कर सकता है, परन्तु माता का वात्सल्यमय हृदय उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जरा सा पुत्र ने करुण क्रन्दन किया। माँ प्रेम बिभोर हो दौड़ पड़ी। भगवान् श्री शङ्कराचार्य महाराज ने कहा है कि हे माता यदि मेरे ऊपर आपका परिपूर्ण अनुग्रह बना रहता है तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है, अपराधपरायण विमुख सन्तान की भी उपेक्षा माता नहीं किया करती।

जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि।
अपराधपरं परावृतं नहि माता समुपेक्षते सुतम्।
देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र।

पुराणों का मत है कि सन्तान से पद-पद पर अपराध होता ही रहता है। पर एक मात्र माँ के अतिरिक्त उसे कौन बरदास्त कर सकता है। अत एव तुम लोग तत्काल ही ऐकान्तिक भक्ति के साथ उस जगज्जननी माँ के शरण में जाओ, वही तुम लोगों का कार्य करेगी।

अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे।
कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना।
तस्माद् यूयं पराम्बां तां शरणं यात मातरम्।
निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति।
श्रीमद्देवी भागवत, शिव पुराण।

शिवपुराणान्तर्गत उमा खण्ड में लिखा है कि जिस प्रकार बछड़ों को देख कर गायें घबड़ा कर दौड़ने लगती हैं, उसी प्रकार भवत्सदृश भक्तों को देख कर मैं व्याकुल हो जाती हूँ, और उनके त्रिविध सुख के संपादन के लिये व्यग्र हो उठती हूँ।

वत्सान् दृष्ट्वा यथा गावो व्यग्रा धावन्ति सत्वरम् ।
तथैव भवतो दृष्ट्वा धावामि व्याकुला सती ।
शिव पुराण ।

अन्त में भक्त भगवती से प्रार्थना करता है कि हे माता, शास्त्रकारों ने माँ और बेटे में एक साहचर्यात्मिका व्याप्ति का उल्लेख किया है। मेरी अभिलाषा है कि मुझे वह उपलब्ध होती रहे। जहाँ-जहाँ धुवाँ रहता है, वहाँ-वहाँ अग्नि रहती है, इस दृष्टान्त से साहचर्यात्मिका व्याप्ति का निदर्शन किया जाता है।

एषावयोरवितता किल देवि भूयाद्
व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये ।
श्रीमद्देवी भागवत ।

हे प्रकटितरदने हे स्पष्ट प्रतीयमान दशनच्छवि से सुशोभित। यहाँ पर श्वेत दशन कान्ति से सत्व गुण का, रक्त रसना से रजो गुण का और श्याम मुखकुहर से तमो गुण का निदर्शन किया गया है। अतः आप सत्वमय श्वेत दशनों से रजोमय रक्त रसना को दबा कर तमोमय तम (अज्ञानान्धकार) का उन्मूलन करती हैं, जिससे त्रिगुणात्मिका आपमें केवल सत्वगुण ही अवशिष्ट रह जाता है।

(२-४) मन्त्रोद्धार, स्वरूपवर्णन तथा फल स्तुति—

जो साधक 'दक्षिणे कालिके' इस नाम को जप कर आपकी उस चतुर्भुजमयी मूर्ति का ध्यान करते हैं, जिसके ऊर्ध्वगत वाम करकमल में कृपाण है, तथा अधोगत वाम करकमल में गलद् रक्तधाराविशिष्ट छिन्न मुण्ड, एवं इसी प्रकार ऊर्ध्वगत दक्षिण करकमल में अभयमुद्रा है, तथा अधोगत दक्षिण करकमल में वरमुद्रा, तो उस साधक को अनायास ही परमेश्वर त्र्यम्बक की आठों अणिमा आदि सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाती हैं।

विश्वसार तन्त्र में लिखा है कि हे माता, आपका नाम 'दक्षिणे कालिके' है। इसके जापक को पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति होती है।

ततः स्वनाम्नः शृणु मातरेतत् फलं चतुर्वर्गमयं मनन्ति।

विश्वसार तन्त्र।

भगवती श्री कालिका के इस स्वरूप से एक विशिष्ट रहस्य की अभिव्यञ्जना होती है। भगवती श्री कालिका का कृपाण ज्ञान का प्रतीक है, जिसके द्वारा साधक के द्वारा विहित पापपुण्यमय सकाम अथवा अकाम कर्म के बन्धन का कर्तन होता है। इसके प्रतिपादन के लिये छिन्न मुण्ड का धारण कराया गया है। इसी प्रकार वर मुद्रा एवं अभय मुद्रा भी शरणागत दीनार्त परित्राण परायणता के प्रतीक हैं। शिव धर्मोत्तर में लिखा है कि ज्ञान रूपी खड्ग से सकाम अथवा निष्काम विहित कर्मों के बन्धन को काट कर साधक आत्मा का साक्षात्कार करता है।

तस्मात् ज्ञानासिना तूर्णम् अशेषं कर्मबन्धनम्।
कामाकामकृतं छित्वा शुद्धश्चात्मनि तिष्ठति।

शिव धर्मोत्तर।

योगिनी तन्त्र के आधार पर यह बलपूर्वक कहा जाता है कि पाप और पुण्य नामक पशुओं की बलि ज्ञान रूपी खड्ग से कर देनी चाहिये।

पापपुण्यं पशुं हत्वा ज्ञान खड्गेन शाम्भवि।

योगिनी तन्त्र।

इन सिद्धियों का सोदाहरण विवेचन मद्विरचित सरस्वती नाम्नी नाटिका में विस्तार से किया गया हैं। इन सिद्धियों के नाम हैं--

(१) अणिमा (२) महिमा (३) लघिमा (४) गरिमा (५) प्राप्ति (६) प्राकाम्य (७) ईशित्व (८) वशित्व।

(१) जिसके प्रभाव से विशालकाय ह्रस्वकाय में परिणत हो जाता है, उसे अणिमा सिद्धि कहते हैं।

लोकं विशालकायं लिलिपुटदेशीयह्रस्वत्वे ।
परिणमयन्ती, चित्रं प्रकुर्वती साऽणिमा सिद्धिः ।

(२) जिसके प्रभाव से क्षुद्र शरीर विशालकाय में परिणत हो जाता है, उसे महिमा सिद्धि कहते हैं।

क्षुद्रशरीरस्य सतः सुमेरुसदृशे विशालेऽङ्गे ।
विनिपातं निगदन्ती महिमा कस्य न विमोहाय ।

(३) जिसके बल से गुरु (भारी) लघुरूप में परिणत हो जाता है, उसे लघिमा सिद्धि कहते हैं।

यो गुरुशरीरयुक्तो लघुतम आस्ते लघूकरणात् ।
लघिमासिद्धिसमेतं तं वन्दे वन्दितैर्वन्द्यम् ।

(४) जिसके बल से लघु (हलका) गुरु (भारी) में परिणत हो जाता है, उसे गरिमा सिद्धि कहते हैं।

क्षुद्रकलेवरकलितो बलवीर्यैर्भवति दुर्लङ्घ्यः ।
यामाश्रित्य नतोऽहं तद्गरिमासिद्धिपदपद्मे ।

(५) जिसके प्रताप से दूरगत पदार्थों का अधिगम अपने अङ्ग की वृद्धि के द्वारा किया जाता है, उसे प्राप्ति सिद्धि कहते हैं।

दूरगतान् अपि अर्थान् निजाङ्गवृद्ध्याधिगच्छतः पुंसः ।
एकासनमधिवसतः प्राप्तिः सिद्धिः प्रकर्षाय ।

(६) जिसके प्रताप से प्रकृति पर प्रभुता की प्राप्ति होती है उसे प्राकाम्य सिद्धि कहते हैं। इसके प्रभाव से पुरुष अप्रतिहतगति हो जाता है।

प्रकृतेः प्रभुतां ददती सिद्धिः प्राकाम्यनाम्नीयम् ।
अप्रतिरुद्धगमनकं नरं विधत्ते न सन्देहः ।

(७) जिसके आश्रय से पूर्वोक्त ६ सिद्धियां दूसरे पुरुष में भी परिणत की जाती हैं, उसे ईशित्व सिद्धि कहते हैं।

अणिमादीनां षण्णां योऽन्यस्मिन्नपि विभावयति ।
ईशित्वेन समेतं तं नररत्नं नमस्यामः ।

(८) जिसके आश्रय से प्रवल को भी, पूर्वोक्त सिद्धि समेत को भी, वश में किया जाता है, उसे वशित्व सिद्धि कहते हैं ।

प्रवलस्य वशीकरणं वशित्वरूपेण विख्यातम् ।

त्र्यम्बक—

त्र्यम्बक पद की विवेचना अनेकों प्रकार से की गई है। शिवपुराण में लिखा है कि ज्ञान, क्रिया एवं इच्छा ही भगवान् शिव के तीन नेत्र हैं, जिससे ये त्र्यम्बक अथवा त्रिलोचन कहे जाते हैं ।

ज्ञानक्रियेच्छारूपं हि शम्भोर्दृष्टित्रयं विदुः ।
शिव पुराण ।

महानिर्वाण तन्त्र में लिखा है कि भगवान् शङ्कर अथवा भगवती श्री कालिका के तीन नेत्र हैं सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि ।

स्कन्द पुराण में लिखा है कि भगवान् शंकर त्रिदेव के—ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के जनक हैं, अतः ये त्र्यम्बक कहे जाते हैं ।

यजुर्वेद के भाष्यकार उव्वट तथा महीधर की धारणा है कि त्र्यम्बक पद त्रिलोचन के अर्थ में व्यवहृत है। नेत्रत्रितय का विवेचन 'गतासूनां बाहुप्रकर०' इस पद्य की व्याख्या में भी किया गया है।

जप्त्वा भावयन्ति—

अनेक विद्वानों का मत है फि जपात्मक तथा ध्यानात्मक दो क्रियायें एक साथ नहीं हो सकतीं। जप में संलग्न मनुष्य यदि भगवती श्री कालिका के स्वरूप की भावना करने लगेगा, तो उसका जप अन्य-मनस्कतया क्रियमाण होने से निष्फल-सा रहेगा, अतः जप कर ध्यान करना चाहिये। शास्त्रों में लिखा है कि साधक जब जप करते-करते परिश्रान्त हो जाय, तब ध्यान करने लगे, और जब ध्यान से

परिश्रान्त हो जाय तब जप करने लगे। इस प्रकार जप और ध्यान में संलग्न साधक को शीघ्र ही यौगिक सिद्धि समुपलब्ध होती है।

जपात् श्रान्तः पुनर्ध्यायेत् ध्यानात् श्रान्तः पुनर्जपेत्।
जपध्यानाभियुक्तस्य क्षिप्रं योगः प्रसिध्यति।
शिव पुराण।

कौलावली तन्त्र का कथन है कि साधक को चाहिये कि जप करने से पूर्व भगवती श्री कालिका का ध्यान करे, और फिर ध्यान के अन्त में जप करे। इस प्रकार जप और ध्यान में समासक्त साधक को शीघ्र ही सिद्धियां समुपलब्ध होती हैं।

जपस्यादौ शिवां ध्यायेत् ध्यानस्यान्ते पुनर्जपेत्।
जपध्यानसमायुक्तः शीघ्रं सिध्यति साधकः।
कौलावली तन्त्र।

भूति तन्त्र में लिखा है कि जिस-जिस मन्त्र की जो-जो देवता बतलाई गई है, उस-उस देवता का स्वरूप ध्यान कर मानसिक जप करे।

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत्।
भूति तन्त्र।

जप कर ध्यान करते हैं (जप्त्वा भावयन्ति) इस वाक्य में पूर्व-कालिक 'जप्त्वा' का प्रयोग अस्वारस्यसूचक-सा प्रतीत होता है, क्योंकि इससे यह द्योतित होता है कि जप कार्य करने के अनन्तर ध्यान कार्य किया जाता है। परन्तु उत्कृष्ट साधक जप कार्य एवं ध्यान कार्य एक साथ करता है। अतः यह वाक्य 'स्नात्वा भुक्त्वा ग्रामं गच्छति' (स्नान कर एवं भोजन कर गाँव को जाता है) के समान नहीं है, जहाँ पर एक क्रिया के सम्पादन के अनन्तर दूसरी क्रिया का सम्पादन होता है, पर यह मुखं व्यादाय स्वपिति (मुँह बा कर सोता

है) के समान है, जहाँ पर मुख का बाना और सोना एक साथ होते हैं, अतः जप करना तथा ध्यान करना एक साथ ही पूर्वकालिक क्रिया की सत्ता में भी हो सकते हैं। यद्यपि न्यायमुक्तावलीकार के मत से मन की गति अत्यन्त सूक्ष्म है, काल की सूक्ष्मता तो निमेष से परिज्ञात होती है। अतः सुई से शत-पत्रों का भेदन एककालिक प्रतीक होने पर भी एक पत्र के भेदन के अनन्तर द्वितीय पत्र का भेदन तर्कसम्मत है, इसी प्रकार तृतीय पत्र, चतुर्थ पत्र आदि के भेदन भी हैं। अतः काल तथा मन की सूक्ष्मता के कारण दो क्रियाओं की सत्ता एक समय में प्रतीत होती है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। एक काल में अनेक क्रियायें हो सकती हैं। देखना, सुनना, सूंघना, चलना आदि क्रियायें एक साथ होती रहती हैं। अतः एक काल में अनेक क्रियाओं की सत्ता हो सकती है। शाक्त दर्शन तो स्पष्ट रूप से अनेक क्रियाओं की सत्ता मान कर अनुष्ठान की प्रारम्भिक अवस्था में उनका निर्देश भी करता है। परन्तु यह कार्य (दो अथवा अनेक क्रियाओं की सत्ता) दुरूह है। साधारण साधक के लिए एक काल में जप करना और ध्यान लगाना कठिन है।

---

१. समय विवेचन—

$\frac{१}{४}$ निमेष = १ त्रुटि $\frac{१}{१४७०००}$ से०	३० मुहूर्त = १ दिन
२ त्रुटि = १ लव $\frac{१}{७३५००}$ से०	३० दिन = १ मास
२ लव = १ यव $\frac{१}{३६७५०}$ से०	२ मास = १ ऋतु
१५ यव = १ काष्ठा $\frac{१}{२४५०}$ से०	३ ऋतु = १ अयन
३० काष्ठा = १ कला $\frac{१}{७५}$ से०	२ अयन = १ वर्ष
३० कला = १ क्षण $\frac{२}{५}$ से०	४३२०००० वर्ष = १ चतुर्युग
३० क्षण = १ पल २४ से०	१००० चतुर्युग = १ दिन ब्रह्माका
६० पल = १ नाडिका २४ मि०	१००० ,, = १ रात ब्रह्माकी
२ नाडिका = १ मुहूर्त ४८ मि०	२००० ,, = १ कल्प।

वाचिक, उपांशु तथा मानसिक इन त्रिविध रूपों से जप की त्रिविधता सर्व सम्मत है।

१०० वाचिक जप = १ उपांशु जप।
१०० उपांशु जप = १ मानसिक जप।
मनसा मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसं स्मृतम्।
वाचिकस्य शतं ज्ञेयम् एकोत्तरमुपांशुना।
तस्मात् शतगुणं प्रोक्तं मानसं जपमुत्तमम्।
कौलावली तन्त्र।

जपित्वा के स्थान पर जप्त्वा का प्रयोग तान्त्रिक आर्ष है।

इस स्थल पर इन्द्रियों का एवं उनके द्वारा विहित कार्यकलापों का उल्लेख अनुचित न होगा। शास्त्रकारों ने मूलतः इन्द्रियों के दो भेद माने हैं कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय। कर्मेन्द्रिय द्वारा किसी बाह्य क्रिया का संपादन होता है, और ज्ञानेन्द्रिय द्वारा किसी आभ्यन्तर क्रिया का—अनुभूति का। अत एव इस ज्ञानेन्द्रिय को बुद्धीन्द्रिय भी कहते हैं।

कर्मस्वेतानि वर्तन्ते तेन कर्मेन्द्रियाणि तु।
बुद्धीन्द्रियाणि देवेशि वर्तन्ते बुद्धियोगतः।

बाह्य कार्य संपादन में समर्थ शारीरिक अवयवों के आधार पर पाँच कर्मेन्द्रियों की कल्पना की गई है। (१) वागिन्द्रिय, (२) हस्तेन्द्रिय, (३) पादेन्द्रिय (४) पायु-इन्द्रिय और (५) उपस्थ इन्द्रिय।

(१) वागिन्द्रिय--

संस्कृत (शिष्ट समुदाय की भाषा), प्राकृत (जन साधारण की भाषा, अपभ्रंष्ट (अशिक्षितों की भाषा) एवं गीयमान अक्षरस्वरूप अनुनासिक पदावली इस प्रकार की चतुर्विध वाणी जिसके द्वारा उच्चरित होती है, उसे वाक् इन्द्रिय कहते हैं।

वागिन्द्रियं वदेद् वाणीं सा च वाणी चतुर्विधा ।
संस्कृता प्राकृती चैव अपभ्रष्टानुनासिका ।

(२) हस्तेन्द्रिय—

छेदन, भेदन, व्यधन, योजन, ग्रहण, दान और आयोधन (युद्ध) जिसके द्वारा संपादित होते हैं, उसे हस्त-इन्द्रिय कहते हैं ।

छेदनं भेदनं दानं व्यधनं शिल्पयोजनम् ।
ग्रहणं विजयश्चैव सर्वं हस्तेन्द्रिये स्थितम् ।

(३) पादेन्द्रिय—

सम, निम्न एवं उन्नत प्रदेशों में, कण्टकाकीर्ण, लोष्ठपरिपूरित एवं बालुकामय स्थलों में, कर्दम पिच्छिल जलीय देशों में, राजमार्गों में एवं कूचों में, सोपानसमन्वित अट्टालिकाओं में एवं पर्वतीय प्रदेशों में तथा देश देशान्तरों में जिसके द्वारा गमनकार्य होता है, उसे पाद-इन्द्रिय कहते हैं ।

समनिम्नोन्नताश्चैव लोष्ठकण्टकबालुकाः ।
कर्दमो जलदुर्गाणि रथ्याट्टालकपर्वताः ।
पादेन्द्रियेण गम्यन्ते देशान्तरगमागमे ।

(४) पायु-इन्द्रिय—

जिसके द्वारा मलमोक्ष एवं अपान वायु का संचार होता है, उसे पायु-इन्द्रिय कहते हैं ।

उत्सर्गे पर्दिते चैव पायुर्वै चेष्टते सदा ।

(५) उपस्थेन्द्रिय—

जिसके द्वारा मिथुनजन्य अलौकिक आनन्द का उद्रेक होता है, उसे उपस्थ इन्द्रिय कहते हैं । इसके चक्कर में पड़ने के कारण लोक-शास्त्र की मर्यादा का अतिक्रमण हो जाता है, जिससे गम्यागम्य का विवेक नष्ट हो जाता है । इसका एक और कार्य भी है मूत्रपरित्याग ।

आनन्दकृद् उपस्थश्च गम्यागम्यप्रवर्तकः ।

इस प्रकार कर्मेन्द्रियों का उल्लेख कर अब ज्ञानेन्द्रियों का निरूपण करते हैं। आभ्यन्तर कार्य के संपादन में जिन पांच ज्ञानेन्द्रियों की व्यवस्था की गई है, वे हैं—(१) श्रवण-इन्द्रिय (२) चक्षुः इन्द्रिय (३) रसना-इन्द्रिय (४) नासिका-इन्द्रिय और (५) त्वग्-इन्द्रिय।

इनमें-से प्रथम चतुष्टय की स्थिति केवल शिर में है और अन्तिम त्वगिन्द्रिय की स्थिति संपूर्ण शरीर में। इन इन्द्रियों से किसी बाह्य कार्य का संपादन नहीं होता, किन्तु इन्हें स्व-स्व विषयक अनुभव का ही अधिगम होता है। अतः इनको ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं।

(१) श्रवणेन्द्रिय—

षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत एवं निषध नामक स्वर सप्तक, गान्धार, मध्यम एवं षड्ज नामक ग्रामत्रय, २१ मूर्छनायें ४९ तान—इन सब को मिला कर स्वरमण्डल कहा जाता है। सूक्ष्म रूप से यह चराचर ध्वनि में व्याप्त हैं। इनके अतिरिक्त स्थूल ध्वनि भी हैं, जैसे—भेरी, पटह, शङ्ख, मृदङ्ग, पणव, बांसुरी, गोमुख, वीणा, सरंगी, जलतरङ्ग, पियानो, हारमोनियम, मजीरा, ढोलक, सीटी, ताली आदि मुख एवं हाथ से बजाने वाले वाद्यों की मधुर अथवा तीव्र ध्वनि; सजातीय अथवा विजातीय पदार्थ के संयोग अथवा वियोग से समुत्पन्न नाद; स्वतन्त्र समीर के सञ्चार से नदी, समुद्र, वृक्ष आदि में समुत्पन्न ध्वनि; पूर्वोक्त चतुर्विध वाणी (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा गीयमान अक्षर) के पद, चाहे वे व्यक्त हों चाहे अव्यक्त, चाहे वे सार्थक हों अथवा निरर्थक। इन सूक्ष्म और स्थूल ध्वनि को श्रवणेन्द्रिय ग्रहण करती है। संक्षेप में यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ध्वनि मात्र ही श्रवणेन्द्रिय का विषय है।

षड्जाख्यर्षभगान्धारमध्यमाः पञ्चमः प्रिये।
धैवतो निषधश्चैव स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः।
गान्धारो मध्यमः षड्जः त्रयो ग्रामाश्च पार्वति।
सप्त स्वराः, त्रयो ग्रामाः, मूर्छनाश्चैकविंशतिः।

तान एकोनपञ्चाशद् इत्येतत् स्वरमण्डलम् ।
सूक्ष्मशब्दाः स्मृता ह्येते चराचररवस्थिताः ।
स्थूलांश्चैव प्रवक्ष्यामि यथावत् तान् निबोध मे ।
भेरीपटहशङ्खोत्थो मृदङ्गपणवोत्थितः ।
वेणुगोमुखशब्दश्च मन्दलो दर्दुरो ध्वनिः ।
तन्त्रीवाद्यानि चित्राणि करवाद्यानि यानि च ।
संयोगजवियोगोत्थाः काष्ठपाषाणवारिजाः ।
अपभ्रंशोऽनुनासिक्यः संस्कृतः प्राकृतो रवः ।
सप्तस्वरप्रतिष्ठानि व्यक्ताव्यक्तानि चैव हि ।
उक्तानुक्तानि गृह्णाति श्रवणेन्द्रिययोगतः ।
शब्दोऽस्य विषयो ह्येष येन बुध्येत पुद्गलः ।

(२) चक्षुरिन्द्रिय—

श्वेत, श्याम, रक्त, पीत, नील, हरित, नरंगी, बैंजनी, केशरिया, गुलाबी, मटमैला, गेरुआ, धूम्रक, कपिल, पिङ्गल, बभ्रु, बादली, वसंती आदि रंग विशेषों का, नर, नारी, पशु, पक्षी, सर्प आदि जीवधारियों का, नदी, नद, सागर, सरोवर, पर्वत आदि स्थिर एवं चर पदार्थों का, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, विद्युत्, तैलादि-दीपक एवं विद्युद्-दीपक (बल्व) आदि की ज्योति का, संक्षेपतः रंग, रूप, आकार एवं ज्योति का दर्शन जिस इन्द्रिय के द्वारा होता है, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में यों कहिये कि रूप ही चक्षुरिन्द्रिय का विषय है ।

चक्षुरिन्द्रियकार्याणि कथ्यमानानि मे शृणु ।
सितं रक्तं च पीतं च कृष्णं हरितधूम्रकम् ।
कपिलं पिङ्गलं बभ्रु अन्यान्यपि विशेषतः ।
नरनारीपशुमृगान् ज्योतिः स्थावरजङ्गमम् ।
रूपाकृतिविविक्तानि चक्षुः पश्यति सर्वदा ।
रूपाख्यो विषयो ह्यस्य येनात्मा प्रतिबुध्यते ।

(३) रसनेन्द्रिय

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त एवं कषाय—ये छ प्रकार के रस माने गये हैं। आम, अंगूर अमरूद, केला, सेव, सिंघाड़ा, संतरा, अनार आदि फलों की, बरफी, पेड़ा, कलाकंद, रसगुल्ला, जलेबी, इमिरिती आदि मिष्ठान्नों की, राब, खाँड़, गुड़, सक्कर, मिश्री आदि पदार्थों की मधुरता (मिठास) का, अमिया, निम्बू, अनार, इमली आदि की अम्लता (खटास) का, सैंधव, काला निमक, जवाखार आदि की लवणता का, सोंठ, पीपर, मिरच, नीम आदि की कटुता का, लाल मिरचा, लौंग मिरचा चिरायता आदि की तिक्तता का, आँवला, हर्र, बहेड़ा आदि की कषायता का परिज्ञान जिस इन्द्रिय के द्वारा विश्लेषीकरण पूर्वक होता है, अर्थात् जो इन्द्रिय वर्गीकरण पूर्वक इनका स्वाद जानती है, उसे रसनेन्द्रिय कहते हैं। वस्तुतः जिह्वा का विषय रस है।

मधुराम्लरसं चैव लवणं कटुतिक्तकम्।
कषायमिश्रं स्वादुं च जिह्वा वेदयते रसम्।
रसोऽस्य विषयो ह्येष येन बुध्येत पुद्गलः।

(४) नासिकेन्द्रिय—

पुष्प, फल आदि की, इत्र, तैल आदि की, कस्तूरी, केशर, हींग आदि की सुगन्धि का; एवं सड़े हुए पदार्थों की तथा मलमूत्र आदि की दुर्गन्धि का परिज्ञान जिस इन्द्रिय के द्वारा होता है, उसे नासिकेन्द्रिय कहते हैं। द्विविध गन्ध के परिघ्राण की शक्ति नासिका के अग्रभाग में सन्निहित है। इस नासिकेन्द्रिय का विषय गन्ध है।

सुरभिर्दिव्यगन्धश्च दुर्गन्धश्चाप्यनेकधा।
उभौ जिघ्रति नासाग्रे विषयो गन्धसंज्ञितः।
येनाऽसौ बुध्यते घ्रेत्री अहङ्कारेण मोहितः।

(५) त्वगिन्द्रिय—

कोमल, कठिन, कठोर, कर्कश, उष्ण, शीतल, चिकना, लिबलिबा,

खुरखुरा, कंकरीला, पथरीला, नोकीला आदि पदार्थों का; बाण, शक्ति, भाला, खड्ग आदि के आघात का; मुक्का, घूंसा, लात, लाठी आदि से ताड़न का; तथा तीक्ष्णधार वाले औजारों से छेदन का स्पर्शानुभव जिसके द्वारा अधिगत होता है, उसे त्वचा इन्द्रिय कहते हैं। इस इन्द्रिय का विषय स्पर्श है।

मृदुं च कठिनं चैव कर्कशं शीतलं तथा।
उष्णं च पिच्छिलं लोष्ठं कर्दमं वालुकास्तथा।
शरकुन्तासिघातानि ताडनं छेदनं तथा।
एतानि वै विजानाति स्पर्शनं च त्वगिन्द्रियम्।
स्पर्शोऽस्य विषयो ह्यस्य येन बुध्येत पुद्गलः।

इन उपर्य्युक्त दश इन्द्रियों में मन परिभ्रमण किया करता है। इसके परिभ्रमण का कारण है संकल्प और विकल्प। यह सदा अपनी चञ्चलता के कारण संदिग्धावस्था में पड़ कर अस्थिर रहा करता है। सिद्ध महापुरुषों के लिये भी इसका जीतना अति दुष्कर है। इसके कारण साधारण पुरुष तो पिशाचग्रस्त पुरुष के समान अनियन्त्रित एवं उच्छृङ्खल हो जाते हैं। बन्ध और मोक्ष का, पुण्य और पाप का, एवं धर्म और अधर्म का यही प्रधान कारण है।

संकल्पे च विकल्पे च दशधाक्षेषु धावति।
अनिवारितसन्देहम् अजय्यं सर्वदेहिनाम्।
म श्च कथितं ह्येतद् धर्माधर्मनिबन्धनम्।

तन्त्र शास्त्रों में मनसहित दश इन्द्रियों का विवेचन विशद रूप से किया गया है, जिससे साधक इन इन्द्रियों का पूर्ण परिज्ञान कर उनका निग्रह कर सके, मन पर विजय पा सके। जब राजयोग, हठयोग, वेदान्त आदि विषयों से दूर रह कर इन्द्रियों के वश करने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं, तब तन्त्रमार्ग विषयों के बीच में रह कर मन के निग्रह का निर्देश भी करते हैं, वासना पर अधिकार करने का आदेश

देते हैं, क्योंकि कोई क्रियाकलाप न तो स्वयं दूषित है और न अदूषित। परन्तु यदि वासना दूषित है तो दोष लगता है अन्यथा नहीं। इसका स्पष्टीकरण आलिङ्गन क्रिया से करते हैं। जिस अङ्ग से पत्नी का आलिङ्गन एवं चुम्बन किया जाता है, उसीसे पुत्री का भी। परन्तु दोनों के आलिङ्गन एवं चुम्बन रूप क्रिया में महान् अन्तर है। उसका मूल कारण है भावना, जिस पर विजय प्राप्ति के लिये साधक को प्रयास करना चाहिये।

अत एव यदा यस्य भावना कुत्सिता भवेत्।
तदा दोषाय भवति नान्यथा दूषणं क्वचित्।
कौलावली तन्त्र।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
यथैवालिङ्गिता कान्ता तथैवालिङ्गिता सुता।
धर्मशास्त्र।

———

(५)

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिललितं तद्त्रयं कूर्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वं च पश्चात् स्मितमुखि तदधष्ठद्वयं योजयित्वा।
मातर्ये त्वां जपन्ति स्मरहरमहिले भावयन्तः स्वरूपं
ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति।

अन्वय

हे स्मितमुखि, हे मातः, हे स्मरहरमहिले, वह्निसंस्थं विधुरतिललितं वर्गाद्यं तत् त्रयमम्, ततः कूर्चयुग्म्, तत् पश्चात् लज्जाद्वयं च तदधः ठद्वयं योजयित्वा, ये साधकाः स्वरूपं (त्वत्स्वरूपं मनुस्वरूपं वा)

भावयन्तः जपन्ति, ते साधकाः लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपाः भवन्ति ।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान—

हे स्मितमुखि, हे आनन्दमयो। भक्तों के ऊपर कृपापूर्ण दृष्टि के कारण जिसके मुखकमल पर जरा सी स्मितरेखा झलक रही है। अथवा परमानन्दस्वरूपिणी होने से स्मितमुखी होना स्वाभाविक है। हे माता। इस पद की विवेचना प्रथम एवं चतुर्थ श्लोक की व्याख्या में विस्तार से की गई है। हे स्मरहरमहिले, हे कामनाशक भगवान् भूतनाथ की पट्टमहिषी। इस पद से यह भासित होता है कि यद्यपि भगवान् शंकर ने काम का सर्वथा नाश कर कामारि की उपाधि पाई है, पर आपने अपने अपूर्व तप एवं सौन्दर्य के बल पर उनके हृदयासन पर पूर्ण अधिकार जमा लिया है। इस पद से एक दूसरे भाव को भी अभिव्यञ्जना होती है। स्मरहर की महिला होने के कारण आप अपने भक्तों के काम क्रोध आदि रिपुओं की भी नाशिनी हैं।

(२) मन्त्रोद्धार—

इस प्रकार भगवती श्री कालिका को संबोधित कर मन्त्र के उद्धार की विधि निरूपित करते हैं। पूर्वोक्त पद्य-चतुष्टय में १३ अक्षरों का—'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके' का--उद्धार निरूपित किया जा चुका है, अब द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी मन्त्र के अवशिष्ट अक्षरों का उद्धार बतलाया जाता है।

यदि अनुस्वार सहित दीर्घ ईकार (विधुरतिललितम्) रकार (वह्निसंस्थम् और वर्गादिभूत ककार के साथ संयुक्त हो जाता है, तो उससे 'क्रीं' इस बीज की निष्पत्ति होती है। ऐसी तीन क्रीं अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं, दो हूं (कूर्चयुग्मम्) अर्थात् हूं हूं तथा दो ह्रीं (लज्जाद्वन्द्वम्) अर्थात् ह्रीं ह्रीं के अनन्तर यदि स्वाहा (ठद्वयम्) का प्रयोग

कर दिया जाय, तो भगवती श्री कालिका के द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी नामक महामन्त्र का उद्धार होता है, अर्थात्—

'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' इस महामन्त्र का उद्धार होता है। तन्त्र शास्त्र का कथन है कि माया अथवा लज्जा ह्रीं का बोधक है और कूर्च हूं का।

माया लज्जा च ह्रींकारः हूंकारः कूर्च उच्यते।

तन्त्र।

(३) फलस्तुति—

यामल तन्त्र के मत से क्रीं त्रितय क्रीं क्रीं क्रीं से ज्ञान चित् कला का कलन होता है, कूर्चद्वय (हूं हूं) से शब्दसमूह का परिज्ञान होता है, लज्जाद्वन्द्व (ह्रीं ह्रीं) से सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय की विधात्री का बोध होता है, संबोधन पद से श्री भगवती के सान्निध्य का आभास होता है, और स्वाहा इस पद से जगन्माता द्वारा समस्त पातकों का नाश होता है।

बीजत्रया शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी।
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी।
स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रणाशिनी।

यामल तन्त्र।

इस प्रकार निष्पन्न इस महामन्त्र का जप, आपके पूर्व निर्दिष्ट एवं वक्ष्यमाण स्वरूप की भावना करते हुए, अथवा आपके इस द्वाविंशत्यक्षरघटित रूप का ध्यान करते हुए, अथवा मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुए, जो साधक करते हैं, (चाहे वे अधमाधम पातकी ही क्यों न हों); वे कमला के करकमलगत क्रीडारूप कनक-कमल के समान कमनीय कटाक्षमयी कामनियों के लिये कामस्वरूप

हो जाते हैं, अर्थात् कमलनयनी कामनियाँ उन पर आसक्त हो जाती हैं। इस अन्तिम चरण की व्याख्या एक विभिन्न पद्धति से भी की गई है। भगवती श्री लक्ष्मी के नृत्यादि विहार के आधारभूत कमलाक्ष श्री विष्णु भगवान् के समान हो कर (लक्ष्मीलास्यलीलाकरः यः कमलाक्षः विष्णुः तद्रूपिणः) इच्छानुसार शरीर ग्रहण में समर्थ हो जाते हैं। इन विभिन्न अर्थों का तात्पर्य केवल इतना ही प्रतीत होता है कि उनके नेत्रों में लक्ष्मी की मादकता छा जाती है, तथा उनमें सुन्दरता की समभिवृद्धि हो जाती है।

इस महामन्त्र का एक आध्यात्मिक अर्थ—

जो साधक तेजोमय (वह्निसंस्थम्) एवं शैत्य सौन्दर्य से समन्वित आपके त्रिविध सत्व रज एवं तमोगुण से विशिष्ट (तत् त्रयम्) चिन्मय (वर्णाद्यम्) रूप का ध्यान करते हैं, तथा उसे शब्दब्रह्मरूप (कूर्चयुग्मम्), माया शम्बलित ब्रह्मरूप (लज्जाद्वन्द्वम्) तथा प्रकाश ब्रह्मरूप (ठ द्वयम्) मान कर अपने से उसकी अभिन्न भावना करते हैं, वे कमलाक्ष के सदृश हो कर कामरूप हो जाते हैं।

क्रम स्तोत्र से इसकी समता दर्शनीय हैं जहाँ पर कहा गया है कि जो मनुष्य बीजत्रय की अर्थात् 'क्रीं क्रीं क्रीं' की पुनः उपासना करता है, वह देवराज हो जाता है, इसी प्रकार जो कूर्चयुग्म की अर्थात् हूं हूं की पुनः आराधना करता है, वह नरसिंह रूप होकर सिद्ध हो जाता है, इसी प्रकार जो लज्जाद्वय का अर्थात् ह्रीं ह्रीं का पुनः जप करता है वह सिद्धि-संपन्न हो जाता है। इस मन्त्र के अन्त में स्वाहा इस पद का प्रयोग करने से मन्त्रोद्धार होता है।

बीज त्रयं वै पुनरप्युपास्य सुराधिपत्यं लभते मनुष्यः।
पुनस्तथा कूर्चयुग्मं जपन्ति भवन्ति सिद्धा नरसिंहरूपाः।
ततोऽपि लज्जाद्वयजापकत्वात् लभन्ति सिद्धिं मनसा जनास्ते।
अन्ते पदं क्षिप्य विभा विभावसोः तन्मन्त्रमुद्धारमिदं वदन्ति।

विश्वसार तन्त्र।

भैरव तन्त्र में लिखा है कि जो पुरुष स्पर्धाविहीन हो, विद्याराज्ञी का जप करता है, उसके भवन में लक्ष्मी देवी और उसके मुख में सरस्वती नैसर्गिक बैर भाव का परित्याग कर ३ पीढ़ियों तक स्थिरता पूर्वक निवास करती हैं। यह बात पत्थर की लकीर है।

स्पर्धामुद्धूय कमला वाग्देवी मन्दिरे मुखे।
पौत्रान्तं स्थैर्यमास्थाय निवसत्येव निश्चितम्।

भैरव तन्त्र।

इस व्याख्यालेखक के पूर्वज, दीक्षितवंश के आदि पुरुष, षोडश-शताब्दी के अन्त में विद्यमान श्री श्रीकान्त महाराज को भी यज्ञदेव ने ऐसा ही वरदान दिया है। आपके कुल में साधुपदा सरस्वती समासक्ति के साथ सदा निवास करें। लक्ष्मी भी सरस्वती के साथ बैर का परित्याग कर आपके घर से कभी विमुख न हों।

भवत्कुले तिष्ठतु सर्वदा सती सरस्वती साधुपदा दृढ़व्रता।
विहाय वैरं गिरया च शाश्वतं न जातु पद्मा विजहातु ते कुलम्।

कुछ लोगों के मत से भगवती श्री कालिका की द्वाविंशत्य-क्षरात्मिका विद्याराज्ञी की समाराधना भौतिक सिद्धि के ही लिये की जानी चाहिये। कर्पूरादि स्तोत्र में इसी का ही उल्लेख किया गया है, परन्तु ऐसी बात नहीं है।

(क) १, २, ६, ७, १०, १६, १७ तथा २१ में कवित्व की
(ख) २, ५, ६, १५, १६ तथा २२ में धनित्व की
(ग) २, ५ तथा २२ में सुरूपत्व की
(घ) १, ३, ८, १०, ११, १७, १९ तथा २२ में लौकिक

तथा

(ङ) १, ४, १०, ११, १४, १७, १८, १९, २० तथा २२ में पारलौकिक सिद्धियों की चर्चा चलाई गई है, अतः भगवती श्री कालिका की समाराधना से भौतिक एवं आध्यात्मिक सिद्धियाँ उपलब्ध होती

हैं। श्री विद्याराज्ञी की उपासना से मोक्ष एवं पारलौकिक सिद्धियाँ नहीं मिलतीं--ऐसा मानना घोर नास्तिकता है। विधिपूर्वक विनियोग के अनुसार कार्यसिद्धि होगी--ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिये।

जप एवं ध्यान की महिमा अपार है। इसमें अर्थवाद की शङ्का घोर नास्तिकता की द्योतिका है। यह वह विषय नहीं है जो तर्क से प्रतिष्ठित न किया जा सके, परन्तु विस्तार भय से उसका उल्लेख न कर योग मार्ग के पथप्रदर्शक महर्षि भगवान् पतञ्जलि के योग सूत्र का निर्देश पर्याप्त समझते हैं जिसके विभूति पाद में इन सिद्धियों का स्पष्ट संकीर्तन किया है। पुराण आदि धर्म ग्रन्थों के अनुसार साधारण साधक को भी अधोलिखित सिद्धियां अनायास ही मिल जाती है।

भोजनाधिक्य में सामर्थ्य, दीर्घ श्वास ग्रहण, अतन्द्रिता, शीघ्र-गामिता, उत्साह, स्वरमधुरता, सम्पूर्ण रोगों का नाश, बल, तेज, सुरूपता, धैर्य, बुद्धि, युवत्व, स्थिरता, प्रसन्नता इत्यादि।

बहुभोजनसामर्थ्यं, चिरादुच्छ्वसनं तथा।
लघुत्वं, शीघ्रगामित्वम्, उत्साहः, स्वरसौष्ठवम्।
सर्वरोगक्षयश्चैव, वलं, तेजः सुरूपता।
धृतिः मेधा, युवत्वं च, स्थिरता च, प्रसन्नता।
धर्मशास्त्र।

तन्त्र का मत है कि जो पुरुष श्रद्धा से परिपूर्ण हो कर अथवा श्रद्धा से रहित हो कर भगवती श्री कालिका का स्मरण करता है, वह दुर्गति रूपी दुर्ग पर विजय पा कर परम पद की, निर्वाण की प्राप्ति करता है।

श्रद्धयाऽश्रद्धया वापि, यः कश्चित् मानवः स्मरेत्।
दुर्गं च दुर्गतिं जित्वा स याति परमां गतिम्।
कालीकुल सर्वस्व।

मननशील मनीषियों के मत से भगवती श्री कालिका महामहा ब्रह्म विद्या की शिक्षिका है, जिसकी समुपलब्धि से महाअधम पुरुष को भी निर्वाण मुक्ति की समवाप्ति हो जाती है।

महामहाब्रह्मविद्याविद्येयं कालिका मता।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः।
तन्त्र।

ध्यानकालिक भावना—

भगवती कालिका का ध्यान करते समय साधक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि मैं ही काली हूँ। तभी वह वास्तविक साधना का अधिकारी होगा।

सर्वदा कालीरूपम् आत्मानं विभावयेत्।
कालिकोपनिषद्।

जो पुरुष अपने को कालिका मान कर तथा गुरु महाराज को साक्षात् शिव समझ कर भगवती श्री कालिका का ध्यान करता है, वह साक्षात् श्री सदाशिव ही हो जाता है।

आत्मानं कालिकात्मानं भावयन् स्तौति यः शिवाम्।
शिवोपमं गुरुं ध्यात्वा स एव श्रीसदाशिवः।

जो पुरुष 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार की भावना करता हुआ आत्मचिन्तन करता है, उसे भगवती श्री कालिका से उन फलों की उपलब्धि होती है, जिनको गणना नहीं की जा सकती। इसलिये साधक को चाहिये कि वह सदा अपने शरीर को आराधनीय भगवती का रूप समझे, तथा संपूर्ण ब्रह्माण्ड को भगवती ही का रूप समझे।

क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्याद् आत्मचिन्तनम्।
तस्मै दद्यात् फलं देवी तस्यान्तं नैव गण्यते।
आत्मदेहं स्वेष्टरूपं सदैव परिचिन्तयेत्।
ब्रह्माण्डं च तथा सर्वं स्वेष्टरूपं विचिन्तयेत्।
योगिनी तन्त्र।

वस्तुतः भगवती श्री कालिका के स्वरूप की भावना तीन पद्धतियों से होती है (१) अवयवात्मक प्रतिमा से, (२) मन्त्रात्मक मूर्ति से

तथा (३) वासनात्मक मानसिक विग्रह से। इसीलिये भगवती के त्रिविध रूप की कल्पना की गई है, स्थूल, सूक्ष्म और पर। करचरणावयव विशिष्ट स्थूल रूप का दर्शन चक्षुरिन्द्रिय से होता है। मन्त्रात्मक सूक्ष्म रूप का बोध श्रवण तथा वाक् इन्द्रियों से होता है और वासनात्मक पर रूप का परिज्ञान मन से होता है।

यहाँ पर मन्त्रात्मक सूक्ष्म रूप के विषय में यह कथन अस्थानीय न होगा कि मन्त्रार्थ का परिचिन्तन देवता के स्वरूप का परिचिन्तन है। देवता का शरीर मन्त्रात्मक है, अतः देवता मन्त्र से वाच्य है। मन्त्र वाचक है और देवता मन्त्र से वाच्य। अतः वाच्य और वाचक में अभेद होने के कारण मन्त्र और देवता में भी अभेद माना जाता है। संक्षेप में यह कहना उपयुक्त होगा कि मन्त्ररूप वाचक के परिज्ञान हो जाने पर वाच्य रूप भगवती प्रसन्न हो जाती हैं।

मन्त्रार्थं देवतारूपचिन्तनं परमेश्वरि।
मन्त्रात्मकस्य देहस्य मन्त्रवाच्येन देवता।
वाच्यवाचकभेदेन अभेदो मन्त्रदेवयोः।
मन्त्रवाच्या देवता च मन्त्रा हि वाचकः स्मृतः।
वाचकेऽपि च विज्ञाते वाच्य एव प्रसीदति।

शाक्तानन्द तरङ्गिणी।

इस स्थल पर इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि द्वाविंशत्यक्षरी के किस-किस अक्षर से भगवती के किस-किस अवयव का बोध होता है। इस प्रश्न का उत्तर उत्तरा तन्त्र में मिल जाता है। इसकी तालिका यह है—

क्रीं से मस्तक, क्रीं से ललाट, क्रीं से नेत्रत्रितय, हूं से नासिका, हूं से नेत्रयुगल, ह्रीं से कर्णद्वय, ह्रीं से ग्रीवा, द से चिबुक, क्षि से दन्तावली, णे से ओष्ठद्वय, का से स्तनद्वन्द्व, लि से पृष्ठ, के से बाहु, क्रीं से उदर, क्रीं से नाभि, क्रीं से नितम्ब,

हूं से योनि, हूं से जङ्घाद्वितय, ह्रीं से जानुयुग्म, ह्रीं से गुल्फ, स्वा से पदपद्म और हा से नख।

क्रींकारो मस्तकं देवि, क्रींकारश्च ललाटकम्।
नेत्रत्रयं च क्रींकारो हूंकारेण च नासिका।
हूंकारो मुखपद्मं स्यात् ह्रींकारः कर्णयुग्मकम्।
ह्रींकारेण भवेद् ग्रीवा दकारश्चिबुकं भवेत्।
क्षिकारेण भवेद् दन्तो णेकारेणौष्ठयुग्मकम्।
काकारेण स्तनद्वन्द्वं लिकारः पृष्ठदेशकः।
केकारेण भवेद् बाहुः क्रींकारेणोदरं भवेद्।
क्रींकारो नाभिदेशः स्यात् क्रींकारश्च नितम्बकः।
हूंकारो योनिरूपः स्यात् हूंकारेणोरुयुग्मकम्।
ह्रींकारो जानुयुग्मं स्यात् ह्रींकारो गुल्फदेशकः।
स्वाशब्देन पदद्वन्द्वं हाशब्दैर्नखरं तथा।
शाक्तानन्द तरङ्गिणी।

तन्त्रान्तरों में विद्याराज्ञी—

इस पूर्वोक्त द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी का उल्लेख अनेक तन्त्रों में किया गया है। कालिका श्रुति में लिखा है कि सहस्रार चक्र में इस ब्रह्मरूपिणी मन्त्रमयी दक्षिणकालिका की समवाप्ति होती है। ककार रकार ईकार और विन्दु (कामरेफेन्दिराविन्दु) की समष्टि स्वरूप क्रीं को त्रिगुणित कर उसके अनन्तर कूर्चद्वन्द्व का प्रयोग करे। कूर्च हूं, हकार (व्योम) ऊकार (षष्ठ स्वर) तथा विन्दु के मिलन से निष्पन्न होता है। इसको द्विगुणित कर भुवनाबीज द्वय का प्रयोग करे। भुवना का अर्थ है हकार (व्योम), रकार (ज्वलन), ईकार (इन्दिरा), एवं अनुस्वार (शून्य) के संयोग से निष्पन्न ह्रीं। इस ह्रीं को दो वार प्रयोग कर दक्षिणे कालिके का प्रयोग करे। तदनन्तर पूर्वोक्त बीज सप्तक को क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं को कह कर स्वाहा

(वृहद्भानुजाया) का प्रयोग करे। यह मन्त्र सम्पूर्ण मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ है।

अथहैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरूपिणीमाप्नोति सुभगाम् कामरेफेन्दिरा-विन्दुसमष्टिरूपिणीम्। एतत् त्रिगुणितम् आदौ। तदनु कूर्चद्वयम्। कूर्चबीजं तद् व्योमषष्ठस्वरविन्दुमेलनरूपम्। तदेव द्विरुचार्य। तदनु भुवनाद्वयम्। भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिराशून्यमेलनरूपा। तद्द्वयम् उच्चार्य। दक्षिणे कालिके चेत्यभिमुखं गता। तदनु बीज-सप्तकम् उच्चार्य वृहद्भानुजायाम् उच्चरेत्। अयं सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमः।

कालिका श्रुति।

काली तन्त्र में भी पूर्वोक्त पद्धति से द्वाविंशत्यक्षरी का उद्धार कर उसे विद्याराज्ञी इस नाम से प्रतिष्ठित किया है।

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिविन्दुविभूषितम्।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुग्मं च तदन्तरम्।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद् विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता।

काली तन्त्र।

निरुत्तर तन्त्र में भी उपर्य्युक्त पद्धति से द्वाविंशत्यक्षरी का उल्लेख कर इसे दक्षिणा कालिका मन्त्र से अभिहित किया है। उसका कथन है कि इसके परिज्ञान से ही मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। यह सर्व मन्त्रात्मिका विद्या है, इसके प्रभाव से सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय हुआ करते हैं।

अथ वक्ष्ये महेशानि दक्षिणाकालिकामनुम्।
येन विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तः प्रजायते।
ब्रह्मानलयुतं देवि नादविन्दुसमन्वितम्।
वामनेत्रेण संयुक्तं चित्स्वरूपं परात् परम्।

एकाक्षरी सिद्धविद्या मन्त्रराज्ञी कुलेश्वरि ।
त्रिगुणा च कूर्चयुग्मं लज्जायुग्मं ततः परम् ।
दक्षिणे कालिके चेति सप्त बीजानि योजयेत् ।
अन्ते वह्निवधूं दद्याद् विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ।
सर्वमन्त्रमयी विद्या सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
निरुत्तर तन्त्र ।

वीर तन्त्र में भी इसी पद्धति से मन्त्रोद्धार कर यह प्रतिपादित किया गया है कि जो कोई सकल मनोरथों के पूरक तथा सम्पत्ति के दायक इस मन्त्र का चिन्तन करता है, उसके वश में सम्पूर्ण सिद्धियाँ हो जाती हैं, इसमें सन्देह का स्थान नहीं है ।

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिविन्दुसमन्वितम् ।
त्रिगुणं च, ततः कूर्चयुग्मं लज्जाद्वयं ततः ।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्ववच्च ततः पुनः ।
ठद्वयेन समायुक्तं मन्त्रमेतं विदुर्बुधाः ।
य एनं चिन्तयेन्मन्त्रं सर्वकामसमृद्धिदम् ।
तस्य हस्ते सदैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः ।
वीर तन्त्र ।

विश्वसार तन्त्र में भी इसी पद्धति से मन्त्रोद्धार किया गया है । इसका विवेचन हम श्लोकपञ्चक की व्याख्या में पूर्णतया कर आये हैं ।

शाक्तप्रमोद के संकलनकर्ता महापण्डितों ने दक्षिण कालिका का मन्त्रोद्धार एक विभिन्न पद्धति से प्रदर्शित किया है । उनका मत है कि काली बीज के अनन्तर लज्जा बीज, और तदन्तर कूर्चद्वन्द्व होना चाहिये, इसके अनन्तर दक्षिणे कालिके कह कर तथा पूर्व निर्दिष्ट बीज सप्तक की पुनरावृत्ति कर स्वाहा का प्रयोग करना चाहिये । अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा ।

इनके मत से मन्त्र का यह स्वरूप होना चाहिये। इसकी सिद्धि के लिए आपने किसी तन्त्र से ये श्लोक उद्धृत किये हैं।

काली बीजत्रयं प्रोक्त्वा लज्जाबीजद्वयं ततः।
हूंकारौ द्वौ ततः पश्चाद् दक्षिणे कालिके ततः।
कालीबीजत्रयं तस्मात् लज्जाबीजद्वयं पठेत्।
द्वौ च स्वाहान्तहूंकारौ कालीमन्त्र उदाहृतः।

परन्तु इनका यह कालीमन्त्र काली के उपासकों को कितना ग्राह्य होगा यह एक विवेचनीय विषय है। कर्पूरस्तवराज, कालिकोपनिषद् काली तन्त्र, निरुत्तर तन्त्र, वीर तन्त्र, विश्वसार तन्त्र आदि तन्त्रों से विपरीत होने के कारण इसकी मान्यता सन्देहावरण से आच्छन्न है। तान्त्रिक विद्वानों ने श्री काली के अनन्तर श्री तारा और तदनन्तर श्रीत्रिपुरसुन्दरी का ही उल्लेख किया है। अत एव इन तीनों के बीजाक्षर भी इसी क्रम से होने चाहिये। क्रीं इस काली बीज के अनन्तर हूं इस तारा बीज की स्थिति और तदनन्तर ह्रीं इस त्रिपुरसुन्दरी बीज की सत्ता तर्कप्रतिष्ठित है। इसका यह आशय नहीं है कि इस शाक्त-प्रमोद के द्वारा निर्दिष्ट मन्त्र का मैं अपलाप कर रहा हूँ, परन्तु इस मन्त्र की सत्ता मान लेने पर भी इसे विद्याराज्ञी से भिन्न मानने के लिये हमें विवश होना पड़ता है। इसी प्रकार—

'समाः स्वस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा'

इस पद्य में निर्दिष्ट 'विपरीताम्' का अर्थ बीजों का वैपरीत्य है।

'ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' इस विंशतिवर्णात्मक मन्त्र की निष्पत्ति होती है, इसे यदि ॐ (तारः प्रणवः आद्यो यस्य सः ताराद्यः) से संयुक्त कर दिया जाय, तो यह एकविंशत्यक्षरात्मक कालिका मन्त्र बन जाता है, और यदि इसके अन्त में स्वाहा जोड़ दिया जाय, तो इस त्रयोविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र की संज्ञा मन्त्रराज हो जाती है।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णिकाम् ।
ह्रीं ह्रीं हूं युगलं त्रिः क्रीं दक्षिणे कालिके वदेत् ।
त्रिः क्रीं हूं हूं शक्तियुग्मं वर्णन्यासादि पूर्ववत् ।
एकविंशत्यक्षरोयं ताराद्यः कालिकामनुः ।
स्वाहान्तश्च त्रयोविंशत्यक्षरं मन्त्रराजकम् ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ।
विश्वसार तन्त्र ।

इसी एकविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र की संज्ञा विद्यारत्न दी गई है ।

विद्यारत्नं प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा कर्णावतंसवत् ।
मायाद्वयं कूर्चयुग्मम् ऐन्द्रान्तं मादनत्रयम् ।
मायाविन्द्वीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ।
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत् ।
एकविंशत्यक्षराढ्यः ताराद्यः कालिकामनुः ।
काली तन्त्र ।

इन पूर्वोक्त पद्यों में 'ऐन्द्रान्तं मादनत्रयं, मायाविन्द्वीश्वरयुतम्' की व्याख्या अपेक्षित है । लकार के समीपस्थ रकार से (ऐन्द्रान्तम् इन्द्रस्य लकारस्य समीपम् ऐन्द्रम् रेफः सः अन्ते यस्य तादृक्), तथा ईकार और विन्दु से (मायाविन्द्वीश्वरयुतम्) ककार की त्रिरावृत्ति (मादनत्रयम्), अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं ।

मन्त्रत्रैविध्य--

जिन मन्त्रों के अन्त में हूं, फट् हो, वे पुंदेवता मन्त्र कहे जाते हैं, जिन मन्त्रों के अन्त में स्वाहा हो, वे स्त्री देवता विद्या कही जाती हैं और जिन मन्त्रों के अन्त में नमः हो, वे नपुंसक मन्त्र कहे जाते हैं । इस प्रकार मन्त्र की त्रिविधता सर्वमान्य है, और मन्त्र इस पद से त्रिविध मन्त्रों का बोध होता है ।

मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्याः स्त्रीदेवताः स्मृताः।
पुंस्त्रीनपुंसकात्मानो मन्त्राः सर्वे समीरिताः।
पुंमन्त्रा हुं फडन्ताः स्युः द्विठान्ताश्च स्त्रियो मताः।
नपुंसका नमोन्ताः स्युः इत्युक्ता मनवस्त्रिधा।
शारदा तिलक।

(१) विनियोग—

अस्य श्री विद्याराज्ञीमन्त्रस्य महाकाल ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता, ह्रीं बीजम्, हूं शक्तिः, क्रीं कीलकम् पुरुषार्थ-चतुष्टयसिद्धये, तत्तत्कामनासिद्धये वा, भगवती श्री दक्षिणकालिका-प्रीत्यर्थं वा पेज विनियोगः। कृताञ्जलिः पठेत्। ततः अङ्गुष्ठेन शिरसि— ॐ महाकालाय नमः। मध्यमानामिकाभ्यां मुखे—ॐ उष्णिक् छन्दसे नमः। अङ्गुष्ठरहिताङ्गुलिभिः हृदये—श्रीमद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः। संलग्नाङ्गुष्ठानामिकारूपतत्वमुद्रया गुह्ये—ॐ ह्रीं बीजाय नमः। मध्यमाङ्गुल्या पदद्वये—ॐ हूं शक्तये नमः। हस्तद्वयतलयोः सर्वाङ्गे - ॐ क्रीं कीलकाय नमः।

(२) करन्यास—

ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

(३) अङ्गन्यास

ॐ क्रां हृदयाय नमः इति तर्जनीमध्यमानामिकाभिः हृदये न्यसेत्।
'ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा' इति तर्जनीमध्यमाभ्यां शिरसि न्यसेत्।
'ॐ क्रूं शिखायै वषट्' इति मुष्टिबद्धहस्ताङ्गुष्ठेन शिखायां न्यसेत्।
'ॐ क्रैं कवचाय हुं' इति हस्तद्वयसर्वाङ्गुलीभिः सर्वाङ्गे न्यसेत्।
'ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' इति तर्जनीमध्यमानामिकाभिः नेत्रत्रये न्यसेत्।
'ॐ क्रः अस्त्राय फट्' इति दक्षहस्ततर्जनीमध्यमाभ्यां वामहस्ततले तालत्रयं दद्यात्।

(४) वर्णन्यास—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ नमः	हृदये
ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ नमः	दक्षभुजे
ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमः	वामभुजे
ण त थ द ध न प फ ब भ नमः	दक्षिणजङ्घायाम्
म य र ल व श ष स ह क्ष नमः	वामजङ्घायाम् ।

---

[६]

प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति ।
तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला, वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे
वाग्देवी, देवि मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठि पीनस्तनाढ्ये ।

अन्वय

हे देवि, हे मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठि, हे पीनस्तनाढ्ये, ये साधकाः प्रत्येकं वा, द्वयं वा त्रयं चापि अत्यन्तगुह्यं परं बीजं त्वन्नाम्ना योजयित्वा सकलम् अपि भावयन्तः सदा जपन्ति, तेषां नेत्रारविन्दे कमला विहरति, वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे वाग्देवी च विहरति ।

व्याख्या

(१) स्वरूपाख्यान—

हे देवि, अर्थात् हे प्रकाशस्वरूपे । इससे यह प्रतीत होता है कि शरणागत साधक को अपने अज्ञानान्धकार के निराकरण के लिये

विशेष प्रयास न करना पड़ेगा। हे मुण्डमालस्रगतिशयलसत्कण्ठि अर्थात् हे मुण्डमालिनी, पञ्चाशद्वर्णाभिव्यञ्जित शब्द ब्रह्ममयी। सद्यः छिन्नता के कारण परिस्रवद्रुधिरपरिपूर्ण ५० नरमुण्डों की आपादपद्मलम्बिनी माला से आप सुशोभित हैं। यह माला साधारण गुण से ग्रथित न हो कर अन्योन्य केशकलापमय गुण से ग्रथित है।

सद्यश्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डै रक्तभूषितैः।
अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मप्रलम्बितैः।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभितां परमेश्वरीम्।
तन्त्र चूडामणि।

पञ्चाशन्मुण्डघटितमालाशोणितलोलिताम्।
विरूपाक्ष ध्यान।

चञ्चत्पञ्चाशदुग्रग्रथितनरशिरोमालिकाकान्तकण्ठे।
तारा स्तोत्र।

पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।
निरुत्तर तन्त्र।

वस्तुतः ये नरमुण्ड ५० अक्षरों के प्रतीक हैं जो कि महाप्रलय में बीज रूप से भगवती के कण्ठ का समाश्रयण करते हैं। ये शब्द ब्रह्म विभूषित सर्वमन्त्रात्मक परमानन्द ब्रह्म का परिज्ञान कराते हैं। ये अकार से लगाकर क्षकार पर्यन्त ५० अक्षरमातृका अव्यय (अपरिवर्तन शील) तथा अपरिच्छिन्न होने पर भी भगवती के कण्ठ का समाश्रयण करती हैं। इनके वर्ण श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण हैं।

मम कण्ठे स्थितं बीजं पञ्चाशत्वर्णमद्भुतम्।
कामधेनु तन्त्र।

परानन्दमयं ब्रह्म शब्दब्रह्मविभूषितम्।
आत्मनो देहमध्ये तु सर्वमन्त्रात्मकं प्रिये।
निरुत्तर तन्त्र।

अकारादिक्षकारान्ता पञ्चाशन्मातृका ऽक्षरा।
अव्यया अपरिच्छिन्ना त्रिपुराकण्ठसंस्थिता।
शुक्लाभा रक्तवर्णाभा पीताभा कृष्णरूपिणी।
राधा तन्त्र।

पञ्चाशद्वर्णैं रचिताङ्गभागां धृतेन्दुखण्डां कुमुदावदाताम्।
वराऽभये पुस्तकमक्षसूत्रं भजे गिरं संदधतीं त्रिनेत्राम्।
सरस्वती ध्यान।

मद्विरचित 'गरलपान' नामक महाकाव्य में भगवान् नीलकण्ठ के कृष्णकण्ठत्व की कल्पना दर्शनीय है। महाप्रलय के समय श्याम वर्णात्मिका श्रुतिमालिका को जब कहीं स्थान न मिला, तो उसने भगवान् शंकर के कण्ठ का समाश्रयण कर लिया, क्योंकि कण्ठ के अतिरिक्त श्रुति-निवास के लिए कहीं स्थान भी नहीं मिल सकता। वर्णों की श्यामता के कारण नीलकण्ठ का कण्ठ नील हो गया है।

जगल्लये स्थानमपेक्षमाणा वर्णैः स्वकैर्मेचकतां दधानाः।
विहाय शम्भो तव कम्बुकण्ठं विभान्ति कुत्रावलयः श्रुतीनाम्।
गरलपान।

तन्त्र शास्त्र में ५० अक्षर माने गये हैं। १६ स्वर, २५ स्पर्श, ४ अन्तस्थ, ४ ऊष्म और १ क्ष। यद्यपि प्राचीनों के मत से १ जिह्वा-मूलीय, १ उपध्मानीय तथा १ गजकुम्भाकृति की सत्ता से अक्षरों की सत्ता ५३ हो जाती है।

स्वराः षोडश विज्ञेयाः स्पर्शास्तु पञ्चविंशतिः।
अन्तस्थाश्चतुःसंख्याका उष्माणश्चैव तन्मिताः।
जिह्वामूलीयकश्चैक ऊपध्मानीयकस्तथा।
गजकुम्भाकृतिश्चैक इत्येवं वर्णसंहतिः।
एवं वर्णा द्विपंचाशन्मातृकायामुदाहृताः।
क्षकारं त्वागमाचार्या बीजार्थमधिकं विदुः।

तथापि यदि जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और गजकुम्भाकृति का परित्याग कर दें, तो केवल ५० अक्षर अवशिष्ट रह जाते हैं, जिनका यहाँ ग्रहण किया गया है।

वर्णन्यास विधान में भी (पृष्ठ ४८) ५० ही अक्षरों का उल्लेख किया गया है।

हे पीनस्तनाढ्ये, दुग्ध की अधिकता के कारण अत्यन्त पीन स्तनों से सुशोभित अर्थात् मातृदुग्धामृत प्रदान से संपूर्ण संसार का पालन करने वाली, एवं ज्ञानामृत प्रदान से साधकों को मोक्ष देने वाली।

(२) मन्त्रोद्धार तथा फलस्तुति —

इस प्रकार माता को सम्बोधित कर विविध मन्त्रोद्धार का उल्लेख करते हैं।

जो साधक आपके नाम से अर्थात् दक्षिणे कालिके इस पद से संयुक्त तथा अत्यन्त गोपनीय पूर्वोक्त बीजत्रितय में-से किसी एक बीज से, किन्हीं दो बीजों से अथवा तीनों बीजों से निष्पन्न मन्त्र का, अथवा श्लोकपञ्चक द्वारा प्रतिपादित द्वाविंशत्यक्षरात्मिका विद्याराज्ञी नामक मन्त्र का सर्वदा जप करते हैं, उनके नयनकमलों में लक्ष्मी विहार करती है और मुखारविन्द में सरस्वती निवास करती है अर्थात् वे धनसंपन्न एवं विविध विद्या विभूषित हो जाते हैं। नेत्रा-रविन्दे कमला विहरति' इस वाक्य से इस अर्थ की भी अभिव्यञ्जना होती है कि वे न केवल स्वयं ही दिव्य दृष्टि संपन्न हो कर निधान-दर्शी होते हैं, पर उनकी कृपा दृष्टि जिन अकिञ्चनों पर पड़ जाती है, वे भी धनैश्वर्य संपन्न हो जाते हैं।

जप के समय निर्दिष्ट बीज मन्त्रों से आपके स्वरूप की अभेद भावना माननी चाहिये, बीज मन्त्रों से प्रतिपादित आपके स्वरूप का ध्यान करना चाहिये, सगुण (सकल) शब्द ब्रह्म के रूप का विवेचन

करना चाहिये, तथा कारण सूक्ष्म और स्थूल देह का, प्राज्ञ तैजस और विश्व नामक व्यष्टि रूप का, तथा ईश सूत्र और विराट् नामक समष्टि रूप का श्रवण मनन और निदिध्यासन से चिन्तन करना चाहिये।

प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात् सूक्ष्मदेही तु तैजसः।
स्थूलदेही तु विश्वाख्यः त्रिविधः परिकीर्तितः।
एवमीशोऽपि संप्रोक्तः ईशसूत्रविराट्पदैः।
प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः ।
देवी गीता।

तन्त्रान्तरों में विविध मन्त्र—

अब सर्वविद्या मन्त्र के भेदों का निरूपण करते हैं। क्रीं हूं ह्रीं-- इस बीज त्रितय में से किसी एक बीज को, किन्हीं दो बीजों को अथवा तीनों बीजों को मूलतः अथवा आपके नाम से संपुटित कर जो मनुष्य जपता है, वह सांसारिक सुखों की समुपलब्धि कर मोक्ष पथ का पथिक होता है दूसरा नहीं।

अथाहुः सर्वविद्यामन्त्रे भेदांस्तु। प्रथममेकं, द्वयं वा त्रयं वा नाम-संपुटितं वा कृत्वा यो जपति, तस्यास्ति गतिः नान्यस्य गतिरस्तीति।

कालिका श्रुति।

कुमारी तन्त्र में भी उपर्य्युक्त विषय का प्रतिपादन किया गया है।

कामाक्षरं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुविभूषितम्।
मन्त्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापकर्मणाम्।
भोगमोक्षैकनिलयं कालिकाबीजमुत्तमम्।
एकं द्वयं त्रयं वापि निजबीजवदुत्तमम्।
दक्षिणे कालिके नाम पुटितं वा यथोदितम्।
निजबीजं तथा कूर्चं लज्जाबीजमिति त्रयम्।

एकद्वित्र्यादिपूर्वं स्यात् संबोधनपदद्वयम् ।
पुटितं वा यथापूर्वं बीजैरेकादिकैरिति ।
नाम ठद्वयमित्याद्या भेदाः स्युर्दक्षिणागताः ।
कुमारी तन्त्र ।

विविध मन्त्र--

'प्रत्येकं वा द्वयं वा०' इस पद्य में जिन मन्त्रों का निर्देश किया गया है, उसमें से कतिपय मन्त्रों का उल्लेख करते हैं।

(१) क्रीं दक्षिणे कालिके ।
(२) हूं दक्षिणे कालिके ।
(३) ह्रीं दक्षिणे कालिके।
(४) क्रीं हूं दक्षिणे कालिके ।
(५) क्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके ।
(६) हूं क्रीं दक्षिणे कालिके ।
(७) ह्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके ।
(८) हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके ।
(९) ह्रीं हूं दक्षिणे कालिके ।
(१०) क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके ।
(११) क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

निजबीजं ततः कूर्चं लज्जाबीजं ततः परम् ।
दक्षिणे कालिके चेति तदन्ते वह्निसुन्दरी ।
एकादशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।
काली तन्त्र ।

(१२) क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

मूलबीजद्वयं ब्रूयात् ततः कूर्चद्वयं वदेत् ।
लज्जायुग्मं समुद्धृत्य संबोधनपदद्वयम् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।
काली तन्त्र ।

(१३) क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हूं ह्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

मूलत्रयं ततः कूर्चत्रयं मायात्रयं तथा ।
संबोधनपदद्वन्द्वम् अन्ते च वह्निसुन्दरी ।

एषा विद्या महादेवि कालीसान्निध्यकारिणी ।
काली तन्त्र ।

(१४) ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा ।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमभगान्वितम् ।
ठद्वयेन समायुक्ता सिद्धविद्या मयोदिता ।
काली तन्त्र ।

(१५) नमः आं आं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा कालि कालिके हूं ।
नमः पाशाङ्कुशे द्वेधा फट् स्वाहा कालि कालिके ।
दीर्घतनुच्छदः काली-मनुः पञ्चदशाक्षरः ।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये नापि विद्यते ।
[पाशः = आं । अंकुशः = क्रीं । दीर्घतनुच्छदः = हूं]
काली तन्त्र ।

———



★ श्री भगवती दक्षिण कालिका ★

ध्यान-निरूपण

गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्—
नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम्।
श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत—
प्रसक्तां त्वां ध्यायन् जननि जडचेता अपि कविः।

अन्वय

हे जननि गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं श्मशानस्थे शवहृदि तल्पे महाकालसुरतप्रसक्तां त्रिनयनां त्वां ध्यायन् जडचेता अपि कविः भवति।

व्याख्या

पूर्वोक्त ६ पद्यों में दक्षिणकालिका के मन्त्रोद्धार का निरूपण कर अब ध्यान के लिये उनके स्वरूप का कीर्तन करते हैं।

मातः, त्रिपुरहरवधु, ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे (१) महेशि, चन्द्रार्धचूड़े, घोरशावावतंसे (२), विगलितचिकुरे, दक्षिणे कालिके, सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने (३) त्रिजगदघहरे, अम्ब, प्रकटितरदने, वामे करकमलतले ऊर्ध्वं कृपाणम्, ततः अधः छिन्नमुण्डम्, सव्ये करकमलतले ऊर्ध्वम् अभीतिम्, ततः अधः वरं च (इति) तव विमलतनुम् (४), स्मितमुखि, मातः, स्मरहरमहिले (५) देवि, मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठि, पीनस्तनाढ्ये (६)।

यद्यपि पूर्वोक्त पद्यान्तर्गत इन संबुद्ध पदों से भगवती के स्वरूप का यत् किञ्चित् आभास मिल जाता है, तथापि बीजोद्धार के प्रसङ्ग में गौण रूप से प्रयुक्त इन स्वरूपबोधात्मक संबुद्ध पदों से भगवती का

ध्यान कदाचित् कोई भाग्यशाली ही कर सकता है। यह सम्भवित है कि बीजोद्धारपरक वचनों के बोध हो जाने पर स्तोत्रपाठक का ध्यान इन स्वरूपबोधक पदों की ओर जा सकता है, पर इसमें एक यह बड़ी विप्रतिपत्ति है कि भगवती के स्वरूपबोधक इन १८ संबुद्ध पदों का प्रयोग ६ पद्यों में हुआ है जिससे बीजोद्धार विवेचना में व्यस्त व्यक्ति का ध्यान पूर्व पद्य में प्रयुक्त स्वरूपबोधक पदार्थ की ओर जाता ही नहीं। यदि एक स्थल पर इन १८ पदों का प्रयोग होता, तो कुछ और बात थी। वस्तुतः ये उपर्युक्त पद वक्ष्यमाण ध्यान के पूरक हैं।

हे जगज्जननी, त्रिभुवन के पार्थिव, चर, अचर, स्थावर जंगम जीवों की उत्पादयित्री, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव एवं महाकाल के उत्पादन द्वारा त्रिलोकी की सृष्टिकर्त्री, भगवति कालिके, जो पुरुष, चाहे वह मन्दबुद्धि ही क्यों न हो, चाहे वह विषयरागोपहत ही क्यों न हो, परन्तु यदि आपके वक्ष्यमाण स्वरूप का ध्यान करता है, चिन्तन से उसका प्रत्यक्षीकरण करता है, तो वह कवि हो जाता है, क्रान्तिदर्शी हो जाता है, महाज्ञानी हो जाता है, एवं 'कविं पुराणम् अनुशासितारम्' 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' इन वैदिक मन्त्रों में कविनाम से व्यवहृत परब्रह्म के समान हो जाता है, परब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

दक्षिण कालिका के स्वरूप का वर्णन—

प्राणविहीन (मृत) जीवों के करों से विरचित काञ्ची (करधनी) से सुशोभित नितम्ब स्थल की सत्ता में भी आप दिगम्बरी हैं, वसन विहीना हैं, मायावरण से शून्य हैं, मायातीत हैं, माया से परे हैं, फिर भी कल्प के आरम्भ में जीवों के पूर्वसञ्चित कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म भोग मोक्ष आदि की देने वाली हैं। आप सूर्य चन्द्र एवं अग्नि स्वरूप अथवा भूत वर्तमान तथा भविष्यत् के परिचायक नेत्रत्रितय से अलङ्कृत हैं।

शशिसूर्याग्निभिर्नेत्रैरखिलं कालिका जगत् ।
संपश्यति यतस्तस्मात् कल्पितं नयनत्रयम् ।
महानिर्वाण तन्त्र ।

श्री शङ्कराचार्यजी के मत से दिननायक, संध्या एवं रजनीनायक ये तीन आपके नेत्र हैं क्योंकि सूर्य स्वरूप आपके दक्षिण नेत्र से दिन की उत्पत्ति होती है, चन्द्र स्वरूप आपके वाम नयन से रात्रि का निर्माण होता है, और ललाटवर्तिनी आपकी तृतीय दृष्टि से सन्ध्या का सृजन होता है। यह दिन रात के मध्य में संचरण किया करती है।

अहः सूते दक्षं तव नयनमर्कात्मकतया
त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकमयम् ।
तृतीया ते दृष्टिर्दरदलितहेमाम्बुजरुचिः
समाधत्ते सन्ध्यां दिवसनिशयोरन्तरचरीम् ।
सौन्दर्य लहरी ।

इस प्रकार आपके स्वरूप का निरूपण कर अब आपकी स्थिति का निदर्शन करते हैं—

'महाप्रलय के समय अनेकानेक ब्रह्माण्ड जल रहे हैं, जिन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है श्मशान भूमि में अनेकों चितायें दहक रही हैं। उनमें से एक के ऊपर उत्तानवदन शवरूप सदाशिव शय्या बन कर पड़े हुए हैं। उनके हृदय पर दक्षिण अथवा वाम पदपद्म को रख कर तत्रस्थ महाकाल के साथ आप विपरीत रति में संलग्न हैं।' इस स्थल पर कई प्रश्न उठते हैं—

(१) मृत पुरुषों के करप्रकर से काञ्ची का निर्माण ।
(२) महाश्मशान में तल्प की कल्पना ।
(३) शवरूप सदाशिव पर पदपद्म का न्यास ।
(४) शववाहनत्व ।
(५) महाकाल के साथ विपरीत रति ।

(१) प्रथम प्रश्न की विवेचना करने के पूर्व हमें कर और कर्म के साधुत्व पर विचार कर लेना चाहिये। कर और कर्म की निष्पत्ति कृञ् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है करना। इस धातु से 'ऋदोरप्' ३।३। ७। इस सूत्र से करता है (करोति) इस अर्थ में अप् प्रत्यय करने के अनन्तर कर इस पद की निष्पत्ति होती है, और 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' ४ पाद ५८४ इस उणादि सूत्र से किया जाय (क्रियते) इस अर्थ में मनिन् प्रत्यय करने के अनन्तर 'कर्म' इस पद की निष्पत्ति होती है। कर्तृवाच्य में कर पद सिद्ध हुआ है, और कर्मवाच्य में कर्म। अतः कर और कर्म ये दोनों पद एक ही परिवार के हैं। कर्म के संपादन में कर्मेन्द्रियों में प्रमुख कर ही प्रधान साधन है। कारण और फल में अभेद भावना के कारण करप्रकर से काञ्ची का निर्माण अधिक तर्कसंमत प्रतीत होता है।

महाप्रलय के अनन्तर कल्पारंभ पर्यन्त संपूर्ण जीव अपने स्थूल देह का परित्याग कर अपने कर्मों के साथ लिङ्ग देह का आश्रयण कर सगुण ब्रह्मरूपिणी भगवती के कारण देह के अविद्यामय अंश में निवास करते हैं। नितम्ब स्थल पर करसमूहों की अवस्थिति जीवों के पुनर्जन्म ग्रहण की निदर्शिका है। श्री देवी भागवत के अनुसार यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्रलय के समय जीव और उनके कर्म श्री भगवती में अभेद भाव से इस प्रकार विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार सषुप्ति में व्यवहार। तदनन्तर कल्पारंभ में श्री भगवती सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करती हैं, और प्राण, माया, कर्म आदि के साथ उसमें प्रवेश करती हैं।

तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च संचरे।
अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत्।
साहं सर्वं जगत् सृष्ट्वा तदन्तः प्रविशाम्यहम्।
मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसराः।
देवीगीता।

कर्म ही जीव के बन्धन का प्रमुख कारण है, क्योंकि कर्म से ही जीव का जन्म होता है और कर्म से ही मरण। तदनन्तर शरीर के नष्ट हो जाने पर इसी कर्म से ही जीव पुनर्जन्म ग्रहण करता है, और इस जन्म में भी उसे पूर्वसञ्चित अवशिष्ट कर्म उपलब्ध होते हैं।

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
देहे विनष्टे तत् कर्म पुनर्देहे प्रलभ्यते।

शाक्तानन्द तरङ्गिणी।

काञ्ची से नितम्ब भाग का आच्छादन कुछ रहस्य रखता है, प्रकृति की स्वाभाविक गति के अनुसार नितम्बिनी द्वारा विहित विपरीत रति के दर्शन से दर्शक के हृदय में कामवासना का सञ्चार नैसर्गिक है। इस कामशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार यत् किञ्चित् आवरण आवश्यक है। अतः भक्त के हृदय में कामजन्य दोष की निवृत्ति के लिये कालिका के नितम्ब स्थल पर काञ्ची की कल्पना की गई है।

काली तन्त्र एवं अन्य तन्त्रों में भी मृतकरप्रकर से काञ्ची का निर्माण दरसाया गया है।

मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगम्बरीम्।

तन्त्र।

शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।

काली तन्त्र।

(२) द्वितीय प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सुगम है। प्रलयकालिक चित्र की कल्पना कीजिये। महाप्रलय उपस्थित है। अनेकों ब्रह्माण्डों की चितायें दहक रही हैं। पञ्चतत्त्वों का अत्यन्ताभाव हो गया है। विश्व के सभी जीव शवरूप में सोये पड़े हैं। ऐसी अवस्था में विश्व का नाम श्मशान होगा या और कुछ, और भगवती की शय्या शवमयी चिता बनेगी या और कुछ।

महान्त्यपि च भूतानि प्रलये समुपस्थिते।
शेरतेऽत्र शवो भूत्वा श्मशानं तु ततो भवेत्।
तन्त्र।

कतिपय तान्त्रिकों के मत से इस पद्य में प्रयुक्त श्मशान पद से श्मशान साधना, शव साधना, मुण्ड साधना आदि साधनाओं का बोध होता है। हम इन साधनाओं का उल्लेख 'श्मशानस्थः स्वस्थो०' इस पद्य की व्याख्या में करेंगे।

(३) वामाक्षी शक्ति इकार से संयुक्त शिव शिव है, और इससे विरहित (इकार से रहित) शिव शव है। इस प्रत्यक्ष तार्किक सिद्धान्त के आधार पर शिव का शवत्व पूर्णतया प्रतिष्ठित है।

यस्मिन् त्यक्ता महाकाली शक्तिहीनः सदाशिवः।
शक्त्या युतो यदा देवि, तदैव शिवरूपकः।
शक्तिहीने शवः साक्षात् पुरुषत्वं न मुञ्चति।
तोडल तन्त्र।

इस स्थल पर श्री शङ्कराचार्य महाराज का वह कथन अविस्मरणीय है कि परब्रह्म नामधारी निष्कल निरञ्जन निर्गुण शिव यदि प्रकृतिरूपिणी शक्ति से संयुक्त हो जाता है, तो वह अपनी प्रभुता प्रदर्शन में, सृष्टि स्थिति संहार तिरोधान एवं अनुग्रह स्वरूप अपने प्रपञ्चन चातुर्य में सशक्त हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता, तो वह महादेव श्वास प्रश्वास के सम्पादन में भी, साँस लेने में भी असमर्थ रहता है।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
सौन्दर्यलहरी।

शास्त्रकारों का कथन है कि शक्ति के विना सूक्ष्म शिव में नामधाम की भी सत्ता नहीं रहती।

शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते।

इस शवरूप निरीह निश्चेष्ट सदाशिव में भगवती के चरण-कमल के स्पर्श से चेतनता की जागृति हुई, उसके हृदय में स्पन्दन का सञ्चार हुआ। परन्तु इस शव को शिव बनाने के लिये अधिक समय तक भगवती के चरणन्यास की आवश्यकता है। अतः भगवती कभी दक्षिण और कभी वाम पदन्यास से उसके हृद्गति की परीक्षा कर रही हैं। सृष्टिनिर्माण की उत्सुकता इसका प्रधान बीज है। पुरुष जाति की अपेक्षा स्त्री जाति में सन्तान की भावना अधिक रहती है। वन्ध्या पद भी स्त्री के लिये ही प्रयुक्त होता है, पुरुष के लिये नहीं। अतः भगवती के उपर्युक्त कार्य के औचित्य की प्रशंसा किये विना नहीं रहा जाता। योगिनी तन्त्र भी 'योगनिद्राधरं शम्भुम्' इस श्लोकचरण से पूर्वोक्त आशय का ही समर्थन करता है।

शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्।
काली तन्त्र।

कुब्जिका तन्त्र के अनुसार भगवती के दक्षिण पदपद्म का न्यास बतलाया गया है और योगिनी तन्त्र के अनुसार वाम पदपद्म का।

शवस्य हृदये चैव दक्षपादनिषेविताम्।
कुब्जिका तन्त्र।

वामपादं शवहृदि दक्षिणां लोकलांछिताम्।
योगिनी तन्त्र।

साधक असमञ्जस में पड़ गया है। 'दोनों प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। किस पर सन्देह करें, किसे अप्रामाणिक कहें।' उसने अपने गुरु महाराज से इस रहस्य-विज्ञान के लिए जिज्ञासा प्रकट की। गुरु महाराज ने गुप्त तन्त्र का हवाला देते हुए इस शङ्का का समाधान इस प्रकार किया कि संहारस्वरूपिणी जगन्मोहनमोहिनी भगवती का वाम पद आलीढ है, और दक्षिण पद प्रत्यालीढ। परन्तु यह नियत व्यापार

नहीं है, क्योंकि क्षण-क्षण में भगवती अपने पदों को बदला करती हैं; अर्थात् कभी दक्षिण पद आलीढ रहता है, कभी प्रत्यालीढ। अतः जिसके गुरु ने जिसे जो बतलाया है, वह उसे ब्रह्मवाक्य माने।

प्रश्न—

आलीढं कीदृशं नाम प्रत्यालीढं तु कीदृशम्।

उत्तर—

आलीढं वामपादं तु प्रत्यालीढं तु दक्षिणम्।
संहाररूपिणी काली जगन्मोहनमोहिनी।
आलीढपादा सा देवी प्रत्यालीढा क्षणे क्षणे।
गुरुणा यस्य यत् प्रोक्तं तत् तस्य ब्रह्मसंहितम्।

गुप्तसाधन तन्त्र।

(४) भगवती के शववाहनत्व का सामञ्जस्य द्वितीय प्रश्न के उत्तर में ही सन्निहित है। महाप्रलय की अवस्था में सम्पूर्ण संसार शवस्वरूप हो गया है। सर्वत्र चितायें धाँय-धाँय दहक रही हैं। एकाकिनी भगवती में ही चेतना है। अपनी स्थिति के लिये उन्होंने अपने आधार का अन्वेषण किया, पर शव के अतिरिक्त उन्हें कोई दूसरा आधार न मिल सका, क्योंकि महाप्रलय के समय साक्षात् संहारस्वरूपिणी काली ने संहारकारक शिव के हृदय में विश्वविनाश की प्रेरणा दी। सदाशिव ने भी विश्व का संहार कर भगवती से उसके पर्यवेक्षण की प्रार्थना की। तत्कर्तृक सृष्टिसंहार के निरीक्षण से जनित काली के मन्द हास्य ने अन्तकान्तक सदाशिव को भी अन्तक के अधीन कर दिया। अब सर्वत्र शव ही शव के दर्शन होने लगे। ऐसी स्थिति में काली को शववाहन न मिलता, तो क्या मिलता।

प्रश्न—

कथं सा दक्षिणा काली श्मशानालयवासिनी।

उत्तर—

वह्निरूपा महामाया सत्यं सत्यं न संशयः।
अत एव महाकाली श्मशानालयवासिनी।
गुप्तसाधन तन्त्र।

प्रश्न—

या चाद्या परमा विद्या द्वितीया भैरवी परा।
त्रैलोक्यजननी नित्या सा कथं शववाहना।

उत्तर—

या चाद्या परमेशानि स्वयं कालस्वरूपिणी।
श्रीशिवस्य हृदम्भोजे स्थिता संहाररूपिणी।
अत एव महाकालो जगत्संहारकारकः।
संहाररूपिणी काली यदा व्यक्तस्वरूपिणी।
तदैव सहसा देवि शवरूपः सदाशिवः।
तत्क्षणाच् चञ्चलापाङ्गि सा देवी शववाहना।
तोडल तन्त्र।

इस स्थल पर यह अविस्मरणीय है कि भगवती काली के तल्प का निर्माण निष्क्रिय निश्चेष्ट शवरूप शिव से नहीं प्रत्युत पञ्च महाप्रेतों से हुआ है जिनके नाम हैं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव।

गायत्री एवं गन्धर्व तन्त्र के अनुसार शव का निर्देश निर्गुण ब्रह्म से है। उस शव पर भगवती का पदन्यास एक विशिष्ट भाव की अभिव्यञ्जना करता है। निर्गुण ब्रह्म ही देवी के पद का आधार है, क्योंकि इस निर्गुण सदाशिव में भगवती की स्थिति सूक्ष्म रूप से है।

शव इत्यपरे ब्रह्मवाचकः प्रेतनिर्णयः।
गायत्री तन्त्र।

या शय्या परमेशानि स एव श्रीसदाशिवः।
तस्योपरि महेशानी सूक्ष्मा त्रिपुरसुन्दरी।
गन्धर्व तन्त्र।

(५) पञ्चम प्रश्नान्तर्गत भगवती की विपरीत रति अधिक रहस्यमयी है। इस प्रश्न का उत्तर अनेकानेक पद्धतियों से दिया जाता है। साधक के चित्त में महाप्रलय का दृश्य नाचता रहता है। वह देखता है कि सृष्टिनिर्माण आदि कार्यों के अभाव होने के कारण भगवती में निष्क्रियता की सत्ता तर्कविरहित है, क्योंकि वह महाकाल के साथ अभिन्न हो कर अखण्ड आनन्द का अनुभव कर रही हैं। वस्तुतः इस समय रतावस्था की सम्भावना भी नहीं है। परन्तु दिगम्बर महाकाल के ऊपर दिगम्बरी भगवती की स्थिति के कारण रतावस्था की कल्पना की गई है।

एक बात और भी है। महाप्रलय के अनन्तर कल्प का आरम्भ भी होगा। शिव और शक्ति के मिथुनभाव के विना वह असम्भवित है। पृथ्वी आदि को कर्तृजन्य बतलाना उचित नहीं। कर्तृजन्य के स्थान पर शक्तिशिवोभयजन्य अथवा प्रकृति पुरुषोभयजन्य कहना चाहिये। इस शक्तिशिवोभयजन्यता में भी शक्ति और शिव का समान अधिकार नहीं है, परन्तु शक्ति का पद विशेष महत्व का है। शक्ति और शिव में अविनाभाव संबन्ध है, अर्थात् न तो शिव के विना शक्ति की ही सत्ता है, और न शक्ति के विना शिव की ही। चन्द्र और चन्द्रिका के समान दोनों में किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं होता। तथापि जगत्-प्रपञ्च के निर्माण में शक्ति को ही प्रधानता प्रतीत होती है।

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चित चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।

स्कन्द पुराण।

जो दार्शनिक पुरुष-कर्तृक सृष्टि का प्रतिपादन करते हैं, उन्हें प्रकृति और पुरुष के कार्यकलापों का सम्यक्तया परिशीलन करना चाहिये, क्योंकि पुरुष द्रष्टा है और प्रकृति क्रियाशालिनी, पुरुष

भोक्ता है और जगदम्बा भोगवाहिनी, पुरुष अशक्त है और शक्ति शक्तिशालिनी। इसी द्रष्टा, भोक्ता, क्रियाकारिणी एवं शक्तिशालिनी के स्वरूपों में विपरीत रति का रहस्य अन्तर्हित है।

पुराणों में भी शक्ति की ही प्रधानता प्रतिपादित की गई है। वहाँ कहा गया है कि 'हे भगवती, आप ही ब्रह्मा के रूप में सृष्टि का निर्माण करती है, गोविन्द के रूप में जगत् का पालन करती हैं, रुद्र के रूप में संसार का संहार करती हैं, और ईश्वर के रूप में विश्व का तिरोधान करती हैं।

सृष्टिकर्त्री ब्रह्मरूपा गोप्त्री गोविन्दरूपिणी।
संहारिणी रुद्ररूपा तिरोधानकरीश्वरी।
ब्रह्माण्ड पुराण।

श्रीमद् देवीभागवत के तृतीय स्कन्ध में शक्ति की श्रेष्ठता बड़े ही सुन्दर शब्दों में प्रतिपादित की गई है। वहाँ पर भगवती ब्रह्मा से कहती हैं कि—

हे प्रजापते, इसमें सन्देह नहीं कि यदि मैं किसी भी जीव का परित्याग कर दूं, तो वह साँस भी नहीं ले सकता। मनुष्यों के विषय में कहना ही क्या है, यदि लोकसंहारकारक भगवान् रुद्र का भी मैं परित्याग कर दूं, तो वह दैत्यों का नाश न कर सकेगा। संसार में यह देखा जाता है कि अति दुर्बल एवं कार्यकलाप के संपादन में असमर्थ मनुष्य अशक्त इस नाम से व्यवहृत होता है। इस नराधम को कोई भी रुद्रहीन अथवा विष्णुहीन नहीं कहता। परन्तु सभी उसे शक्तिहीन कहते हैं। मनुष्य यदि गिर जाय, लड़खड़ा जाय, डर जाय, एवं प्रतीकार न कर सकने के कारण शत्रु के वश में पड़ जाय, तो कोई उसे अरुद्र (रुद्रहीन) नहीं कहता, पर सभी उसे अशक्त (शक्तिहीन) कहते हैं।

मया त्यक्तं विधे नूनं स्पन्दितुं न क्षमं भवेत्।
जीवजातं न संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि।
अशक्तः शंकरो हन्तुं दैत्यान् किल मयोज्झितः।
शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम्।
रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्।
पतितः स्खलितो भीतः शान्तः शत्रुवशंगतः।
अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः कोऽपि कथ्यते।

श्रीमद्देवी भागवत।

अर्धनारीश्वर के वाम भाग पर शक्ति का (वामा का) अधिकार है और दक्षिण पर ईश्वर का, इसीलिए काली को वामा कहा गया है, और शिव को दक्षिण। निर्वाण तन्त्र एवं गन्धर्व तन्त्र के आधार पर यह बल पूर्वक कहा जा सकता है कि शिव को जीत कर, महाकाल (पुरुष) को नीचे कर भगवती कालिका विपरीत रति में संलग्न हो गई। इस विजय में अधःकरण में विपरीत रति का रहस्य अन्तर्हित है।

वामा सा दक्षिणां जित्वा महामोक्षप्रदायिनी।

निर्वाण तन्त्र

अधःकृत्वा तु पुरुषं हकारार्धस्वरूपिणी।
विपरीतेन रमते वह्नीन्द्वर्कस्वरूपिणी।

गन्धर्व तन्त्र।

निरुत्तर तन्त्र का यह कथन भी कम महत्वशाली नहीं कि काली की विपरीत रति सगुण स्वरूप की परिचायिका है।

विपरीतरता काली निर्गुणा सगुणा यदा।

निरुत्तर तन्त्र।

योगशास्त्र के परम पण्डितों के मत से इस विपरीत रति का कुछ

और ही आशय है। कुण्डलिनीस्वरूपा भगवती कालिका की स्थिति मूलाधारस्थित स्वयम्भू लिङ्ग के ऊपर है, और परम शिवस्वरूप महाकाल की स्थिति आज्ञाचक्र के ऊपर। षट्चक्रभेदन क्रम से विहित इन दोनों का सम्बन्ध सुरत रूप में वर्णित है।

---

(८)

शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः
परं सङ्कीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम्।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरिसुरतेनाऽतियुवतीं
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभवः।

अन्वय

घोराभिः शिवाभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः च परं सङ्कीर्णायां प्रकटितचितायां प्रविष्टाम्, उपरिसुरतेन च सन्तुष्टाम् अतियुवतीं हर-वधूं त्वां सदा ये ध्यायन्ति, तेषां परिभवः क्वचिदपि न भवति।

व्याख्या

पूर्वोक्त पद्य में श्मशान का उल्लेख तो किया गया है, परन्तु उसकी भयानकता एवं बीभत्सता का निदर्शन इस पद्य में किया गया है। इसके अतिरिक्त जहाँ प्रथम पद्य में रत की आद्य अवस्था का वर्णन है, वहाँ इसमें सन्तुष्टि अवस्था का।

शव समूहों के कपाल तथा कङ्काल से परिपूर्ण प्रज्वलित श्मशान में भयोत्पादक शृगालिनियां योगनियां अथवा शिवारूपिणी सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य, कैवल्य नाम्नी मुक्तियां सर्वत्र विचरण कर

रही हैं। वहाँ पर बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था से असंपृक्त नवयौवन-शालिनी पुरहरसुन्दरी भगवती कालिका एक दहकती हुई चिता में प्रवेश कर रही हैं, श्मशान वह्नि के मध्य में विराज रही हैं और महा-काल के साथ विहित विपरीत रति से अत्यन्त सन्तुष्ट हो रही हैं।

जो मनुष्य आपकी इस स्वरूपावस्था का ध्यान सदैव करते हैं, उनका कहीं भी अपमान अथवा तिरस्कार नहीं होता, इस स्वरूप की भावना से उन्हें जगत्पूज्य पद की प्राप्ति होती है, तथा ८४ लाख योनियों में-से किसी भी योनि में उनका पुनर्जन्म् नहीं होता।

इस पद्य में प्रयुक्त हर तथा शिवा पद एक विशिष्ट भाव के बोधक हैं।

(क) तत्त्वज्ञान के प्रदान से भक्तों के आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आधिमानसिक तापों के नाश करने के कारण भगवान् शंकर का नाम हर पड़ गया है।

(ख) शिवा इस पद से शिवस्वरूप अपञ्चीकृत महाभूतों की व्यञ्जना होती है। श्यामा कल्प के अनुसार शिवा पद से मुक्ति का भी बोध होता है।

शिवा मुक्तिः समाख्याता तद्‌युक्ता मोक्षतत्परा।
श्यामा कल्प।

इस पद्य का एक और अर्थ भी है—

अत्यन्त दुर्धर्ष अपञ्चीकृत महाभूतों में, एवं श्वेत कंकालों से सूचित सत्वादि गुणों से परिछिन्न स्वप्रकाशमयी चित् शक्ति में आप अधिष्ठित हैं। महाकाल पर विजय पा कर आप सृष्टि स्थिति प्रलय आदि कार्यों में संलग्न हैं, आप आद्या होने पर भी नवयौवना हैं, अव्यया हैं, चिदानन्दमयी हैं, अतः हे दक्षिणे कालिके, आपके इस स्वरूप की भावना करने वाला व्यक्ति मोक्ष पदवी को प्राप्त करता है।

इस स्थल पर हम भगवती कालिका के उस समष्ट्यात्मक ध्यान का निरूपण करते हैं जिसका उल्लेख भगवान् महाकाल ने कर्पूर-स्तवराज के प्रथमाष्टक में किया है।

ध्यान

ध्यान के माहात्म्य के विषय में यह कहना असंगत न होगा कि जब इसके प्रभाव से साधारण लघु कीट भी भ्रमर के रूप में परिणत हो जाता है, तो फिर इसके बल से मनुष्य ब्रह्मस्वरूप क्यों न हो जायगा। पञ्चदशी में लिखा है कि प्रतिदिन ध्यान करने का फल है बुद्धि में अनात्मविषयिणी शिथिलता। इसे जान कर भी जो ध्यान नहीं करता, उससे बढ़ कर कौन पशु हो सकता है।

यथा ध्यानस्य संसर्गात् कीटोऽपि भ्रमरायते।
तथा समाधियोगेन ब्रह्मीभूतो भवेन्नरः।
धर्मशास्त्र।

अनात्मबुद्धिशैथिल्यं फलं ध्यानाद् दिने दिने।
पश्यन्नपि न चेद् ध्यायेत् कोऽपरोऽस्मात् पशुर्वद।
पञ्चदशी।

निर्वाण तन्त्र का मत है कि श्री भगवती के ध्यान से सब कुछ मिल जाता है, इसके प्रभाव से मनुष्य विष्णुरूप हो जाता है।

ध्यानेन लभते सर्वं ध्यानेन विष्णुरूपकः।
निर्वाण तन्त्र।

दक्षिण कालिका का ध्यान

महाप्रलय उपस्थित है। अनेकानेक ब्रह्माण्डों की चितायें दहक गई हैं। पञ्चतत्त्वों का अभाव हो गया है। विश्वसंहार के निमित्त जिस सदाशिव के हृदय में प्रेरणा दी गई थी, वह भी शव के रूप में चार प्रेतों की—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर की—चिताओं के मध्य में

चिता सजा कर एवं पञ्चम प्रेत बन कर सीधा लेट गया है। सर्वत्र शून्य ही शून्य है। इस समय यदि कहीं किसी का शब्द सुनाई देता है, तो वह भयानक श्रृगालिनियों के हुहुआने का, हूं हूं कार करने का। इस दृश्य में सर्वत्र विकीर्ण कङ्काल मुण्ड और अस्थियों का समूह अधिक भय सञ्चार कर रहा है।

इस भयानक स्थल में हर, स्मरहर, त्रिपुरहर आदि विविध विरुदावली विभूषित महेश्वर महाकाल की पट्टमहिषी, श्याम जलधर के समान मनोहारिणी, श्यामा, मुक्तकेशी, तापत्रय-निवारिणी, त्रिनयन-धारिणी, मङ्गलमयी, आनन्दमयी, जगज्जननी, महादेवी, माता दक्षिण कालिका के दर्शन होते हैं। लावण्य एवं नव यौवन में अप्रतिम होने पर भी आपकी शृङ्गारपरिपाटी अति ही विचित्र है। चूडा में अर्ध-चन्द्र, श्रवणों में महाभयानक शव से विनिर्मित कर्णाभरण, ओष्ठद्वय से प्रवहमान रक्तधारा, मुखारविन्द में स्पष्ट प्रतीयमान दशनपंक्ति, एवं कण्ठ में मुण्डमाला – इस विचित्र सौन्दर्यसामग्री से समलङ्कृत आपके उस चतुर्भुज रूप का भास होने लगता है जिसके वाम करों में खड्ग (ऊपर की ओर) और छिन्न मुण्ड (नीचे की ओर) और दक्षिण करों में अभय मुद्रा (ऊपर की ओर) और वर मुद्रा (नीचे की ओर) अवस्थित हैं। दुग्धाधिक्य से भरित पीन स्तन एवं दिगम्बरी होने पर भी मृत पुरुषों के कर समूहों से विरचित काञ्ची से आच्छादित नितम्ब-स्थल आपके अति विचित्र सौन्दर्य संवर्धन में सहायक हैं।

इस प्रकार श्मशान भूमि में विचरण करती हुई आप पञ्च प्रेतों की दहकती हुई चिता के समीप पहुँच जाती हैं। उस पर सदाशिव शव की सुन्दर सेज सजा कर, पुनः सृष्टिनिर्माण के निमित्त महाकाल के साथ विपरीत रति में संलग्न हो जाती हैं, रतिरस से समुत्पन्न महानन्द में निमग्न हो जाती हैं, तथा अपने इस कार्य से अत्यन्त सन्तुष्ट हो जाती हैं।

जो मनुष्य आपके इस स्वरूप एवं स्थिति का ध्यान करता है, वह

पापरहित हो जाता है, सर्वत्र संमानित होता है, कहीं भी अपमानित नहीं होता है, एवं पुनर्जन्म से, आवागमन से, छुटकारा पा जाता है, अर्थात् आपके भक्त को लौकिक एवं पारलौकिक फलों की प्राप्ति होती है।

इस स्थल पर अवस्थाद्वय का, लयावस्था तथा भोगावस्था का उल्लेख आवश्यक-सा प्रतीत होता है। जिस समय शक्ति समस्त व्यापारों को समाप्त कर स्वरूप मात्र में अवस्थान करती हैं, तब होती है लयावस्था। जिस समय शक्ति उन्मेष को प्राप्त कर विन्दु (अचेतन तथा परिणामशालिनी परिग्रह शक्ति) को कार्य उत्पादन की ओर अग्रसर करती हैं, और कार्य का उत्पादन कर शिव के ज्ञान और क्रिया में अभिवृद्धि करती हैं, तब होती है भोगावस्था। महाप्रलय और कल्पारम्भ भी इन उपर्युक्त अवस्थाओं से भिन्न नहीं हैं जिन्हें हम चिता और योनि भी कह सकते हैं। महानिर्वाण तन्त्रकार श्मशान के दो रूप मानते हैं चिता और योनि।

श्मशानं द्विविधं देवि चितायोनिप्रभेदतः।

महानिर्वाण तन्त्र।

कर्पूरस्तव के इन पदों में स्वरूप का निरूपण किया गया है—

(१) शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः परं संकीर्णायाम् (श्लो० ८)

(२) हरवधु (श्लोक ८, ११) स्मरहरमहिले (श्लो० ५) त्रिपुरहरवधु (श्लो० १) महेशि (श्लो० २) गिरिशरमणी (श्लो० १४)

(३) ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे (श्लो० १) असिते (श्लो० १९) कालिके (श्लो० ३) कालि (श्लो० १४,१६) महाकालि (श्लो०१५)

(४) विगलितचिकुरे (श्लो० ३)

(५) त्रिनयनाम् (श्लो० ७)

(६) त्रिजगदघहरे (श्लो० ४)

(७) कल्याणी (श्लो० १४)

(८) स्मितमुखि (श्लो० ५) स्मेरवदनाम् (श्लो० १८)

(९) त्रिभुवनविधात्रीम् (श्लो० ७)

(१०) देवि (श्लो० ६)

(११) मातः (श्लो० १,५,१४,२०,२१) अम्ब (श्लो० ४) जननि (९,१२, १८)

(१२) दक्षिणे कालिकेति (श्लो० ३)

(१३) अतियुवतीम् (श्लो० ८)

(१४) चन्द्रार्धचूडे (श्लो० २)

(१५) महाघोरशावावतंसे (श्लो० २)

(१६) सृक्कद्वन्द्वास्रधाराद्वयधरवदने (श्लो० ३)

(१७) प्रकटितरदने (श्लो० ४)

(१८) मुण्डस्रगतिशयलसत्कण्ठि (श्लो० ६)

(१९) ऊर्ध्वं वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं ततोऽधः सव्येऽभीतिं वरं च (श्लो० ४)

(२०) पीनस्तनाढ्ये (श्लो० ६)

(२१) गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्नितम्बाम्, दिग्वस्त्राम् (श्लो० ७)

(२२) प्रकटितचितायाम् प्रविष्टाम् (श्लो० ८) श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरतप्रसक्ताम् (श्लो० ७) त्रिपञ्चारे पीठे शवहृदि महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम् (श्लो० १८) अतिशयमहाकालसुरताम् (श्लो० ११) रतिरसमहानन्दनिरताम् (श्लो० १२) विपरीताम् (श्लो० १२) उपरिसुरतेन च सन्तुष्टाम् (श्लो० ८) स्वस्थीभूताम् (श्लो० ११)

काली तन्त्र में लिखा है कि—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम् ।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वकराम्बुजाम् ।
अभयं वरदं चैव दक्षिणोद्र्ध्वाधपाणिकाम् ।

महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बरीम् ।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ।
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्रां ललज्जिह्वां पीनोन्नतपयोधराम् ।

शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ।
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् ।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
वालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ।

दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ।
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।

सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
योगिनीचक्रसहितां कालिकां भावयेत् सदा ।
एवं संचिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धये ।
काली तन्त्र ।

———

साधना-निदर्शन

[६]

वदामस्ते किं वा जननि वयमुच्चैर्जडधियो
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम् ।
तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माननमिते
तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ।

अन्वय

हे अनमिते, हे जननि, यदा ते परमं तत्वं धाता न वेत्ति, ईशः अपि न वेत्ति, हरिः अपि न वेत्ति, तदा उच्चैः जडधियः वयं ते (तव) संबन्धे किं वा वदामः। तथापि त्वद्भक्तिः अस्मान् मुखरयति, तस्मात् कारणात् एतत् क्षन्तव्यम्। पशुरोषः न खलु समुचितः।

व्याख्या

ध्यान निरूपण करने के अनन्तर अब साधना विधि के परिज्ञान के विषय में अपनी असमर्थता के प्रदर्शन के व्याज से देवीतत्त्व की दुरधिगमता का निदर्शन करते हैं। हे सर्वनमस्कृत, ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि देवों की एवं अस्मद्विध पामर जनों की जनयित्री, इयत्ताविरहित दक्षिण कालिका। जब कि आपकी रहस्यमयी साधना के विधानों के अपरिज्ञान के कारण आपके यथार्थ तत्व का परिशीलन न ब्रह्मा ही कर सकते हैं, न विष्णु ही कर सकते हैं और न रुद्र महाराज ही कर सकते हैं, तो अत्यन्त मन्दबुद्धि अस्मादृश जन कह ही क्या सकते हैं, क्योंकि यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि सन्तान को अपनी जननी के जन्म कर्मादि के विषय में यथार्थतः ज्ञान नहीं होता, और इनके ज्ञान के विना स्तुति असम्भवित है। सृष्टिनिर्माता ब्रह्मा की, जगत्पालक विष्णु की, तथा ईशत्व सिद्धिसम्पन्न रुद्र की भी आप जननी हैं, और

जब ये बड़े २ देवता आपके स्वरूप को नहीं जानते, तो यत्किञ्चित् लौकिक ज्ञान सम्पन्न हम आपके स्वरूप के निरूपण में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
दुर्गा सप्तशती ।

विष्णुयामल तन्त्र का मत है कि हे माता, आपके परम स्वरूप का परिज्ञान किसी को भी नहीं है, अत एव स्वर्गनिवासी देवगण भी आपके काली आदि स्थूल रूप की ही समर्चा करते हैं।

मातस्त्वत्परमं रूपं न च जानाति कश्चन ।
काल्यादिस्थूलं यद् रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः ।
विष्णुयामल तन्त्र ।

देवी सूक्त का सिद्धान्त है कि हे देवि, यद्यपि आप सूक्ष्म हैं, अव्यय हैं, और परापररहित एक ही हैं तथापि अनेक रूप धर कर करोड़ों ब्रह्माण्डों का सृजन करती हैं, तो फिर न मैं विष्णु ही, न शिव-स्वरूप महादेव ही, और न और और देव समूह ही आपके कीर्तन करनें में समर्थ हो सकते हैं।

एकानेका सूक्ष्मरूपाऽविकारा
ब्रह्माण्डानां कोटिकोटिं प्रसूते ।
कोऽहं विष्णुः कोऽपरो वा शिवाख्यो
देवाश्चान्ये स्तोतुमीशा भवेम ।
देवी सूक्त ।

महाकालीस्तोत्र का कथन है कि जिस समय न तो ब्रह्मा थे और न विष्णु, न तो रुद्र थे और न काल, कहाँ तक कहैं जिस समय पञ्च महाभूतों (पृथ्वी, जल, पावक, समीर और आकाश) की ही सत्ता

न थी, उस समय एकमात्र कारणीभूत सत्त्वमयी मूर्ति स्वरूप हो कर एकाकिनी आप ही परब्रह्म स्वरूप से विद्यमान थीं।

यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो
न कालो न वा पञ्च भूतानि चासन्।
तदा कारणीभूतसत्त्वैकमूर्तिः
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा।

महाकाली स्तोत्र।

इस प्रकार भगवती की गुणगाथा के कथन में, दक्षिण कालिका की उपासना पद्धति के निरूपण में अपनी असमर्थता प्रदर्शित करने पर भी जो आपकी उपासनामयी गुणगाथा के विषय में अपने मनोभावों के अभिव्यक्त करने की दृढ़ अभिलाषा है, इसका प्रमुख कारण है आपके प्रति हमारी दृढ़ भक्ति। यह आपकी यशोगाथा के गान के लिये हमें वाचाल बना रही है, अत एव हे माता, आपसे सानुनय प्रार्थना है कि हमारी इस अनधिकार चेष्टा पर दया दरसा कर, एवं हमारे इस महान् अपराध पर क्षमा प्रदान कर आप हमें अनुगृहीत बनाइये, क्योंकि माता अपनी सन्तति के अज्ञानविहित (पशुकृत) अपराध पर क्षमा ही करती आई हैं। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि रज्जुपाश से सुनिबद्ध गो अश्व महिष आदि पशु यद्यपि लातें फटकार कर शृङ्गप्रहार भी करते हैं, पर फिर भी उनके मालिक उन पर क्रोध नहीं दिखलाते।

इस लौकिक दृष्टान्त के आधार पर यह निवेदन अनुचित न होगा कि हम भी पाशबद्ध हैं, हमारी भी पशु-संज्ञा है, अतः हमारी इस धृष्टता के कारण आपका क्रोध उचित नहीं।

रुद्रयामल तन्त्र में पाशाष्टक का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशा इमे स्मृताः।

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
पाशबद्धः सदा जीवः पाशमुक्तः सदाशिवः।
रुद्रयामल तन्त्र।

(१) घृणा—

संसार में केवल दो भाव प्रिय और अप्रिय दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें प्रिय से रुचि और अप्रिय से अरुचि व्यञ्जित होती है। घृणा अथवा नफरत, ये अरुचि के पर्यायवाची शब्द हैं।

(२) शङ्का—

अन्य के प्रति सन्देह की भावना, हानि-लाभ की चिन्ता, लोलुप प्रवृत्ति आदि शङ्का के ही स्वरूप हैं। भौतिकवाद में निमग्न पुरुष जिस प्रकार स्वयं छल, प्रपञ्च, मिथ्याभाषण, कपट-व्यवहार आदि का आश्रय लेता है, उसी प्रकार दूसरे को भी समझता है। यही शङ्का का मूल कारण है।

(३) भय—

पार्थिव पदार्थों की नश्वरता का पर्यवेक्षण एवं स्वकीय नश्वर पदार्थों से प्रेम, भय का जनक है।

(४) लज्जा—

स्वकीय हीनता (Inferiority Complex) के कारण मानापमान की भावना का नाम लज्जा है।

(५) जुगुप्सा—

परदोषदर्शन अथवा परनिन्दा को जुगुप्सा कहते हैं।

(६) कुल—

मान्य तथा इतिहास-प्रसिद्ध महापुरुष को अपना पूर्वज बतला कर स्वकीय उच्चता निदर्शन का साधन कुल नाम से व्यवहृत है।

(७) शील --

अपनी स्वतन्त्रता का विघातक तथा पर के प्रति संभ्रम का प्रदर्शक व्यवहार (शिष्टाचार) शील कहलाता है।

(८) जाति —

वर्णव्यवस्था का नाम जाति है। यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार मूल जातियों में एवं अनुलोम, प्रतिलोम तथा मिश्रित उपजातियों में शतशः विभक्त है। कुल से इसका अन्तर स्पष्ट है। कुल केवल एक जाति अथवा उपजाति की शाखा का नाम है। इस जाति का खण्डन वैदिकमतातिरिक्त सभी मतों ने बड़ी आरभटी के साथ किया है। पुराणों का मत वैदिक मत कहा जाता है, पर इन पुराणों में भी कहीं-कहीं इस जाति का खण्डन बड़ी तार्किक पद्धति से किया गया है। भविष्य पुराण का कथन है कि —

'न तो ब्राह्मण चन्द्रकिरण के समान शुक्ल (श्वेत) हैं और न क्षत्रिय किंशुक कुसुम के समान रक्त; न वैश्य हरताल के समान पीत हैं और न शूद्र कोयले के समान काले। इन चारो वर्णों का शरीरसंगठन समान है, रोम, त्वचा, मांस, रुधिर, रस, धातु आदि में ये एक दूसरे से अभिन्न हैं, भोजन गमन आदि इनके शरीर व्यापार भी एक दूसरे से मिलते जुलते हैं; सुख दुःख क्लेश आदि मानसिक भावनायें एक-सी हैं, तब ये कल्पित चार भेद कैसे। वर्ण, प्रमाण, आकार, ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रिय के व्यापार, मन, बुद्धि आत्मा, जीवन, मरण, धर्म, अर्थ, काम, रोग एवं औषधि आदि में इस वर्णव्यवस्था का कोई विशेष प्रभाव नहीं दीख पड़ता। जब कि सम्पूर्ण संसार की रचना एक ही परम पिता परमात्मा ने की है, तो फिर इस जातिभेद की कल्पना कैसी। यह न तो प्रमाण के आधार पर सिद्ध होती है, और न दृष्टान्त के बल से ही। न तो इसका समर्थन लोकव्यवहार ही करता है, और न नयशास्त्र ही। इन चारो सन्तानों के पिता जनक एक है,

जनक की एकता में सन्तानों की जाति भी एक ही होगी–मनुष्य जाति। यह सिद्ध है कि एक पिता के सन्तानों की एक ही जाति हो सकती है, भिन्न-भिन्न नहीं।

न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुभ्रा न क्षत्रियाः किंशुकपुष्पवर्णाः।
न चेह वैश्या हरितालतुल्याः शूद्रा न चाङ्गारसमानवर्णाः।
पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन।
त्वङ्मांसकेशास्थिरसैः समानाश्चतुःप्रभेदा हि कथं भवन्ति।
वर्णप्रमाणाकृतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रियजीवितेषु।
बलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः।
स एक एवात्र पिता प्रजानां कथं पुनर्जातिकृतः प्रभेदः।
प्रमाणदृष्टान्तनयप्रवादैः परीक्ष्यमाणो विघटत्वमेति।
चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रेकभावान्न च जातिभेदः।
भविष्य पुराण।

इन उपर्युक्त अष्ट पाशों की संज्ञा पशु पाश है, जिनमें आबद्ध होने के कारण जीव आवागमन के चक्कर में घूमा करता है, इससे विमुक्त होने के लिये, आवागमन से छुटकारा पाने के लिये, निर्वाण पद की प्राप्ति के लिये, सभी मतों ने अनेक साधन बतलाये हैं, पर सब का चरम लक्ष्य है, ममत्व परित्याग, पर इस ममत्व के परित्याग का निदर्शन जैसा इस पाशाष्टक के द्वारा किया गया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

इस पशुपाश का निरूपण एक विभिन्न पद्धति से भी किया गया है। अणु, परिच्छिन्न, सीमित शक्ति से समन्वित क्षेत्रज्ञ जीव की ही पशुसंज्ञा है। पशु तीन प्रकार के होते हैं–(१) विज्ञानाकल (२) प्रलयाकल और (३) सकल।

(१) जिन पशुओं में विज्ञान, योग तथा संन्यास से अथवा भोगमात्र से कर्म क्षीण हो जाते हैं और शरीरबन्ध की उत्पत्ति नहीं होती, उन्हें विज्ञानाकल कहते हैं। इनमें केवल आणव मल अवशिष्ट रहता है।

(२) जिन पशुओं में प्रलयदशा में शरीरपात होने से मायीय मल नहीं रहता, परन्तु आणव मल तथा कार्मण मल की सत्ता बनी रहती है, उन्हें प्रलयाकल कहते हैं।

(३) जिन पशुओं में तीनों मलों का अस्तित्व विद्यमान रहता है, उन्हें सकल कहते हैं।

पाश—

शिवरूप होने पर भी जिस बन्धन के द्वारा जीव को पशुत्व की प्राप्ति होती है, उसे पाश कहते हैं, इसके चार भेद हैं।

(१) मल, (२) कर्म, (३) माया (४) रोध शक्ति।

(१) जो जीव की स्वाभाविक ज्ञानक्रिया शक्ति को तिरोहित करता है, उसका नाम मल है।

(२) फलार्थी जीवों के द्वारा क्रियमाण, बीजाङ्कुर न्याय से अनादि कार्यकलाप का नाम कर्म है।

(३) प्रलयकाल में जीवों को लय करने वाली, तथा सृष्टिकाल में उन्हें उत्पन्न करने वाली शक्ति का नाम माया है।

(४) जिसके द्वारा शिव जीवों के स्वरूप का तिरोधान करते हैं, उसका नाम रोध शक्ति है।

भक्ति—

इस स्थल पर भक्ति की विवेचना अत्यन्त आवश्यक है, इसी भक्ति की प्रेरणा से भगवान् श्री महाकाल ने अपनी मति भगवती श्री दक्षिणकालिका के विषय में अभिव्यक्त की है।

अस्थिचर्मावनद्ध शरीरी के प्रति अभिलाष का नाम प्रेम है। जब यह अपने से छोटों के प्रति प्रदर्शित किया जाता है तब इसे लाड़ स्नेह अथवा वात्सल्य कहते हैं। पशु के प्रति प्रेम, शिशु के प्रति प्रेम, पुत्र पुत्री आदि के प्रति प्रेम इसकी परिधि में आते हैं। जब कि यह अपने समवयस्क अथवा समकक्ष के प्रति अभिव्यञ्जित किया जाता है, तब इसे अनुराग, राग, प्रेम, प्रीति आदि पदों से व्यवहृत करते हैं, प्रेयसी-प्रेम, सुहृत्प्रेम आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। परन्तु जब कि यह अपने से बड़ों के प्रति प्रदर्शित किया जाता है, तब इसे भक्ति के नाम से पुकारते हैं। मातृभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, स्वामिभक्ति, पतिभक्ति, देशभक्ति, भगवद्भक्ति आदि इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। इस स्थल पर अन्य प्रेमों की चर्चा न चला कर हम भगवद्भक्ति के विषय में कुछ निवेदन करने का साहस करेंगे।

भक्ति का मूल है भय, इसके विना भक्ति में स्थिरता नहीं आती।

भीतोऽस्मादुदेति सूर्यः भीतोऽस्मात् पवते वायुः।

वेद।

श्रवण, कीर्तन, मनन, चरणसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन, इन भेदों से नवधा भक्ति वस्तुतः तीन प्राङ्गणों में विभक्त है।

सर्वशक्तिमयी जगदम्बा दक्षिणकालिका में भक्ति अर्थात् परा अनुरक्ति के संपादन के लिये प्रथम प्राङ्गण का प्रथम सोपान है श्रवण। श्री देवी भागवत, मार्कण्डेय पुराण, कालिका पुराण आदि का श्रवण अत्यन्त आवश्यक है। इसके विना साधक देवीभक्ति-मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकारी ही नहीं है। तदनन्तर शक्ति-ग्रन्थों के श्रवण से समुपलब्ध ज्ञान की स्थिरता के लिये कीर्तन कितना आवश्यक है—इसका परिज्ञान एक छात्र को भी है। विना रटे, विना बारंबार कहे किसी भी वस्तु के ज्ञान में, उस पर भी जगदम्बा के ज्ञान

में स्थिरता नहीं आती। अतः द्वितीय सोपान पर समवस्थित साधक सप्तशती देवी भागवत आदि ग्रन्थों का, तथा कर्पूरस्तवराज, सौन्दर्य-लहरी आदि स्तोत्रों का पाठ तथा नामकीर्तन (जप) करता रहता है। पर ज्यों ही वह तीसरे सोपान की ओर दृष्टिपात करता है, त्यों ही उसके मनोमन्दिर में श्रवण तथा कीर्तन के आधार पर एक जिज्ञासा का उदय होता है कि जगदम्बा हैं क्या। इसकी विवेचना कर वह साधक द्वितीय प्राङ्गण में प्रवेश करता है।

शक्ति त्रयी, नव मातृका, दश महाविद्या, दक्षिणकालिका आदि शक्ति के विभिन्न रूपों में-से किसी एक पर आसक्त हो कर उसके चरणकमलों की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगता है। यही है द्वितीय प्राङ्गण का प्रथम सोपान। पूर्व पुनीत पुण्य के उदय होते ही वह उपलब्ध समग्र साधनों से, षोडशोपचार से, यथासाध्य समर्चन करने की आयोजना करने लगता है। यह है द्वितीय प्राङ्गण का द्वितीय सोपान। यहीं से साधक सुगमता से वन्दन नामक तृतीय सोपान पर अधिकार पाने का अधिकारी हो जाता है।

इस प्रकार द्वितीय प्राङ्गण से पार होते ही उसके सामने मिलन-मय तृतीय प्राङ्गण के दर्शन होते हैं। वहाँ पर वह पुत्र रूप से उपस्थित होने में अधिक कल्याण समझता है। बस फिर क्या, पुत्र का कार्य है सेवा समर्चा करना, और माता का कार्य है पुत्र की देखभाल करना।

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति।

तृतीय प्राङ्गण के प्रथम सोपान पर खड़ा साधक बड़ा हठी है। वह अनुरक्त शिक्षित सुवन के समान कार्य करता रहता है। माता का हृदय पसीज उठा। बच्चे को द्वितीय सोपान की ओर खींच लिया। भक्त का कण्ठ भर गया। मां बेटे में बातचीत होने लगी। पर बच्चे ने भयवश संकोचवश अथवा अन्य किसी कारणवश अपनी बात

न कही। इस पर भगवती ने अपने बच्चे को पकड़ कर तृतीय सोपान पर खड़ा कर दिया और गुरु महाराज की ओर देख कर मुसकराती हुई कहने लगीं—'बोल अब क्या चाहता है?' बच्चे का गला भर गया। माता को प्रसन्न देख कर उसने फूट-फूट कर अपनी बात सुना दी।

यह भक्ति, सत्त्व रज एवं तम इन गुणों से त्रिविध रूप धारण करती है सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी। इनमें सात्त्विकी मानसी भक्ति उत्तम, राजसी वाह्य भक्ति मध्यम, एवं तामसी दाम्भिकी भक्ति अधम मानी गई हैं।

उत्तमा सात्त्विकी भक्तिः राजसी भक्तिर्मध्यमा।
तामसी भक्तिरधमा त्रिधा भक्तिर्महेश्वर।
मानसी सात्त्विकी भक्तिर्वाह्यभक्तिश्च राजसी।
तामसी दाम्भिकी भक्तिस्तासां भेदं वदाम्यहम्।
निगम तत्व।

भक्ति पूजामूलक होती है, और पूजा भक्तिमूलक। इन दोनों भक्ति और पूजा की सत्ता ज्ञान और ज्ञेय के समान अन्योन्याश्रित है। अतः श्रद्धामयी पूजा फलवती होती है, और श्रद्धाहीन पूजा फल से शून्य है।

पूजामूला भवेद् भक्तिर्भक्तिहीनं हि पूजनम्।
परस्परं विना न स्यात् ज्ञानं ज्ञेयं यथा प्रिये।
श्रद्धाहीना च या पूजा सा पूजा न फलप्रदा।
भाव चूडामणि।

भाव

भाव मन का धर्म है। अत एव यह शब्द का विषय नहीं बन सकता, जैसे रसना इन्द्रिय को ईख राब गुड़ शर्करा मिश्री आदि पदार्थों की विभिन्न मधुरता का परिज्ञान होता है, तथापि वह

उनकी विभिन्नता का व्यक्तीकरण नहीं कर सकती, इसी प्रकार मन को भाव का परिज्ञान तो होता है, परन्तु वह शब्द द्वारा उसे प्रकट नहीं कर सकता। मन ही में भाव का उद्भव होता है, और मन ही में तिरोभाव। मन ही में भाव का निवास होता है और मन ही में विलय। भाव से ही लघु, गुरु, शिव, शक्ति, और पूजा, पूज्य एवं पूजक मिलते हैं, तथा भाव से ही ये दूर हो जाते हैं।

भावस्तु मानसो धर्मः शब्दस्य हि कथं भवेत्।
किञ्चिद्भावं प्रवक्तव्यं दिङ्मात्रदर्शनं तथा।
यथेक्षुगुडमाधुर्यं रसना ज्ञायते प्रभो।
तथा भावं महादेव मनसा परिभाव्यते।
मनस्युत्पद्यते भावो मनसीति प्रलीयते।
मनसीति स्थितो भावः पुनर्मनसि लीयते।
निगम कल्पानन्द।

लघुं गुरुं शिवं शक्तिं पूज्यं पूजां च पूजकम्।
भावेन लभतेऽप्येतान् भावेऽप्येतान् विनश्यति।
भाव चूडामणि।

यह भाव अधम, मध्यम, उत्तम और उत्तमोत्तम इन चार भेदों में विभक्त है। जो देहाभिमान के कारण ऐहिक सुख की अभिलाषा रखते हैं, वे अधम हैं, जो जीवाभिमान के कारण पारलौकिकी चिन्ता करते हैं वे मध्यम हैं, जो आवागमन से विमुक्ति के लिये मुक्ति की भावना करते हैं, वे उत्तम हैं, और जो भावना से रहित हैं, वे उत्तमोत्तम हैं।

अधमा देहान् भावन्ति, जीवं भावन्ति मध्यमाः।
मोक्षं भावन्त्युत्तमाश्च भावातीतास्तदुत्तमाः।
अधमा इह पश्यन्ति परकालं तु मध्यमाः।
मोक्षं पश्यन्त्युत्तमाश्च नापश्यन्त्युत्तमोत्तमाः।

अधमाः कर्मभीताश्च भक्तिभीताश्च मध्यमाः।
उत्तमा मोक्षभीताश्च भीतो नास्त्युत्तमोत्तमाः।
भाव चूडामणि।

कालिका कल्प के अनुसार ये भाव पाँच प्रकार के होते हैं - पशु, शैव, वीर, दिव्य तथा सिद्धान्त। परन्तु भाव से विमुक्त होने पर उसकी कौल संज्ञा होती है। भावातीत होने पर मुक्त होता है, और भावबद्ध होने पर नर। दिव्य भाव का उपासक देवस्वरूप होता है और सिद्धान्त भाव का उपासक साक्षात् देव। यहाँ पर यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि दिव्य और सिद्धान्त में अन्तरबीज दक्षिणाचार और वामाचार में अन्तर्हित है।

पश्वाचारश्च शैवश्च वीरश्च दिव्य एव च।
सिद्धान्तश्च भवेद् भावः कौलश्च भाववर्जितः।
भावातीते भवेन्मुक्तिर्भावैर्बद्धो भवेन्नरः।
दिव्यो देवस्वरूपश्च सिद्धान्तो देव एव च।
कालिका कल्प।

दिव्यसिद्धान्तयोर्बीजं दक्षवामेति शंकर।
निगमानन्द तन्त्र।

आत्मानं देवतां मत्वा यजेद् देवं विधानतः।
सदानन्दः सदा शान्तः सिद्धान्ताचार उच्यते।

भाव-त्रितय—

इस स्थल पर उन तीनों भावों की—(१) पशु भाव (२) वीर भाव और (३) दिव्य भाव की, अथवा उन तीनों आचारों की—(१) दक्षिणाचार (२ वामाचार और (३) कुलाचार की विवेचना अप्रासङ्गिक न होगी जिनमें से किसी एक के द्वारा शक्ति-साधना की जाती है।

श्रृणु भावत्रयं देवि दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
दिव्यश्च देववत् प्रायो वीरश्चोद्धतमानसः ।
पशुभावः सदा देवि शुद्धश्च शुचिवत् सदा ।
काली विलास ।

भावस्तु त्रिविधो देव दिव्यवीरपशुक्रमात् ।
आद्यभावो महादेव श्रेयान् सर्वसमृद्धिदः ।
द्वितीयो मध्यमश्चैव तृतीयः सर्वनिन्दितः ।
भाव चूडामणि ।

उपर्य्युक्त उद्धरणों में यद्यपि मतभेद परिलक्षित होता है, तथापि पात्र भेद से इसका समाधान भी हो जाता है। पशु भाव एवं वीर भाव की साधना के अवसर पर हम 'शुचिः' 'सर्वनिन्दितः' एवं 'उद्धत मानसः' इस पदों की व्याख्या करेंगे।

(१) वीरभाव-अथवा वाम मार्ग—

जो लोग पञ्च मकार से अर्थात् मद्य, मांस, मीन, मुद्रा (तला हुआ पदार्थ) और मैथुन से, विशेषतः परकीया और गणिका के साथ सुरत से भगवती कालिका की आराधना करते हैं, वे वीर, वीराचारी, वाममार्गी, कौलिक आदि नामों से संबोधित किये जाते हैं, इनका मत है कि शिव शक्ति की—भगवती कालिका की समर्चा में मकार-पञ्चक का अवश्य सेवन करना चाहिये।

मद्यं मांसं तथा मीनं मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारपञ्चकं सेव्यं शिवशक्तिसमागमे ।
मेरु तन्त्र ।

पुरश्चर्यार्णव का मत है कि मांस, मत्स्य, दधि, मधु, मद्य एवं भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थों को शक्ति को दे कर तथा स्वयं ग्रहण कर जप करे। इसी ग्रन्थ में आगे चल कर कहा गया है कि मांस खा कर, मद्य पी कर एवं शक्ति के साथ रतानन्द में निमग्न हो कर जप करे।

मांसं मत्स्यं दधि क्षौद्रं संविदासवयो रसम् ।
भोज्यान्यशेषभक्ष्याणि दत्वा भुक्त्वा चरेज्जपम् ।
× × × ।
मांसं भुक्त्वाऽऽसवं पीत्वा स्त्रियं गत्वा चरेज्जपम् ।
पुरश्चर्यार्णव ।

कुलार्णव तन्त्र का कथन है कि मद्य, मांस, मीन, मुद्रा तथा मैथुन ये पञ्च मकार देवी कालिका की प्रीति के जनक हैं, अतः देवी की प्रसन्नता के लिए विद्वज्जन इनका सेवन करते हैं, जो कोई तृष्णा से इनका सेवन करता है, वह पापी है।

मद्यं मांसं च मत्स्यं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारपञ्चकं देवि देवताप्रीतिकारकम् ।
मादिपञ्चकमीशानि देवताप्रीतये सुधीः ।
यथाविधि निषेवेत तृष्णया चेत् स पातकी ।
कुलार्णव तन्त्र ।

शक्तिसङ्गम तन्त्र का मत है कि भगवती माता कालिका का पूजन पञ्च मकार से करना चाहिये। इतना ध्यान रखना चाहिये कि शक्ति (स्त्री) के विना कभी भी जप न करे और कारण (मद्य) के विना कभी भी शक्ति का सङ्ग न करे ।

सदा पञ्चमकारैश्च पूजयेत् कालिकाम्बिकाम् ।
शक्तिं विना न हि जपेन्न शक्तिः कारणं बिना ।
तारा खण्ड ।

इन तान्त्रिक पण्डितों ने अपनी गवेषणात्मिका प्रतिभा के बल से, यजुर्वेद संहिता में एक ऐसा मन्त्र ढूंढ़ निकाला है जिसमें 'वाम' पद का प्रयोग पांच बार पाया जाता है। विनियोग एवं मन्त्रार्थ से विभिन्न होने पर भी इस मन्त्र में प्रयुक्त वाम पद की पञ्च बार आवृत्ति वीज-रूप से पञ्च मकार की बोधिका मानी जाती है।

वाममद्य सवितर्वाममुश्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्य ँ सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ।
यजुर्वेद (८–६)

वस्तुतः इस मकारपञ्चक में तीन ही प्रमुख मकार हैं, मद्य, मांस और मैथुन, क्योंकि मुद्रा मद्य का अविभाज्य अङ्ग है और मांस पद से जलचर, (मीन कच्छप आदि), स्थलचर (छाग, मृग आदि) और आकाशचर (तीतर, बटेर आदि) जीवों के मांस का बोध होता है। स्मृति और पुराणों में इन तीन ही का उल्लेख मिलता है। तान्त्रिकों ने भी जलीय स्थलीय एवं आकाशीय जीवों के भेद से मांस की त्रिविधता मानी है। कपोत छाग और कूर्म इसके उदाहरण हैं।

मांसं च त्रिविधं प्रोक्तं जलभूचरखेचरम् ।
कपोतकस्य छागस्य कूर्मस्य परमेश्वरि ।
त्रिविधान्येव मांसानि वियद्भूजलचराणि च ।
कुलरहस्य ।

मनु महाराज का मत है कि मदिरा पान में, मांस भक्षण में एवं मैथुन क्रिया में किसी प्रकार के दोषोद्भावन की शङ्का न करनी चाहिये, क्योंकि इनकी ओर मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। यदि कोई, प्रवृत्ति के इन प्रलोभनों से बच कर, निवृत्तिमार्ग का ग्रहण करता है, तो वह महान् है, उसके इस कार्य से महत् एवं दिव्य फलों का अधिगम होता है।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ।
मनुस्मृति ।

श्रीमद्भागवतकार का कथन है कि इस संसार में कोई किसी को यह शिक्षा नहीं देता कि तुम मद्य, मांस एवं मैथुन का सेवन करो, इन सब की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति स्वभावतः बनी रहती है। परन्तु

शास्त्रकारों ने इन तीनों को कुछ व्यवस्थित करने के लिये, इनका उपयोग कुछ मर्यादित करने के लिये परिसंख्या का निर्देश किया है। इसके लिये उन्होंने सौत्रामणि, सोम याग एवं विवाह की आयोजना की है, परन्तु इस पर भी उन्हें निवृत्ति ही इष्ट है।

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा।

श्रीमद् भागवत।

इस प्रकार वैदिक मतावलम्बियों के साहित्य में भी मकारत्रितय का उल्लेख प्रदर्शित कर तान्त्रिक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस स्वाभाविक प्रवृत्ति मार्ग को निवृत्ति मार्ग में परिणत कर देना ही तन्त्रशास्त्र का चरम लक्ष्य है। मोक्ष मार्ग के पथिक योगियों को प्रारम्भिक अवस्था में भोग की, मकारत्रितय की अभिलाषा नहीं होती, ऐसी बात नहीं. और भोगियों को (मकारत्रितय के उपभोग में आसक्त पुरुषों को) मोक्ष की चिन्ता नहीं होती यह भी बात नही है, परन्तु दक्षिणाचारी वैदिक मत से भोग और योग की एकत्र समवस्थिति इस प्रकार असम्भवित है जिस प्रकार जल और अग्नि की एकत्र स्थिति। परन्तु शाक्त मत से भोग और मोक्ष, अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों एक ही साथ उपलब्ध होते हैं।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः,
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीपूजनतत्पराणाम्
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।

कुलार्णव तन्त्र का कथन है कि वैदिक मत में न तो योगी भोगी ही हो सकता है, और न भोगी योगी ही, पर शाक्त संप्रदाय में भोग और योग ये दोनों एक साथ ही उपलब्ध होते है। यही इसमें सर्वाधिक विशेषता है। इस मार्ग के द्वारा साधना करने से सम्पूर्ण ऐहिक

भोग, योग में परिणत हो जाते हैं, धर्मशास्त्रों में वर्णित पातकपुञ्ज पुण्यराशि में परिवर्तित हो जाते हैं और आसक्तिमूलक जगत्-प्रपञ्च भी मोक्ष के रूप में भासित होने लगता है।

योगी चेत्, नैव भोगी स्याद्, भोगी चेत्, नैव योगवित्।
भोगयोगात्मकं तस्मात् कौलं सर्वाधिकं प्रिये।
भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि।
कुलार्णव तन्त्र।

मद्य—

इस प्रकार ये भोग के द्वारा मोक्ष के अधिगम की चर्चा चला कर मकार पञ्चक में-से आद्य (मद्य) और अन्तिम (मैथुन) के विषय में चित्तावरोधात्मक उपदेश की गाथा गाते हैं। इनके मत से मद्यपान का उद्देश्य है मन्त्रार्थ की स्फूर्ति, मन की स्थिरता एवं भवपाश की निवृत्ति। जब तक दृष्टि मन वाणी और शरीर में विभ्रम नहीं होता, तब तक मद्य पीना चाहिये, इसके आगे पीना पशुपान कहलाता है। जब तक इन्द्रियों में विह्वलता नहीं आती, जब तक मुख में विकार नहीं आता, तब तक मद्य पीना चाहिये। जो इसके प्रतिकूल आचरण करता है, उसका पतन होता है।

मन्त्रार्थस्फुरणार्थाय मनसः स्थैर्यहेतवे।
भवपाशनिवृत्त्यर्थं मधुपानं समाचरेत्।
दृष्टिमानसवाक्काये यावन्नो भवति भ्रमः।
तावत्पानं प्रकुर्वीत पशुपानमतः परम्।
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावन्नो मुखवैकृतिः।
तावदेव पिबेन्मद्यम्, अन्यथा पतनं भवेत्।
कुलार्णव तन्त्र।

विना मद्य के तत्त्व ज्ञान का अधिगम नहीं होता, अत एव ब्राह्मण को भी सदा मदिरापान करना चहिये।

मद्यपानं विना देवि तत्त्वज्ञानं न लभ्यते।
अत एव हि विप्रश्च सुरापानं सदा चरेत्।
मातृकाभेद तन्त्र।

ज्ञानार्णव तन्त्र का कथन है कि मद्य ज्ञान का जनक है और मद्य ही ज्ञान का नाशक। वायु ही अग्नि का प्रज्वालक है और वायु ही अग्नि का निर्वापक।

ज्ञानस्य कारणं मद्यं, मद्यं ज्ञानस्य नाशकम्।
वायुना ज्वलितोऽग्निश्च वायुना लयवान् यथा।
ज्ञानार्णव तन्त्र।

मैथुन—

पञ्चम मकार के लिये तान्त्रिक वामाचारियों का यह स्पष्ट मत है कि पूजा के लिये समानीत परा शक्ति में अधोलिखित गुणों की सत्ता और वह भी समष्टि रूप में अनिवार्य है। गुरुभक्ति, जपासक्ति, घृणा लज्जा आदि पशुपाश से विहीनता, कौल धर्म में दीक्षा, क्रोध मात्सर्य आदि से विरहितता, कामकलाभिज्ञता, सुन्दरता, रमणीयता, तरुणता, कटाक्षविक्षेपदक्षता, चञ्चलता, कामलोलुपता, मन्त्राराधनतत्परता, सर्वलक्षणसमवेतता इत्यादि इत्यादि। इन उपर्य्युक्त गुणों से विभूषित नायिकाष्टक वर्गीय किसी एक परा शक्ति के सङ्ग में सर्व साधनायें करनी चाहिये।

तरुणीं सुन्दरीं रम्यां चञ्चलां कामलोलुपाम्।
गुरुभक्तां मन्त्रयुक्तां सर्वलक्षणसंयुताम्।
कालीभक्तां जपासक्तां महाकामकुतूहलाम्।
दर्शनान्मोहिनीं साध्वीं कटाक्षादिप्रमोचनीम्।
नायिकाष्टतुल्ययुक्तां क्रोधमात्सर्यवर्जिताम्।
सर्वदोषविहीनाङ्गीं विकारपरिवर्जिताम्।

दीक्षितां देवताभक्तां घृणालज्जाविवर्जिताम्।
जपासक्तां समासाद्य सर्वं संसाधयेत् शिवे।

कुलाङ्गना—

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा च कुलसम्भवा।
वेश्या नापितकन्या च रजकी नटकी तथा।
विशेषवैदग्ध्ययुताः सर्वा एव कुलाङ्गनाः।
शक्तिसङ्गम तन्त्र।

इस पूर्व निर्दिष्ट वाममार्ग अथवा आनन्दमार्ग में भोगाभिलाषी अनधिकारी अनैतिक पुरुषों का इतना अधिक समावेश हो गया, कि संभ्रान्त एवं आचारनिष्ठ विद्वान् इसे सन्देहात्मक एवं घृणात्मक दृष्टि से देखने लगे, क्योंकि भोगात्मिका प्रवृत्ति की इतनी अधिक स्वच्छन्दता किसी भी धर्म में सम्भवित नहीं, इनके अविचारित अनाचार के प्रतिपादन से शाक्त धर्म इतना कलुषित हो गया कि सभ्य समाज में शाक्त मत के नाम लेने में भी लज्जा की अनुभूति होने लगी। तान्त्रिकों के इस कथन का भी लोगों पर प्रभाव न पड़ा कि वेद, शास्त्र, पुराण आदि निगम विद्यायें सामान्या वारविलासिनी के समान सर्वत्र अपने स्वरूप का प्रदर्शन किया करती हैं, परन्तु यह शाम्भवी विद्या असूर्यंपश्या कुलवधू के समान है जिसका दर्शन किसी भाग्यशाली को ही होता है। इसकी गोपनीयता मातृजार के समान अभीष्ट है।

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्या गणिका इव।
इयं तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव।
गोपायेन् मातृजारवत्।
तन्त्रशास्त्र।

तान्त्रिकों का मत है कि दिन के समय भगवती की उपासना वैदिकाचार से करनी चाहिये, और रात्रि के समय कुलाचार से,

क्योंकि इसके विना इसका रहस्य अप्रकाश्य नहीं रह सकता। इसके गोपन में सिद्धि है, और प्रकाशन में हानि। परन्तु योगी को दिन-रात यौगिक पद्धति से उपासना करनी चाहिये।

दिवाभागे यजेद् देवीं लोकाचारक्रमेण च।
लोकाचारं विना देवि गोपनं नैव जायते।
गोपनात् कार्यसिद्धिः स्यात् प्रकाशात् सिद्धिहा भवेत्।
भाव चूडामणि।

रात्रौ कुलक्रियां कुर्यात् दिवा कुर्याच्च वैदिकीम्।
दिवारात्रौ यजेद् देवीं योगी योगप्रभेदतः।
निरुत्तर तन्त्र।

इस अनियमित अनाचार के नियन्त्रण के लिये कुछ नियमों का निर्देश किया गया।

पूजन काल के अतिरिक्त नितम्बिनी से सम्भोग का फल है सप्त-जन्म तक दरिद्रता, एवं कोटि कल्प पर्यन्त नरक का वास। जो पुरुष पूजा के विना मैथुन क्रिया में प्रवृत्त होता है, उसे ब्रह्महत्या, सुरापान सुवर्णस्तेय एवं गुरुतल्पगमन के पातक लगते हैं। चाहे वह वीर हो चाहे दिव्य, परन्तु इस निर्देश की अवहेलना करने पर उसे अवश्य-मेव नरक जाना पड़ता है। विद्यार्णव का कथन तो यहाँ तक है कि अर्थ, काम अथवा आत्मसुख के लिये भी जो साधक सम्भोगनिरत होता है, वह रौरवगामी होता है। इसलिये नारी के विशेषतः शुभ कुलजा नारी के दर्शन स्पर्शन आदि के अनन्तर उसका सदा पूजन करे, परन्तु उसका उपभोग कभी न करे।

विना पूजां स्त्रियो योनौ संगमे साधकोत्तमः।
सप्तजन्म दरिद्रत्वं नरके कोटिकल्पशः।
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।

एतत्पापकृतो दोषो जायते नात्र संशयः।
वीरो वाप्यथवा दिव्यो न बुद्ध्वा नरकं व्रजेत्।
शक्तिसङ्गम तन्त्र।

अर्थाद् वा कामतो वापि सौख्यादपि च यो नरः।
लिङ्गयोनिरतो मन्त्री रौरवं नरकं व्रजेत्।
विद्यार्णव।

स्त्रियं गच्छन् स्पृशन् पश्यन् विशेषात् कुलजां शुभाम्।
नारीं सम्पूजयेन् नित्यम्, उपभोगं न कारयेत्।
शक्तिसङ्गम तन्त्र।

परन्तु इन वामाचारियों के चित्त पटल पर रौरव नरक बिभीषिका अपनी स्थिति न कर सकी, क्योंकि वाम के व्याज से उनके हृदय पटल पर तो क्षीणकटि पीनकुच गजगामिनी चन्द्रमुखी नितम्बिनियों ने अपना अधिकार जमा लिया था, वहाँ पर तो जप, तप एवं समाधि की चर्चा भी दुःखदायिनी प्रतीत होती थी।

द्विजराजमुखी मृगराजकटिर्गजराजविराजितमन्दगतिः।
यदि सा वनिता हृदये निहिता क्व जपः क्व तपः क्व समाधिरतिः।

इन पथपरिभ्रष्ट साधकों को सन्मार्ग में लाने के लिये जब तन्त्र-प्रयुक्त सभी उपाय विफल हो गए, तब आचार का आश्रय ग्रहण किया गया। कुलार्णव तन्त्र का कथन है कि कुलधर्मीय अभिषेकमन्त्र अथवा शास्त्रों के स्वाध्याय की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी सदाचार की। संस्कारविहीन होने पर, गुरुवाक्य के अतिक्रमण करने पर तथा सदाचार से विरहित होने पर कौलिक पतित हो जाता है। इस विषय पर अधिक कहना अनुपयुक्त है, इस पतन एवं उत्थान का रहस्य अप्रकट नहीं है। यह स्पष्ट रूप से उद्घोषित किया जा चुका है कि वर्णाश्रम धर्म के द्वारा विहित आचरण से ही सद्गति की प्राप्ति होती है।

नाभिषेको न मन्त्रो वा न शास्त्रपठनादिकम् ।
कारणं कुलधर्मस्य सदाचारः कुलेश्वरि ।
संस्कारेण विहीनत्वात् गुरुवाक्यस्य लङ्घनात् ।
आचारवर्जनाद् देवि कौलिकः पतितो भवेत् ।
बहुनात्र किमुक्तेन रहस्यं शृणु पार्वति ।
वर्णाश्रमाणां सर्वेषाम् आचारः सद्गतिप्रदः ।
कुलार्णव तन्त्र ।

त्रिकालज्ञता एवं त्रैलोक्यनियामकता के अधिगम होने पर भी साधक को चाहिये कि वह मन से भी लौकिकाचार के परित्याग का विचार न करे ।

यद्यप्यस्ति त्रिकालज्ञः त्रैलोक्याकर्षणक्षमः ।
तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लङ्घयेत् ।
शक्तिसङ्गम तन्त्र ।

शक्तिसङ्गम के मत से परान्न, परद्रव्य, प्रतिग्रह, परस्त्री एवं परनिन्दा, ये पकारपञ्चक सिद्धि के बाधक हैं, अतः इनको मन में कभी भी न आने दे । यदि परान्न से जिह्वा दग्ध हो जाती है, यदि प्रतिग्रह से कर दग्ध हो जाते हैं और परस्त्री से मन दग्ध हो जाता है, तो सिद्धि की उपलब्धि किस प्रकार हो सकती है ।

परान्नं च परद्रव्यं तथैव तु परिग्रहम् ।
परस्त्रीं परनिन्दां च मनसाऽपि विवर्जयेत् ।
जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने ।
शक्तिसङ्गम तन्त्र ।

परन्तु वामाचारियों के मत से वाम मार्ग में सिद्धि उतनी सुगम नहीं, जितनी अन्य मतों में समझी जाती है । समाजनिन्दा, पुत्र कलत्रादि कर्तृक परित्याग, जनपरिहास, राजकीय दण्ड, लक्ष्मीनिर्गम

आदि विपत्तियों की सत्ता में भी जो वाम मार्ग का परित्याग नहीं करता, जिसकी इस मार्ग पर अटल श्रद्धा बनी रहती है, वही इसमें सिद्धि पा सकता है, वही इस मार्ग का पथिक बन सकता है। इस दुर्गम मार्ग के लिये इतना कहना ही पर्याप्त है कि—

'यह वाम को पंथ कराल महा तलवार की धार पै धावनो है।'

निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु स्त्री सुतादयः।
जना हसन्तु वा दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा।
लक्ष्मीस्तिष्ठतु वा यातु न मुञ्चामि पथं त्विदम्।
एवं यस्य दृढा भक्तिः स वामे सिद्धिमाप्नुयात्।
मेरु तन्त्र।

कृपाणधारागमनाद् व्याघ्रकण्ठावलम्बनात्।
भुजङ्गधारणान्नूनम् अशक्यं कुलवर्त्मनम्।
कुलार्णव तन्त्र।

इस स्पष्ट घोषणा के अनन्तर कामोपासक अन्तः शाक्त महाशयों का प्रातः कालिक तारकमण्डली के समान तिरोधान हो गया। शाक्त धर्म के नाम पर अनाचार अवरुद्ध हो गया। कामुक कुलकामिनियों के द्वारा सञ्चालित आनन्द मार्ग की वह अनादरमयी दुर्गति हुई कि प्रच्छन्नता देवी के आश्रय में भी इसका अभाव-सा हो गया। पर अवधूत कौलिकों ने इसको पुनरुज्जीवित कर दिया। इस स्थल पर इन सिद्धिसम्पन्न पाशविमुक्त अवधूत कौलिकों के आचार विचार की चर्चा चलाना अनुपयुक्त न होगा।

इन अवधूत कापालिकों की धारणा है कि धर्माधर्म के परिज्ञान हो जाने पर सभी वस्तुएं पवित्र हो जाती हैं। विष्ठा, मूत्र, स्त्रीरज, नख तथा अस्थि—ये सब वस्तुएं इनके विचार से पवित्र हैं। पाश के विगलित हो जाने से कर्म, अकर्म, विकर्म, धर्म, अधर्म आदि की परिधि से ये वहिर्भूत हो जाते हैं। मद्यपान, मातङ्गीविहार, उसकी

योनि का दर्शन चुम्बन एवं अवलेहन आदि घृणित कृत्यों के सम्पादन करने पर भी ये निर्विकल्प रह कर जप किया करते हैं। ये अपने गले में मुण्डमाला धारण करते हैं, और अपने पाणिपङ्कज में कपाल, जिसका उपयोग ये पात्र के रूप में करते हैं। इनकी जपमाला नृदन्त-सम्भूत है जिसका मेरु राजदन्त है। मृदु, कोमल, चूडक अथवा अचूडक शव पर, अथवा योनित्वक्, कामरूप, सुरत, सिन्दूर, पर्वत आदि पर आसन जमा कर तथा कामिनियों के केश कलापों से निर्मित कङ्कण को धारण कर ये नृदन्तसम्भूत माला से जप करते हैं। ये पञ्च मकार का--मद्य, मांस, बाल मीन, मुद्रा एवं परकान्ता के साथ मैथुन का सेवन करते हैं, एवं पाशविमुक्त होने के कारण सम्पूर्ण वर्णों के साथ समानता का व्यवहार करते हैं।

वामाचारं प्रवक्ष्यामि कालिकासाधनं परम्।
यं विधाय कलौ शीघ्रं मान्त्रिकः सिद्धिभाग् भवेत्।
रुद्रयामल।

धर्माधर्मपरिज्ञानात् सकलेऽपि पवित्रता।
विण्मूत्रं स्त्रीरजो वापि नखास्थि सकलं प्रिये।
विचारयेन्मन्त्रवित्तु पवित्राण्येव सुव्रते।
ज्ञानार्णव तन्त्र।

......निर्विकल्पः सदा भवेत्।

सद्यो मद्यं पिवेद् देवि मातङ्गीभिर्विहारवान्।
योनिं चुम्बन् लिहन् पश्यन् जपं कुर्यादनन्यधीः।
दन्ताक्षमालया देवि राजदन्तेन मेरुणा।
मुण्डमाला गले धार्या कपालं पाणिसङ्गतम्।
पुरश्चर्यार्णव।

माला नृदन्तसम्भूता पात्रं तु नरमुण्डकम्।
आसनं सिद्धचर्मादि कङ्कणं स्त्रीकचोद्भवम्।

द्रव्यमासवतत्त्वाढ्यं भक्ष्यं मांसादिकं प्रिये।
चर्वणं बालमत्स्यादि मुद्रा वीणारवः कथा।
मैथुनं परकान्ताभिः सर्ववर्णसमानता।
वामाचार इति प्रोक्तः सर्वसिद्धिप्रदः शिवे।
रुद्रयामल तन्त्र।

आसनम्—

मृदु कोमलकं देवि चूडकं वाप्यचूडकम्।
शवं वीरासनं कृत्वा योनिस्त्वगासनं च वा।
कामरूपासनं देवि सुरतासनमेव च।
सिन्दूरासनकं देवि पर्वतासनमेव च।

मृदु, अचूडक, कोमल—

अर्वाक् षण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः।
चूडोपनयनैर्हीनमेतच्चाचूडकं विदुः।
निवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः शिवे।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः।

राजदन्त—

सम्मुखं यौ उभौ दन्तौ राजदन्तौ प्रकीर्तितौ।
करालास्यमहाकाल्या दानवा भक्षिताः पुरा।
त्रैलोक्यग्रासिनौ दन्तौ राजदन्ताविति स्मृतौ।
राजदन्तेति संज्ञा वै देव्या पूर्वं कृता प्रिये।
यौ दैत्यचर्वकौ दन्तौ मम कार्यकरावुभौ।
तस्मात् प्रीतेन मनसा मेरुकार्ये नियोजितौ।
शक्तिसङ्गम तन्त्र।

इस मकारपञ्चक के सेवन से साधन को केवल अनेक अलौकिक सिद्धियों की ही उपलब्धि नहीं होती, पर मोक्षलक्ष्मी के दर्शन का

आभास भी मिलने लगता है। मद्यपान से ऐश्वर्यमयी परम प्रसन्नता का, मांस भक्षण से नारायणता का, मत्स्यभोजन से कालीप्रत्यक्षता का, मुद्रा सेवन से संसार-समर्चित विष्णुरूपता का, और मैथुनानन्द से महायोगी शङ्करसमानता का अधिगम करने लगता है।

मद्यं मासं तथा मत्स्यं मुद्रा च मैथुनं प्रिये।
पञ्च तत्त्वमिदं प्रोक्तं निर्वाणप्रथमाङ्कुरम्।
ऐश्वर्यं परमं हृष्टं मद्यपानेन शैलजे।
मांसभक्षणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्।
मत्स्यभोजनमात्रेण कालीप्रत्यक्षता भवेत्।
मुद्रासेवनमात्रेण भूपूज्यो विष्णुरूपधृक्।
मैथुनेन महायोगी मम तुल्यो न संशयः।
निर्वाण तन्त्र।

कुलरहस्यकार का मत है कि मद्य से ऐश्वर्य की उपलब्धि होती है, और मैथुन से मुक्ति की।

ऐश्वर्यदायकं मद्यं मैथुनं मुक्तिदायकम्।
कुलरहस्य।

निगमकल्पद्रुम का कथन है कि साधक प्रथम मकार से भैरव, द्वितीय मकार से महाभैरव, तृतीय मकार से शिव, चतुर्थ मकार से रुद्र और पञ्चम मकार से भगवान् शङ्कर बन जाता है।

केवलेनाद्ययोगेन साधको भैरवो भवेत्।
द्वितीयेन च तत्त्वेन महाभैरवतां व्रजेत्।
तृतीयेन च तत्त्वेन साधकः शिवरूपधृक्।
चतुर्थेन च तत्त्वेन रुद्ररूपधरः स्वयम्।
परेण परतां याति तव तुल्यो न संशयः।
निगमकल्पद्रुम।

यह वामाचार पांच भागों में विभक्त है (१) कौलिक (२) वाम (३) चीनक्रम (४) सिद्धान्त (५) शावर।

कौलिकोऽङ्गुष्ठतां प्राप्तो वामः स्यात् तर्जनीसमः।
चीनक्रमो मध्यमः स्यात् सिद्धान्तो योऽवरो भवेत्।
कनिष्ठः शावरो मार्ग इति वामस्तु पञ्चधा।

कतिपय आचार्यों के मत से यह पञ्च क्रम में विभक्त है (१) महानील क्रम (२) निष्कल नील क्रम (३) गन्धर्व क्रम (४) सौभाग्य क्रम (५) ब्रह्ममार्ग क्रम। इन में से अन्तिम तीन साधन उच्चकोटिक वीर साधक के लिये हैं।

यह वामाचार का संक्षिप्त विवरण है, जिसकी स्थल-स्थल पर हमने कटु आलोचना की है। आचार के विषय में वामाचारियों की उपर्युक्त एवं अधोलिखित घोषणाओं से अनैतिकता, सामाजिक उच्छृङ्खलता एवं आचारहीनता का प्रचार अवश्यम्भावी है।

वीरसाधनकं कर्म शिवापूजा बलिस्तथा।
सिन्दूरतिलको देवि वेश्यालापो निरन्तरम्।
वेश्यागृहे निशाचारो रात्रौ पर्यटनं तथा।
शक्तिपूजा योनिदृष्टिः खड्गहस्तो दिगम्बरः।
मुक्तकेशो वीरवेशः कुलमूर्तिधरो नरः।
कालीभक्तो भवेद् देवि नान्यथा क्षोभमाप्नुयात्।
पूजनपद्धति।

विवेकशील साधकों का मत है कि यदि केवल मद्यपान से सिद्धि का अधिगम हो जाता, तो सभी नीच मद्यपों को आज सिद्धियाँ मिल गई होतीं, यदि केवल मांस भक्षण से किसी ने पुण्यार्जन किया होता, तो आज सभी मांसाशी पुण्यात्मा बन गए होते, और यदि केवल शक्तिसम्भोग से कोई मोक्ष मार्ग का पथिक बना होता, तो आज

सभी विषयी कामुक मुक्त हो गए होते। अतः यह सिद्ध है कि केवल मद्य मांस और मैथुन से सिद्धियाँ नहीं मिलतीं।

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु पामराः।
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि।
शक्तिसम्भोगमात्रेण यदि मोक्षो भवेत वै।
सर्वेऽपि जन्तवो लोके मुक्ताः स्युः स्त्रीनिषेवणात्।
कुलार्णव तन्त्र।

आनन्दमय प्रवृत्तिपथ का अनुप्राणक यह वाममार्ग निवृत्तिमार्ग का पोषक है। इस कलि युग में आचारवाद की चर्चा परिहासजनक है। अनाचार से संपृक्त नैतिकता के उपदेशक मुग्ध जनता पर अपना क्या प्रभाव डाल सकते हैं—यह किसी से तिरोहित नहीं। इस समय तो पिता का पुत्री से, ससुर का पतोहू से, चाचा फूफा आदि का भतीजी से, गुरु का शिष्या से, अध्यापक का विद्यार्थिनी से, भाई का बहन से, जेठ का अनुजवधू से, देवर का भौजाई से, जीजा का साली से, ननदोई का सरहज से, मित्र का सुहृत्सहधर्मिणी से, पुत्र का विमाता से, भतीजे का चाची, बुआ, मामी आदि से, जामाता का सास से, एवं सहवासी का सहवासिनी से अनुचित संम्बन्ध के संवाद समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ करते हैं, एवं जनश्रुतियों के द्वारा सुने और देखे भी जाते हैं। अनैतिकता का यह व्यापार प्रच्छन्न रूप से सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। इसके नियन्त्रण के उपाय उपदेश नहीं हैं, क्योंकि प्रतिरोध से आत्मा में विद्रोह की भावना जागृत हो उठती है। पुराणों में वर्णित ऋषि भी जब इससे असंपृक्त न रह सके, तो वर्तमान कालिक पुरुषों को संयम का उपदेश असंगत है, अतः शाक्ताचार्यों ने इसमें एक चक्रस्तम्भक (Brake) लगा दिया है कि समर्चन समय के अतिरिक्त पञ्च मकार का उपयोग न करो। उनका कथन

है कि हम आपके इस कार्य के प्रतिरोधक नहीं, परन्तु पञ्च मकार के सेवन के समय भगवती का ध्यान कीजिये, जप कीजिये। इससे इन विषय वासनाओं से आपकी विरति हो जायगी, आप दिव्य मार्ग के पथिक हो जायेंगे, अथवा वासनाओं की पूर्ण तृप्ति के अभाव में आप दक्षिणाचारी बन जायेंगे।

इससे स्पष्ट है कि पीयूषपाणि वैद्य के समान ये शाक्ताचार्य पथ्य अपथ्य पर विशेष बल न देकर ओषधि सेवन के लिये आग्रह करते हैं, और विश्वास दिलाते हैं कि इससे भवरोग की निवृत्ति हो जायगी।

(२) पशु भाव अथवा दक्षिणाचार—

अधिकतर वीर तान्त्रिकों का मत है कि दक्षिणाचार आद्य भाव है, प्रारम्भिक अवस्था में इसका पालन इस लिये और भी आवश्यक है कि इससे सदाचार के प्रति साधक जागरूक रहता है। इस मार्ग का अनुयायी प्रातः काल स्नान, सन्ध्यावन्दन आदि श्रौत स्मार्त कृत्यों का सम्पादन करता है, मध्याह्न के समय यह जप करता है, क्योंकि कौलमत प्रतिपादक तन्त्रों ने रात्रिजपाधिकार अपने ही अनुयायियों को दे रक्खा है, परन्तु उनके इस एकाधिकार का प्रत्याख्यान अनेक स्थल पर मिलता है, अतः दक्षिणाचारदीक्षित साधक रात्रि में भी जप कर सकता है। महाकाल महाराज ने पशु पद से दक्षिणाचार का सङ्केत किया है। अत एव साधक व्याघ्रचर्म, मृगचर्म, और्णासन, चित्रासन, वेत्रासन, पर्यङ्कासन आदि किसी आसन पर आसन जमा कर जप करता है। इसकी जपमाला रुद्राक्ष माला अथवा स्पटिक माला है। इसका भोजन है रवड़ी मलाई खीर इत्यादि और इसकी शक्ति है प्रेयसी स्वकीया और इसका मादक द्रव्य है विजया।

प्रभाते स्नानसन्ध्यादि मध्याह्ने जप ईश्वरि।
और्णासनमात्मार्थं भक्ष्यं पायसशर्करम्।
माला रुद्राक्षसम्भूता पात्रं पाषाणसम्भवम्।
भोगः स्वकीयकान्ताभिः दक्षिणाचार इत्ययम्।

यदि साधक कामनाओं से विरहित हो कर एवं सम्पूर्ण धर्मों का परित्याग कर अपने इष्ट में, भगवती दक्षिण कालिका में भक्ति रखता है तो वह दक्षिणाचारी कहलाता है, और उसका आचार दक्षिणाचार कहलाता है। जिस जिस वर्ण का जो-जो आचार वेद से प्रतिपादित है, उनका पालन करना उसका धर्म है। अतः अपने अपने धर्म में निरत रह कर जो साधक पञ्च तत्त्वों के अनुकल्प से पूजन करता है, शिवस्वरूप हो कर पराशक्ति की उपासना करता है, वह दक्षिणाचारी कहलाता है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य इष्टभक्तिश्च जायते।
स एव दक्षिणाचारः कामसंकल्पवर्जितः।
सर्वोल्लास तन्त्र।

यस्य यस्य च वर्णस्य यदाचारं महेश्वरि।
स्वधर्मं तद् विजानीयात् श्रुत्युक्तं परिकीर्तितम्।
भैरव तन्त्र।

स्वधर्मनिरतो भूत्वा पञ्चतत्त्वैः प्रपूजयेत्।
स एव दक्षिणाचारः शिवो भूत्वा यजेत् पराम्।
समयाचार तन्त्र।

इस सर्वसत्कृत दक्षिणाचार का विरोध वाम तन्त्रों में यत्र तत्र उपलब्ध होता है। निरुत्तर तन्त्र का कथन है कि दिव्य भाव अथवा वीर भाव के विना काली का पूजन न करना चाहिये। यदि कोई इस निर्देश का उल्लङ्घन कर पूजन करता है, तो वह नरकगामी होता है और सदैव दुःखी रहता है। यदि पश्वाचारी भगवती कालिका का पूजन करता है, तो वह प्रलयपर्यन्त रौरव नरक में निवास करता है। अत एव स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय एवं क्रियानिष्पत्ति स्वरूप अष्टविध मैथुन से, तथा तद्विषयिणी कथा एवं गोष्ठी से उसे दूर रहना चाहिये।

दिव्यभावं वीरभावं विना देवीं प्रपूजयेत् ।
पूजने नरकं याति तस्य दुःखं पदे पदे ।
पशुभावरतो देवि यदि कालीं प्रपूजयेत् ।
रौरवं नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत् ।

निरुत्तर तन्त्र ।

कुब्जिका तन्त्र एवं नित्य तन्त्र ने तो यहाँ तक कहा है कि पशुभाव निरत होने पर साधक पशुरूपी ही होता है, अत एव रात्रि के समय मन्त्र जाप के लिये उसे माला का कभी भी स्पर्श न करना चाहिये । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रात्रि में सन्ध्या में एवं अपराह्न में पशु साधक को श्री भगवती का पूजन न करना चाहिये ।

पशुभावरता ये च केवलं पशुरूपिणः ।
रात्रौ मन्त्रं च मालां च न स्पृशेत्तु कदाचन ।

कुब्जिका तन्त्र ।

रात्रौ नैव यजेद् देवीं सन्ध्यायां वा पराह्णके ।

नित्य तन्त्र ।

परन्तु उपर्य्युक्त कथन की निःसारता प्रकट करने के लिए 'पशु' पद ही पर्य्याप्त है । 'न खलु पशुरोषः समुचितः' इस पद्यांश से पशुभाव के द्वारा श्री भगवती की आराधना अभिव्यञ्जित होती है । पिच्छिला तन्त्र का कथन है कि पशु साधक अनुकल्प से देवी का पूजन करे अनुकल्प से तन्त्र मार्ग के अनुसार देवी की आराधना करे ।

अथवा चानुकल्पैर्वा पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
अनुकल्पैर्यजेद् देवीं तन्त्रमार्गानुसारतः ।

पिच्छिला तन्त्र ।

(१) मद्य के अनुकल्प—

कांस्य पात्र में स्थित नारियल का जल, गुड संमिश्रित तक्र, गुड संमिश्रित अदरख, और पायस—ये सब चतुर्वर्ग फलप्रद मद्य के अनुकल्प हैं। दूध, ताम्बूल, ताम्रकूट, त्वरिता, ताडिता, अफीम, ताड़ी धतूरा और विजया—ये आठ आनन्ददायक सुरा के अनुकल्प हैं।

नारिकेलोदकं कांस्ये तक्रं गुडसमन्वितम्।
आर्द्रकं गुडसंयुक्तं सिद्धान्नं दग्धदुग्धकम्।
मद्यानुकल्पं परमे चतुर्वर्गफलप्रदम्।
पिच्छिला तन्त्र।

तदभावेऽपि गोक्षीरं द्विजो दद्याद् युगे युगे।
ताम्बूलं ताम्रकूटं च त्वरिता ताडिता तथा।
अहिफेनः खर्जुरसः धत्तूरं सम्बिदा तथा।
एते चाष्टौ सुराः प्रोक्ताः साधकानन्ददायिकाः।
निरुत्तर तन्त्र।

गोक्षीरं वह्निना पाच्यं खर्जूरस्य रसं प्रिये।
गुडं तस्य मद्यतुल्यं ताम्बूलं चूर्णसंयुतम्।
व्यञ्जनं लवणैर्युक्तम् आमान्नं घृतसंयुतम्।
खर्जूरस्य रसं चैव शर्करं गव्यसंयुतम्।
महिषोद्भवं मद्यतुल्यं विभावस्य मतं पशोः।
भाव चूडामणि।

(२) मांस के अनुकल्प—

नमकीन अरदख की पिन्नी, तिल, आँटा, उड़द और लहसुन—ये सब मांस के अनुकल्प माने गए हैं। पशुभेद से मांस के अनुकल्प 'सलोमास्थि स्वैरं पलल०' इस श्लोक की व्याख्या में लिखे गए हैं।

लवणार्द्रकपिन्नाकस्तिलगोधूममाषकाः ।
लशुनं च महेशानि मांसप्रतिनिधिः स्मृतः ।
निरुत्तर तन्त्र ।

गोधूमं लोहितं चार्द्रं तिलं श्वेतं महेश्वरि ।
शरत्पक्वं व्रीहिणं च लोहितं व्रीहिणं शिवे ।
कूष्माण्डं मांसवज्ज्ञेयं विभावस्य मतं पशोः ।
भाव चूड़ामणि ।

(३) मीन के अनुकल्प—

नारियल, बेल, आँवला और हर्रे—ये जलाने पर मत्स्य के अनुकल्प कहे गए हैं ।

नारिकेलं श्रीफलं च धात्रीफलहरीतकीम् ।
दग्धं चेत् परमेशानि पशोर्मत्स्यं हि कल्पनम् ।
भाव चूडामणि ।

(४) मुद्रा के अनुकल्प—

लवण और जल के विना भुने हुए चावल या चने मुद्रा के अनुकल्प हैं ।

विना लवणतोयाभ्यां भर्जितं व्रीहिणं शिवे ।
मुद्रानुकल्पं परमे विभावस्य मतं पशोः ।
भाव चूडामणि ।

मुद्राभावेऽपि चणकं भर्जितं परमेश्वरि ।
निरुत्तर तन्त्र ।

ग्रन्थान्तरों में मुद्रा का एक विभिन्न ही स्वरूप प्रदर्शित किया गया है । अङ्गुली आदि के सन्निवेश से यदि देवविशेष प्रमुदित किया जाता है, तो उसे मुद्रा कहते हैं । इसका फल है इष्ट देवता की प्रसन्नता, पाप का द्रावण (नाश) तथा सर्व अभिलषित पदार्थों की उपलब्धि । मुद्रा की निरुक्ति इस प्रकार की गई है । मुदं हर्षं राति ददाति इति मुद्रा, अर्थात् जिससे हर्ष की उपलब्धि हो ।

योजनात् सर्वदेवानां द्रावणात् पापसंहतेः।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी।
तन्त्रसार।

तन्त्रसार में इनकी संख्या २४ कही गई है और स्वच्छन्द तन्त्र में १८। जपान्त में विधीयमान ८ और मुद्राओं का भी उल्लेख है।

तन्त्रसार के अनुसार—

सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकाञ्जलिक, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, प्रलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वाराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव।

स्वच्छन्द तन्त्र के अनुसार—

कपाल, खट्वाङ्ग, खड्ग, स्फर, अङ्कुश, पाश, नाराच, पिनाक, अभय, वर, घण्टा, त्रिशूल, दण्ड, वज्र, डमरु, मुद्गर, वीणा, परशु।

जपान्त में विधीयमान ८ मुद्रायें—

सुरभि, ज्ञान, वैराग्य, योनि,
शङ्ख, पङ्कज, लिङ्ग, निर्वाण।

इन उपर्युक्त मुद्राओं के लक्षण—

(१) सम्मुख—

सम्मुखं संहतौ हस्तौ उत्तानाकुञ्चिताङ्गुली।

(२) सम्पुट—

सम्पुटं पद्मकोशाभौ करौ अन्योन्यसंहतौ।

(३) वितत—

विततं संहतौ हस्तौ उत्तानौ आयताङ्गुली।

(४) विस्तीर्ण—

विस्तीर्णं संहतौ पाणी मिथो मुक्ताङ्गुलिद्वयौ ।

(५) द्विमुख—

कनिष्ठानामिकायुक्तौ हस्तौ द्वौ द्विमुखं भवेत् ।

(६) त्रिमुख—

तदेव मध्यमायुक्तं त्रिमुखं परिकीर्तितम् ।

(७) चतुर्मुख—

तदेव तर्जनीयुक्तं चतुर्मुखमुदीरितम् ।

(८) पञ्चमुख—

तदेव स्यात् पञ्चमुखं मिलिताङ्गुष्ठकं यदि ।

(९) षण्मुख—

तिर्यक्संयुज्यमानाग्रौ संयुक्ताङ्गुलिमण्डलौ ।
हस्तौ षण्मुखमित्युक्ता मुद्रा मुद्राविशारदैः ।

(१०) अधोमुख—

आकुञ्चिताग्रौ संयुक्तौ न्युब्जौ हस्तौ अधोमुखम् ।

(११) व्यापकाञ्जलिक—

उत्तानौ तादृशौ एव व्यापकाकुञ्चितौ करौ ।

(१२) शकट—

अधोमुखौ बद्धमुष्टी मुक्ताग्राङ्गुष्ठकौ करौ ।
शकटं नाम कथितम् ।

(१३) यमपाश—

यमपाशमतः परम् ।
बद्धमुष्टिकयोः पाण्योरुत्ताना वामतर्जनी ।
कुञ्चिताग्रान्यया मुक्ता तर्जन्या न्युब्जवक्त्रया ।

(१४) ग्रथित—

उत्तानसन्धिसंलीढबद्धाङ्गुलिदलौ करौ।
सम्मुखौ घटितौ दीर्घाङ्गुष्ठौ ग्रथितमुच्यते।

(१५) सम्मुखोन्मुख—

सन्धितोर्ध्वाङ्गुलिर्वामस्तादृशो दक्षिणेन तु।
अधोमुखेन संयुक्तः सम्मुखोन्मुखमुच्यते।

(१६) प्रलम्ब—

उत्तानोन्नतकोटी च प्रलम्बः कथितौ करौ।

(१७) मुष्टिक—

मुष्टी चान्योन्यसंयुक्तौ उत्तानौ मुष्टिको भवेत्।

(१८) मत्स्य—

मत्स्यस्तु सम्मुखीभूतौ युक्तानामिकनिष्ठकौ।
ऊर्ध्वसंयुक्तवक्त्राग्राशेषाङ्गुलिदलौ करौ।

(१९) कूर्म—

अधोमुखः करो वामस्तादृशा दक्षिणेन तु।
पृष्ठदेशे समाक्रान्तः कूर्मो नामाभिधीयते।

(२०) वाराह—

ऊर्ध्वमध्ये वामभुजः कक्षाभ्यामाश्रयेत् करे।
वाराहः कथ्यते।

(२१) सिंहाक्रान्त—

कक्षसमीपाश्रयके करे।

सिंहाक्रान्तं समाख्यातम्।

(२२) महाक्रान्त—

कर्णार्पितकरौ उभौ।
किञ्चिदाकुञ्चिताग्रौ च महाक्रान्तं ततः परम्।

(२३) मुद्गर—

ऊर्ध्वं किञ्चिद्गतौ पाणी मुद्गरो नाम तर्जनी ।
ग्रस्ता दक्षिणहस्तेनेत्याहुर्मुद्राविशारदाः ।

(२४) पल्लव—

अधोमुखः स्थितो मूर्ध्नि पल्लवो दक्षिणः करः ।
तन्त्रसार ।

स्वच्छन्द तन्त्र के अनुसार—

(१) कपाल—

उत्तानम् अञ्जलिं कृत्वा कपालं परिकीर्तितम् ।

(२) खट्वाङ्ग—

तिर्यक्कृत्वा करं वामं कनिष्ठाद्यङ्गुलित्रयम् ।
अङ्गुष्ठेनाक्रमेद् देवि ऋज्वीं कृत्वा प्रदेशिनीम् ।
पराङ्मुखं करं कृत्वा स्कन्धदेशे न्यवेशयेत् ।
खट्वाङ्गं कीर्तितं ह्येतत् ।

(३) खड्ग—

खड्गमुद्रां निबोध मे ।
अङ्गुष्ठेनाक्रमेद् देवि सकनिष्ठामनामिकाम् ।
मध्यमां तर्जनीं चोर्ध्वं खड्गमुद्रा प्रकीर्तिता ।

(४) स्फर—

मुष्टिं बध्वा कनिष्ठां च प्रसार्येत वरानने ।
आत्मनः सम्मुखं कृत्वा स्फरस्ते कथितो मया ।

(५) अङ्कुश—

मुष्टिं बध्वा तु देवेशि तर्जन्यूर्ध्वं तु कुञ्चयेत् ।
अङ्कुशः कथितो ह्येषः ।

(६) पाश—

पाशमुद्रां निबोध मे ।
तर्जनीं वर्तुलां कृत्वा मूले ऽङ्गुष्ठस्य योजयेत् ।
पाशस्तु कथितो ह्येष दुष्टजालनिबन्धकः ।

(७) नाराच—

मुष्टिं बध्वा वरारोहे सम्प्रसार्य प्रदेशिनीम् ।
नाराचस्तु समाख्यातः समासात्तव भैरवि ।

(८) पिनाक—

मुष्टिं बध्वा प्रसार्येत तर्जन्यङ्गुष्ठकं प्रिये ।
अग्रे निकुञ्चयेत् किञ्चित् पिनाकं परिकीर्तितम् ।

(९) अभय—

अग्रप्रसारितो हस्तः श्लिष्टशाखो वरानने ।
पराङ्मुखं तु तं कृत्वा त्वभयः परिकीर्तितः ।

(१०) वर—

वामं भुजं प्रसार्यैव जानूपरि निवेशयेत् ।
प्रसृतं दर्शयेद् देवि वरः सर्वार्थसाधकः ।

(११) घण्टा—

घण्टाकारं करं वामं कृत्वा चैव त्वधोमुखम् ।
दक्षहस्तस्य तर्जन्या घृषेद् घण्टा प्रकीर्तिता ।

(१२) त्रिशूल—

कनिष्ठिकां समाक्रामेद् अङ्गुष्ठेन समाहितः ।
प्रसार्य चाङ्गुलीस्तिस्रः त्रिशूलं परिकीर्तितम् ।

(१३) दण्ड—

दण्डो वै मुष्टिबन्धेन ।

(१४) वज्र—

वज्रमुद्रां निबोध मे ।
वामहस्तमधः कृत्वा उत्तानं तु समाहितः ।
दक्षं चाधोमुखं कृत्वा त्वङ्गुष्ठं च कनिष्ठिकाम् ।
उभयोरपि सङ्घृष्य वज्रमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

(१५) डमरु—

डमरुं मुष्टिबन्धेन दक्षहस्तस्य सुव्रते ।
सुषिरेण समायुक्तं दर्शयेत्तु वरानने ।

(१६) मुद्गर—

मुद्गरं तु प्रवक्ष्यामि हस्तौ द्वौ सम्प्रसारयेत् ।
मुद्गरः कथितो ह्येषः ।

(करौ ऊर्ध्वमुखौ कार्यौ अन्योन्यान्तरिताङ्गुली ।
अनामे मध्यपृष्ठस्थे तर्जन्यौ मूलपर्वतः ।
मध्ये द्वे तु युते कार्ये कनिष्ठे परुषावधि ।
तर्जन्यौ मध्यपार्श्वस्थे विरले परिकल्पिते ।
मुद्गरः त्रिशिखो ह्येष क्षणादेवोपकारकः ।
श्रीपूर्वशास्त्र ।)

(१७) वीणा—

वल्लकीं च निबोध मे ।
हस्तौ प्रसारयेद् देवि उत्तानौ तु समाहितः ।
अनामे कुञ्चयित्वा तु वीणा मुद्रा प्रकीर्तिता ।

(१८) परशु—

प्रसारयेद् अङ्गुलीस्तु कनिष्ठानाममध्यमाः ।
अङ्गुष्ठेनाक्रमेद् आद्यां परशुः समुदाहृतः ।
स्वच्छन्द तन्त्र ।

(५) मैथुन का अनुकल्प—

पशुभाव से आराधक के लिये मैथुन के स्थान पर चिन्तन का निर्देश किया गया है। साधक सहस्रार महापद्म में शिवशक्ति के अविनाभाव का चिन्तन करै, और तद्गलित अमृत से परा अम्बा की उपासना करै।

पशूनां मैथुनं नास्ति चिन्तनं परिकल्पितम्।
सहस्रारे महापद्मे शिवशक्तिसमन्वितम्।
तेनामृतेन परमे तर्पयेत् परदेवताम्।
भाव चूडामणि।

अनेक तान्त्रिकों का मत है कि पशुभावनिरत साधक मद्य के स्थान पर विजया का, मांस मीन मुद्रा के स्थान पर दूध, दही, खीर, पूड़ी, कचौड़ी, मलाई, रबड़ी, आलू, कटहल, तरोई आदि का और गणिका एवं परकीया के स्थान पर प्रेयसी स्वकीया का सेवन कर श्री भगवती दक्षिणकालिका की समाराधना करै।

मातृकाभेद तन्त्र का सिद्धान्त है कि विजया का पान कर ध्यान करने से आराध्य देवता का साक्षात्कार होता है। इसके सेवन से सांसारिक एवं पारलौकिक सिद्धियों का अधिगम होता है। मन्त्र सिद्धि, पूजा सिद्धि, जप सिद्धि एवं ज्ञान सिद्धि के साथ ही साथ मोक्ष सिद्धि की भी उपलब्धि होती है। अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इसके सेवन से संसार में क्या-क्या नहीं उपलब्ध होता।

विजयाग्रहणं कृत्वा ध्यानं यः कुरुते नरः।
तदा ध्यानमयी मूर्तिः प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम्।
मातृकाभेद तन्त्र।

सेवनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले।
मन्त्रसिद्धिस्तथा पूजाजपसिद्धी वरानने।

ज्ञानसिद्धिर्महेशानि सेवनान्मोक्षमाप्नुयात् ।
सत्यं सत्यं महेशानि सत्यमेव न संशयः ।
आनन्द पटल ।

मातृकाभेद तन्त्रकार ने विजया पान का एक मन्त्र भी दिया है । वह मन्त्र है—

'ॐ भङ्गे भङ्गे महाभङ्गे महाभङ्गे भैरवाणां स्तम्भय स्तम्भय
वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरीभव सर्वशत्रुवशङ्करी स्वाहा' ।

अन्त में इन तन्त्रकारों ने यह उद्घोषित कर दिया कि मदिरा से विजया सर्वतोभाव से श्रेष्ठ है ।

[1]विजयासवयोर्मध्ये विजयैव गरीयसी ।

यहाँ पर तान्त्रिकों की विजयानिर्माणपद्धति एवं उसकी महिमा दर्शनीय है ।

दुग्धाम्बुघृतमाध्वीकसैन्धवैर्लवणेन वा ।
सितयाथ गुडेनापि पक्वैः कदलिकैरपि ।
अमूल्यं मधुरं द्रव्यं पक्वाम्रं पनसादिकम् ।
तेन सर्वेण विजयां स्वीकुर्यात् साधकोत्तमः ।

दुग्धयोगेन विजया केवलानन्ददायिनी ।
महातेजस्करी चक्षुर्दोषादिकविनाशिनी ।
सा पुनर्जलयोगेन सर्वाजीर्णविनाशिनी ।
घृतेन मधुना धत्ते वाग्देवीवशकारिणी ।

प्रतिभामुत्तमां धत्ते धिषणां चातिनिर्मलाम् ।
पित्तदोषान् श्लेष्मदोषान् मधुना सह नाशयेत् ।
सैन्धवेन महावह्निप्रदा स्याल्लवणेन च ।
सितयाथ गुडेनैव शूलघ्नी पित्तनाशिनी ।

---

१ संविदासवयोर्मध्ये संविदैव गरीयसी ।

अतीसारापशमनी श्वासकाशप्रमर्दिनी ।
आमवातसमुद्भूतग्रहणीविनिवारिणी ।
सर्वैः सुमधुरैर्युक्ता सर्वामयविनाशिनी ।
बलपुष्टिप्रदा चैव मधुरस्वरदायिनी ।

ज्ञानविज्ञानदात्री च शीलमार्गप्रदर्शिनी ।
बहुमूत्रं मूत्रघातं शर्करां च प्रणाशिनी ।
प्रकाशितं तव स्नेहात् सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।

× × ×

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम् ।
त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी कृष्णधान्याकसैन्धवम् ।
शुण्ठी तालीशपत्रं च कङ्कोलं नागकेशरम् ।
यमानीद्वयं मेथी च जीरकद्वयमेव च ।

एतानि समभागानि रौद्रे शुष्काणि चूर्णयेत् ।
गृहीत्वा चूर्णमेतेषां संविच्चूर्णं तु तत्समम् ।
उभयोश्च समां दत्वा सितां तन्मिश्रयेद् दृढम् ।
मिश्रयित्वा चतुर्थांशं समं मधु घृतं तथा ।

पुनः शिलातले पिष्ट्वा त्रिसुगन्धिं च मिश्रयेत् ।
स्वर्णादिपत्रे पुरतः स्थापयित्वा ततः क्रमात् ।
चतुर्भिर्मन्त्रभिस्तासां शोधनं समुपाचरेत् ।
सेवनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ।

एवमभ्यासतो देवि प्रत्यहं वत्सरं ततः ।
तेजस्वी बलवान् वाग्मी मेधावी प्रियदर्शनः ।
रूपयौवनसम्पूर्णो नानागुणसमाश्रयः ।
भविष्यति न सन्देहो द्रव्यस्यास्य निषेवणात् ।
आनन्द पटल ।

मद्‌विरचित पद्मावती महाकाव्य (पञ्चम सर्ग) में विजया-निर्माण की एक सुगम पद्धति प्रदर्शित कर इसके पान का फल बतलाया गया है—जगत्प्रपञ्च का विस्मरण।

बातामपुष्परसपिष्टककेशराढ्यां,
द्राक्षासितामरिचपाटलपुष्पगात्रीम्।
एलाचयां रतिजयां विजयां निपीय,
को नाम विस्मरति नैव जगत्प्रपञ्चम्।
पद्मावती महाकाव्य।

इस विजया के सेवन करते समय अधोलिखित गीत का गान अवश्य करना चाहिये।

जय जय विजये जय जय विजये।
शतसुमनःसमुदीरितगाने, बातामालिविबर्धितमाने।
पिष्टकदाने सुमधुरपाने द्राक्षान्दोलितहृदये। जय जय०।
एलाललितसुरभिसञ्चारे मरिचमनोहररसविस्तारे!
क्षीरपयोनिधिविहितविहारे केशरसुषमानिलये। जय जय०।
सितसितया समलङ्कृतवेशे भावविशेषकृताभिनिवेशे।
काशीमथुराकनखलदेशे विहितनिवासे सदये। जय जय०।
सरस्वती नाटिका।

इन अवतरणों से विजया मदिरा के समकक्ष अथवा उससे अधिक महत्त्वशालिनी सिद्ध होती है। मांस मीन एवं मुद्रा का सेवन साधकों की रुचि पर निर्भर होना चाहिए, क्योंकि स्मार्तमतावलम्बियों के मत से मांस आदि का सेवन अधार्मिक कृत्य नहीं है। परन्तु हमारी सम्मति से इनके अनुकल्प दूध, दही, खीर, पूड़ी, कचौड़ी, मलाई, रबड़ी, आलू, कटहल, तरोई आदि अधिक रुचिकर हैं। फिर भी 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' का सिद्धान्त माननीय है।

स्वकीया शक्ति--

तन्त्र का सिद्धान्त है कि शक्ति दो प्रकार की होती है, ब्रह्मदत्ता और रुद्रदत्ता। अग्नि को साक्षी कर परिणीता पत्नी को ब्रह्मदत्ता कहते हैं और कामतः मनोरथमयी साधना के लिए नियुक्त को रुद्रदत्ता कहते हैं। शिवशक्ति की साधना के लिये रुद्रदत्ता का उपयोग करना चाहिए और वैदिक कार्यों के सम्पादन के लिए ब्रह्मदत्ता का। भगवती के वाक्य में श्रद्धा रख कर इस विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए ।

ब्रह्मदत्ता रुद्रदत्ता द्विविधा स्त्री महेश्वर।
ब्रह्मदत्ताऽग्निना हुत्वा शिवदत्ता तु कामतः।
शिवकार्ये शिवा योज्या परा योज्याऽन्यकर्मणि।
सन्देहो नैव कर्तव्यो मम वाक्यानुसारतः।
निगमकल्पद्रुम।

प्राणतोषिणी का कथन है कि स्वकीया परिणीता अनन्यभावा प्रेयसी सदा आनन्दमयी है। इसके अङ्गों में समस्त तीर्थों का निवास होता है। अत एव जो मनुष्य इसके सहवास का परित्याग कर अन्यासक्त हो कर जप करता है, उसका केवल जप ही व्यर्थ नहीं होता, पर वह उन्मत्त भी हो जाता है।

सदानन्दमयी नारी स्वकीयाऽपरगोचरा।
यस्या अङ्गे महेशानि सर्वतीर्थानि सन्ति वै।
तां विहाय महेशानि अन्यस्थाने जपेद् यदि।
तस्य सर्वं निष्फलं स्याद् उन्मत्तो भवति ध्रुवम्।
प्राणतोषिणी।

तन्त्रशास्त्र में परिणीता स्त्री को आद्या शक्ति कहते हैं। इस आद्या शक्ति के आश्रय से मन्त्र की साधना करनी चाहिये, जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता उसका नाश हो जाता है।

आद्या शक्तिः स्वदाराः स्यात् तामेवाश्रित्य साधयेत् ।
आद्याशक्ति विना पूजा अभिचाराय कल्पते ।
कौलिकार्चन दीपिका ।

इसमें सन्देह नहीं कि परिणीता पत्नी के अतिरिक्त अन्य शक्ति की सेवा करने से, उसका उपभोग करने से तान्त्रिक वीर साधक भी परस्त्रीगमनरूप पातक का भागी होता है ।

परिणीतां विना वीरः शक्तिसेवां समाचरन् ।
परस्त्रीगामिनां पापं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ।
महानिर्वाण तन्त्र ।

अतः प्रवल कलिकाल में मानवगण के निर्वीर्य हो जाने पर मैथुन (शेषतत्व) अपनी परिणीता एवं सर्वदोषविवर्जिता पत्नी से ही करना चाहिये, क्योंकि इसमें किसी प्रकार के दोष की, पाप की उद्भावना नहीं ।

शेषतत्वं महेशानि निर्वीर्ये प्रबले कलौ ।
स्वकीया केवला ज्ञेया सर्वदोषविवर्जिता ।
तन्त्र ।

इतना ही नहीं, इन तन्त्र शास्त्रों में लतासाधना के लिये स्वशक्ति का निर्देश भी साक्षात् स्वपद से उपात्त है ।

शक्तिमानीय यत्नेन सुशीलां प्रियवादिनीम् ।
स्वशक्तिं परशक्तिं वा दीक्षितां गुरुसन्निधौ ।
यामल तन्त्र ।

आनीय प्रमदां कान्तां सुशीलां चारुहासिनीम् ।
गुरुभक्तिरतां देवि कुलसाधनतत्पराम् ।
दीक्षितां परकान्तां वा स्वकीयां वा महेश्वरि ।
बृहद्योनि तन्त्र ।

स्वेष्टदेवीं यजेत् चक्रे स्वस्त्रियं स्वेष्टभाविनीम् ।
कालिका कल्प ।

स्वशक्तिः परशक्तिः वा दीक्षिता चेद् यजेत् शिवाम् ।
कालिका विलास ।

स्वकान्तां परकान्तां वा सुन्दरीं यौवनान्विताम् ।
दिग्दण्डरात्रिपूर्णे तु समानीय प्रयत्नतः ।
शाक्तानन्दतरङ्गिणी ।

इस मार्ग के साधक की वासनायें शान्त हो जाती हैं, कामनाओं के प्रति उसकी विरति हो जाती है। संसार में देखा जाता है कि यदि मिश्री अधिक काल तक चूसी जाती है, तो उसमें कटुता आ जाती है, यदि सुन्दरी नितम्बिनी का सेवन अधिक समय तक आसक्ति से किया जाता है, तो उससे वैराग्य हो जाता है, उससे पार्थक्य की अभिलाषा का उदय होता है।

धत्ते पौण्ड्रकशर्कराऽपि कटुतां कण्ठे भृशं चर्विता
वैरस्यं वरनायिकाऽपि तनुते सतया दृढं सेविता।
स्तुतिकुसुमाञ्जलि ।

दिव्यभाव अथवा कुलाचार

जो साधक षट्चक्रों की अधिष्ठातृदेवी कुलस्त्रियों की, आज्ञाचक्र में हंसपीठस्थ कुलगुरु की तथा कुलकुण्डलिनीस्वरूपा कुलदेवी की नित्य समर्चा करता है, वह कुलाचारी अर्थात् दिव्यमार्गी कहा जाता है, और उसकी साधनापद्धति को कुलाचार अथवा दिव्याचार कहते हैं। इस मार्ग के पथिक योगिवर्य ही होते हैं।

कुलाचारं प्रवक्ष्यामि सेव्यं योगिभिरुत्तमैः ।
कुलस्त्रियं कुलगुरुं कुलदेवीं महेश्वरि ।
नित्यं यः पूजयेद् विश्वं स कुलाचार उच्यते ।
रुद्रयामल ।

यह दिव्य साधक पतञ्जलि, गोरक्षनाथ आदि के योग मार्ग से अभिन्न पर भिन्न रूप से प्रतीयमान योग मार्ग से शक्ति-साधना करता है। यह मकारपञ्चक का सेवन तो करता है, पर इसके मकारपञ्चक भौतिक मकारपञ्चक नहीं हैं। इस स्थल पर मकार-पञ्चक की व्याख्या अनुपयुक्त न होगी।

मद्य—

शरच्चन्द्रचन्द्रिका के समान प्रकाशमयी चैतन्यस्वरूपा कुल-कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार से उठ कर बारम्बार ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। वहाँ पर जब यह सहस्रार में परब्रह्म से संयुक्त होती है, तो सामरस्य सुख का उद्भव होता है, इस सहस्रार (व्योमपङ्कज) से अमृत का निर्झरण होता है। इस दिव्य पेय को जो खेचरीमुद्रा से पान करते हैं, वे वस्तुतः सुरा (सुधा) पायी है। इस सुरा के अति-रिक्त जो माध्वी, पैष्टी, ह्विस्की आदि आसवसेवी हैं, वे शराबी हैं, क्योंकि तन्त्र में शिवशक्ति सामरस्य समुद्भुत रस का नाम मद्य है, ह्विस्की आदि का नहीं।

आमूलाधारमाब्रह्मरन्ध्रं गत्वा पुनः पुनः।
चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्तिः सामरस्यसुखोदयः।
व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः।
सुधापानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः।
कुलार्णव तन्त्र।

न मद्यं माधवीमद्यं मद्यं शक्तिरसोद्भवम्।
शक्तिसङ्गम तन्त्र।

मांस—

जो साधक विवेकरूपी तलवार से पापपुण्यरूपी पशुओं का हनन कर, परा शक्ति में अपने चित्त का लय कर देता है, वह सच्चा मांसाशी कहा जाता है।

पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित् ।
परे लयं नयेच्चित्तं पलाशी स निगद्यते ।
कुलार्णव तन्त्र ।

भैरवयामलकार का कथन है कि जो विद्वान् साधक विवेकरूपी तलवार से काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि पशुओं को काट कर परात्मसुख की उपलब्धि के लिए इनके मांस का भक्षण करता है, विषय-विकारों से विरहित हो कर काम, क्रोध आदि का परित्याग करता है, वही विज्ञानवेत्ता है, वही धरातलदेवता है और वही पुण्यात्मा है। सज्जन को पशुमांस न खाना चाहिये।

कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांश्छित्वा विवेकासिना
मांसं निर्विषयं परात्मसुखदं खादन्ति तेषां बुधाः ।
ते विज्ञानपरा धरातलसुरास्ते पुण्यवन्तो नराः
नाश्नीयात् पशुमांसमात्मविमते हिंसां परं सज्जनः ।
भैरव यामल ।

काम क्रोध आदि के प्रतीकों का उल्लेख 'सलोमास्थि स्वैरं०' इस पद्य की व्याख्या में विस्तार से किया गया है।

मीन—

जो दिव्यभावापन्न साधक मन से इन्द्रियों का निग्रह कर उन्हें परमात्मा में लगा देता है, वह वास्तविक मीनभोजी है, इससे अतिरिक्त पुरुष प्राणिहिंसक हैं। आगमसार के मत से मनुष्य-शरीर में गङ्गा यमुना नाम्नी दो नाडियाँ हैं जिन्हें इडा और पिङ्गला कहते हैं। इनमें श्वास और प्रश्वास रूपी दो मत्स्य विचरा करते हैं, जो साधक इन दोनों मत्स्यों को, श्वास और प्रश्वास को कुम्भक क्रिया से पकड़ कर खा जाता है, वह सच्चा मत्स्यसाधक है।

मनसा चेन्द्रियगणां संयम्यात्मनि योजयेत् ।
मत्स्याशी स भवेद् देवि शेषाः स्युः प्राणहिंसकाः ।
कुलार्णव तन्त्र ।

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेन् मत्स्यसाधक : ।
आगमसार ।

मुद्रा—

सहस्रार पद्म की कर्णिका में आत्मा का निवास है। यह पारद के समान मुद्रित अवस्था में विचरण करती है। यह करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान है, तथा करोड़ों चन्द्र के समान शीतल है। यह अत्यन्त कमनीय है। यदि इस आत्मा को कुण्डलिनी से संयुक्त करने का ज्ञान साधक के हृदय में उदित होता है, तो वह सच्चा मुद्रासाधक है।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकामुद्रितश्चरेत् ।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलः पारदोपमः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः ।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः ।
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते ।
आगमसार ।

भैरव यामल का कथन है कि जो पुण्यात्मा दिव्यभावापन्न साधक आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, भय, घृणा, मान, लज्जा एवं क्रोध-इन अष्ट मुद्राओं को सम्यक्तया ब्रह्माग्नि में पचा कर सावधानता से इनका भक्षण करते हैं, वे पशु-हित विमुख रुद्र के समान हो जाते हैं। इन अष्ट मुद्राओं से अष्ट पाशों की समानता अभिव्यञ्जित होती है। पशु-पद भी इस अभिव्यञ्जना का सहायक है।

आशा तृष्णा जुगुप्सा भयविशदघृणामानलज्जाप्रकोपाः
ब्रह्माग्नावष्ट मुद्राः परसुकृतजनः पाच्यमानाः समन्तात्।
नित्यं संभक्षयेत् तानवहितमनसा दिव्यभावानुरागी
योऽसौ ब्रह्माण्डभाण्डे पशुहितविमुखो रुद्रतुल्यो महात्मा।

मैथुन--

आत्मा तथा परा शक्ति के मिथुनात्मक संयोगानन्द का नाम मैथुन है। अतः इस मैथुन से भिन्न भौतिक मैथुन करने वालों को नितम्बिनी-सेवक कहते हैं।

परशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः ।
य आस्ते मैथुनं तत् स्याद् इतरे स्त्रीनिषेवकाः।
आगमसार।

परम पद में स्थित सूक्ष्मस्वरूप सुषुम्णा नाड़ी का सेवन करना चाहिये। इस मनोहारिणी कान्ता का आलिङ्गन करना चाहिये। परन्तु चर्मावनद्ध भौतिक परकीया अथवा वाराङ्गना का भूल कर भी आलिङ्गन न करना चाहिये। विश्ववन्द्य योगिराज को सुखमय भवन में इस सुषुम्ना का सदा आलिङ्गन करना चाहिये और श्वासप्रश्वासमयी सूर्यचन्द्ररूपिणी इडापिङ्गला के योग में इसके साथ मैथुन करना चाहिये, मनुष्य-रमणी की योनि में कभी भी मैथुन न करना चाहिये।

या नाड़ी सूक्ष्मरूपा परमपदगता सेवनीया सुषुम्णा
सा कान्ताऽऽलिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरी वारयोषित्।
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं नैव योनौ
योगीन्द्रो विश्ववन्द्यः सुखमयभवने तां परिष्वज्य नित्यम्।

वीरभाव के उपासक एक श्लोक कहा करते हैं कि--

मातृयोनौ क्षिपेल्लिङ्गं भगिन्याः स्तनमर्दनम्।
गुरोर्मूर्ध्नि पदं दत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

इस श्लोक के साधारण अर्थ से बीभत्सता एवं अनैतिकता का

उदय मन में हुए विना नहीं रह सकता। 'माता की योनि में लिङ्ग प्रक्षेपण से, सहोदरा के स्तनों के मर्दन से तथा गुरु के मस्तक में पद-स्थापन से पुनर्जन्म नहीं होता', यह अर्थ माननीय नहीं। इसका सुसंगत अर्थ दिव्याचारियों के मत से किया गया है। लिङ्ग पद का अर्थ है जीवात्मा, मातृयोनि का अर्थ है मूलाधारस्थित स्वयम्भूलिङ्गसहित त्रिकोण, जीवात्मा की सहोदरा होने के कारण कुण्डलिनी है भगिनी, द्वादशदल कमलचक्र है गुरु का निवास, और उसके ऊपर है सहस्रारचक्र जो जीवात्मा का गन्तव्य लक्ष्य है। अत एव इस श्लोक का अर्थ है—

'जीवात्मा मूलाधारस्थित स्वयम्भूलिङ्गसमवेत त्रिकोण पर आ कर कुण्डलिनी से संयुक्त हो कर ऊपर की ओर चले, तदनन्दर द्वादशदलचक्र के ऊपर पैर रख कर सहस्रारचक्र में पहुँच कर शिवशक्ति का दर्शन करे।'

इसी प्रकार—

'मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु।'

आदि वचनों की सुसंगति करनी चाहिये। मातृयोनि का अर्थ है माला का सुमेरु। अतः उसका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये। अन्य गुटिकाओं में जप करना चाहिये।

जिस प्रकार क्षिति के विना स्थिति नहीं, जल के विना पिपासा-भाव नहीं, सूर्य के विना अन्धकारनाश नहीं, वह्नि प्रयोग के विना पाक नहीं, चन्द्र के विना सुधावृष्टि नहीं और गर्भ के विना उत्पत्ति नहीं, उसी प्रकार तत्त्वज्ञान के विना मुक्ति भी सम्भवित नहीं। वह दिव्याचार से ही सम्भवित है।

क्षितिं विना यथा नास्ति स्थितिरेव महेश्वरि।
तोयं विना यथा नास्ति पिपासानाशकारणम्।
तमोहन्ता यथा नास्ति भास्करेण विना प्रिये।

विना वह्निप्रयोगेण यथा किञ्चिन्न पच्यते।
विना चन्द्रेण देवेशि सुधावृष्टिर्न जायते।
महोद्गर्भं विना कान्ते चोत्पत्तिर्नैव जायते।
तत्त्वज्ञानं विना देवि तथा मुक्तिर्न जायते।
निर्वाण तन्त्र।

आचारत्रय की संक्षिप्त विवेचना

आचार तीन हैं वामाचार, दक्षिणाचार और दिव्याचार।

(i) वामाचार--

घोर प्रवृत्तिमार्ग के पोषक इस वामाचार के उपासक पञ्च मकार से, मद्य मांस मीन मुद्रा एवं मैथुन से भगवती की उपासना करते हैं। इनकी शक्ति है परकीया अथवा वारयोषित्। इनके दो भेद होते हैं—प्रच्छन्न वाममार्गी (गृहस्थ) और अवधूत कौल। इस मार्ग के अनुयायियों को कभी-कभी क्षणिक सिद्धि भी उपलब्ध हो जाती है।

(ii) दक्षिणाचार--

इस दक्षिणाचार के अनुयायी श्रुतिस्मृतिविहित आचार का पालन करते हैं। मद्य के स्थान पर ये विजया का प्रयोग करते हैं। इनकी शक्ति स्वकीया ही होती है। कुछ लोग पञ्च मकार के अनुकल्प से भगवती का पूजन करते हैं। इसके दो भेद होते हैं सरक्त और विरक्त। इसमें विरक्त दिव्यपथ का पथिक बन जाता है।

(iii) दिव्याचार—

इस निवृत्तिपथ के पथिक भौतिक पञ्च मकार का सेवन नहीं करते। इनकी उपासना योगमार्ग से अभिन्न है। इनकी शक्ति कुण्डलिनी है।

—:०:—

[१०]

समन्तादापीनस्तनजघनदृग्यौवनवती-
रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनुम् ।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ।

अन्वय

हे मातः यदि नक्तं तव भक्तः समन्तादापीनस्तनजघनदृग्यौवनवतीरतासक्तः तव मनुं जपति, अथवा यदि गलितचिकुरः विवासाः त्वां ध्यायन् तिष्ठति तदा समस्ताः सिद्धौघाः तस्य वशगाः भवन्ति, स च कविः सन् भुवि चिरतरं कालं व्याप्य जीवति ।

अथवा

हे मातः यदि नक्तं गलितचिकुरः विवासाः, समन्तादापीतस्तनजघनदृग्यौवनवतीरतासक्तः तव भक्तः त्वां ध्यायन् तव मनुं जपति, तदा समस्ताः सिद्धौघाः तस्य वशगाः भवन्ति, स च कविः सन् भुवि चिरतरं कालं व्याप्य जीवति ।

व्याख्या

हे माता, यदि रात्रि के समय आपका भक्त सम्यक्तया पीन पुष्ट पयोधरों से, विपुल जघनों से एवं विशाल नयनों से परिपूर्ण यौवनवती सुन्दरी के साथ सुरतानन्द में समासक्त हो कर, आपके मन्त्र का द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी का जप करता है, अथवा मुक्तकेश एवं दिगम्बर हो कर योनिस्वरूपा आपका ध्यान करता है, तो समस्त

सिद्धगण उसके वशीभूत हो जाते हैं, और वह परम प्रकाण्ड पण्डित हो कर अथवा क्रान्तिदर्शी कवि हो कर चिरकाल तक जीवित रहता है।

इस उपर्य्युक्त व्याख्या से साधना द्वैविध्य का भान होता है पुरश्चरणप्रकरण में श्री महाकाल महाराज ने भी 'समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतः जनो यो ध्यायेत् त्वाम्...' (१८) 'परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं जपेत्...' (२०) तथा सुपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो पुरो ध्यायन् ध्यायन् यदि जपति भक्तस्तव मनुम्... (१७) इन पद्यों में साधना द्वैविध्य का निदर्शन किया है।

फेत्कारिणी तन्त्र से भी उपर्युक्त सिद्धान्त का समर्थन होता है, उसका कथन है कि यदि दिगम्बर साधक रात्रि के समय नग्न हो कर मैथुनानन्द में निरत हो कर अथवा मुक्त केश हो कर आपका जप करता है, तो उसे समस्त पुरुषार्थ एवं सिद्धियां समुपलब्ध होती हैं।

रात्रौः नग्नः शयानश्च मैथुने समवस्थितः।
अथवा मुक्तकेशश्च तस्य सर्वार्थसिद्धयः।

फेत्कारिणी तन्त्र।

ताराकर्पूर से इसकी समता दर्शनीय है

समुत्तुङ्गापीनस्तनजघनराजत्कुलवधू–
व्यवायव्यासक्तो जपति तव भक्तो यदि मनुम्।
गलद्वासःकेशो जननि मनुजो मेदनितले
स सिद्धीशः शक्त्या जयति सुचिरं सर्वसुजनम्।

ताराकर्पूर स्तोत्र।

कुछ तान्त्रिकों के मत से मुक्तकेशत्व और दिगम्बरत्व—ये भिन्न साधना के निदर्शक नहीं हैं। अत एव उनके मत से इसका अर्थ होगा कि यदि रात्रि के समय आपका भक्त मुक्तकेश एवं दिगम्बर हो कर तथा सम्यक्तया पीनस्तनी विपुलजघना विशालनयना तरुणी के

साथ रतासक्त हो कर आपके मन्त्र का जप करता है तो समस्त सिद्धगणों को अपने वश में करके वह चिरजीवी कवि हो जाता है। कवि पद का विवेचन पूर्व में (पृ० ५६ में) किया जा चुका है।

इस प्रकार वामाचार अथवा दक्षिणाचार परक अर्थ का निरूपण कर अब दिव्याचारपरक अर्थ का प्रतिपादन करते हैं।

हे माता, यदि सर्वभूतनिद्रास्वरूपा निशा में भी जागरूक दिव्याचाररत आपका योगी साधक विश्वस्थित अखिल जीवों की उत्पादयित्री एवं पालयित्री, सदा षोडशवर्षीया, पीनोन्नतपयोधरा कुलकुण्डलिनी शक्ति के साथ विहार करता है, जीवात्मा को परमात्मा में लीन करता है, महाऽऽवरणविरहित हो कर (विवासाः) एवं चित्त चपलता से शून्य हो कर (गलितचिकुरः) और परमशिव के (महाकाल के) साथ सामरस्यानन्द में निरत हो कर आपका ध्यान करता है, तथा द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी नामक महामन्त्र का जप करता है, तो वह दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ सदृश चिरजीवी तथा तत्त्वज्ञानी (कवि) हो जाता है।

घेरण्ड संहिता का कथन है कि दिव्य साधक योनि मुद्रा से स्वयं शक्तिमय हो कर शृङ्गार रस से परमात्मा के साथ विहार करे। इस प्रकार आनन्दमय होने पर ही जीवात्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य स्थापित हो सकता है।

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत्।
सुशृङ्गाररसेनैव विहरेत् परमात्मनि।
आनन्दमयः संभूय ऐक्यं ब्रह्मणि सम्भवेत्।
घेरण्ड संहिता।

गोरक्ष संहिता का मत है कि जीवात्मा के साथ कुलकुण्डलिनी शक्ति को सहस्रार चक्र में ले जा कर तथा स्वयं शक्तिमय हो कर

परम शिव के साथ सङ्गम (वाह्य रति) की तथा विविध सुखमय विहार (आभ्यन्तर रति) की भावना करे। यही परम पद है।

जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाय शिरोम्बुजे।
स्वयं शक्तिमयो भूत्वा परशिवेन सङ्गमम्।
नानासुखं विहारं च चिन्तयेत् परमं पदम्।
गोरक्ष संहिता।

कुण्डलिनी के विषय में तन्त्रकल्पद्रुम का कथन है कि साधक को इष्टदेवस्वरूपिणी कुण्डलिनी देवी का ध्यान करना चाहिये। यह सूक्ष्मरूपा हो कर भी पीनस्तनी षोडशवर्षीया नवजलधरश्यामा सृष्टिस्वरूपा है तथा सृष्टिस्थितिलयात्मिका है।

ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीम् इष्टदेवस्वरूपिणीम्।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।
तन्त्रकल्पद्रुम।

---

[११]

समाः स्वस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा
विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम्।
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः
कराम्भोजे वश्या हरवधु महासिद्धिनिवहाः।

अन्वय

हे हरवधु यदि साधकः स्वस्थीभूतः सन् विपरीताम् स्वस्थीभूताम् अतिशयमहाकालसुरतां त्वां विचिन्त्य समाः व्याप्य सदा ध्यायन् तव

मनुं जपति, तदा क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः कराम्भोजे महासिद्धि-निवहाः वश्याः भवन्ति ।

व्याख्या

हे हरवधु अर्थात् तत्त्वज्ञान के प्रदान से साधकों के आधिभौतिक आधिदैविक आधिमानसिक तापत्रितय के विनाशक भगवान् त्रिपुरारि की पट्टमहिषी दक्षिणकालिका, यदि साधक निश्चलचित्त हो कर विपरीत रति से महाकाल के साथ सुरत में अत्यन्त समासक्त एवं सुरता-नन्द से तृप्ति के कारण निश्चलीभूत आपका ध्यान करता है, तथा एक वर्ष पर्यन्त सदा आपके पूर्वोक्त अथवा ध्याननिरूपित रूप की भावना करता है, और इसके साथ ही साथ आपके द्वाविंशत्यक्षरी मन्त्र का जप करता है, तो पृथ्वीतल पर विहार करने वाले उस विद्वान् के करकमल में महासिद्धियाँ अधीन हो कर निवास करने लगती हैं, अर्थात् उस साधक को सम्पूर्ण सिद्धियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। सिद्धियों का निरूपण चतुर्थ पद्य में किया जा चुका है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे साधक को पाण्डित्य के साथ समस्त भौतिक ऐश्वर्यों की उपलब्धि होती है और शरीर त्याग के अनन्तर चतुर्विध अथवा पञ्चविध मुक्तियों में से किसी एक मुक्ति की प्राप्ति होती है।

इस साधना में शक्ति की आवश्यकता नहीं। यह साधना एकाकी की जाती है। कतिपय तान्त्रिकों के मत से 'विपरीताम्' इस पद के आधार पर बीजों के वैपरीत्य से एक विभिन्न मन्त्र की कल्पना की जाती है। इसका विवेचन मन्त्रोद्धार प्रकरण (पृष्ठ ४५) में किया जा चुका है।

जप के समय साधक में अधोलिखित दश गुणों का होना अनिवार्य है।

---

(१) सालोक्य, (२) सामीप्य ३) सारूप्य (४) तादूप्य (५) कैवल्य।

शान्ति, शुचिता, मिताहारत्व, भूमिशय्या, भक्ति, जितेन्द्रियता, निर्द्वन्द्वता, स्थिरबुद्धिता, मौन, आत्मनिग्रह

शान्तः शुचिर्मिताहारो भूशायी भक्तिमान् वशी।
निर्द्वन्द्वः स्थिरधीर्मौनी संयतात्मा जपेत् शिवे।
कुलार्णव तन्त्र।

जप—

भ्वादि गणीय जप् धातु से भाव में अप् प्रत्यय करने पर जप पद की निष्पत्ति होती है। इसका अर्थ होता है जप करना, अर्थात् स्वेष्ट देवता की ओर चित्त लगा कर मन्त्र की आवृत्ति करना।

यस्य यस्य च मन्त्रस्य उद्दिष्टा या च देवता।
चिन्तयित्वा तदाकारं मनसा जपमाचरेत्।
भूतिशुद्धि तन्त्र।

तन्निष्ठः तद्गतप्राणः तच्चित्तः तत्परायणः।
तत्पदार्थानुसन्धानं कुर्वन् मन्त्रं जपेत् प्रिये।
कुलार्णव तन्त्र।

यह तीन प्रकार का होता है—वाचिक, उपांशु और मानस।

(१) वाचिक—

जिस जप में मन्त्र का उच्चारण वाणी के द्वारा किया जाता है, उस जप को वाचिक जप कहते हैं।

(२) उपांशु—

जिस जप में दशन जिह्वा तथा ओष्ठ का सञ्चालन तो होता हो, और समीपस्थ पुरुष को ध्वनि का भास भी होता हो, पर वर्ण की प्रतीति न होती हो, उस जप को उपांशु जप कहते हैं।

(३) मानस—

जिस जप में जिह्वा ओष्ठ आदि किञ्चिन्मात्र भी न चलते हों,

तथा मुख के विकार से किसी प्रकार भी अक्षरों का आभास समीपस्थ पुरुष को भी न हो सकता हो, उस जप को मानस जप कहते हैं। इस मानस जप में मन्त्रवर्ण का चिन्तन मन में किया जाता है।

जपः स्यादक्षरावृत्तिर्वाचिकोपांशुमानसैः।
मन्त्रमुच्चारयेद् वाचा वाचिकः स जपः स्मृतः।
जिह्वौष्ठौ चालयेत् किञ्चिद् देवतागतमानसः।
किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्याद् उपांशुः स जपः स्मृतः।
धिया यदक्षरश्रेणीं वर्णस्वरतदात्मिकाम्।
उच्चरेद् अर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः।

तन्त्र सार।

ध्वनिर्घोषविकारेण निःश्वासोपांशुलक्षणः।
निर्विकारेण वक्त्रेण मनसा मानसः स्मृतः।

अत्रि स्मृति।

विना शब्दं जपो यस्तु चलज्जिह्वाद्विजच्छदः।
उपांशुं तं जपं प्राहुः मनसा मानसं बुधाः।

स्मृति।

मनसा मन्त्रवर्णस्य चिन्तनं मानसं स्मृतम्।

कौलावली तन्त्र।

यत् समीपस्थोऽपरो न शृणोति, तद् उपांशु। यत्र जिह्वौष्ठं मनागपि न चलति, स मानसः।

मन्वर्थमुक्तावली।

१०० वाचिक जप = १ उपांशु जप।
१०० उपांशु जप = १ मानस जप।

वाचिकस्य शतं ज्ञेयम् एकोत्तरमुपांशुना।
तस्मात् शतगुणं प्रोक्तं मानसं जपमुत्तमम्।

कौलावली तन्त्र।

विधियज्ञाज् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः ।
उपांशुः स्यात् शतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ।
मनुस्मृति ।

(क) इन दो पद्यों में साधनात्रितय का निर्देश है ।

(१) नितम्बिनी के साथ सुरत में समासक्त हो कर साधना करे ।

(२) नितम्बिनी की योनि का ध्यान कर साधना करे ।

(३) नितम्बिनी से असंयुक्त हो कर एकाकी साधना करे ।

(ख) भगवती की आराधना में गलितचिकुरत्व एवं दिगम्बरत्व अपेक्षित हैं ।

(ग) किसी भी आचार से साधना की जा सकती है ।

(घ) इस स्थल पर एक विचित्र प्रश्न उठे विना नहीं रह सकता जिसके लिए ९ से लगा कर २० तक के सभी पद्यों के प्रतिपाद्य विषय का परिज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है ।

९ पद्य में साधना अथवा स्तुति का उपक्रम है ।
१०-११ पद्यों में साधना का प्रतिपादन है ।
१२-१४ पद्यों में भगवती की स्तुति है ।
१५-१६ पद्यों में रेतोऽभिलिप्त पदार्थ से श्मशान में हवन का निर्देश है ।
१७ पद्य में योनिध्यान में निमग्न होकर जप का विधान है ।
१८ पद्य में सुरतासक्ति के साथ ध्यान का कथन है ।
१९ पद्य में बलिविधान है ।
२० पद्य में हविष्याशन से एवं सुरत से जप का निर्देश है ।

इस तालिका के परिशीलन करने के अनन्तर मन में यह विचार उठता है कि ११ वें पद्य के अनन्तर १७,१८ एवं २० वें पद्यों का उल्लेख और तदनन्तर १५, १६ एवं १९ पद्य के अनन्तर स्तुतिपरक

पद्यों का उल्लेख तर्कसम्मत होता। पर ऐसा क्यों नहीं है। यह एक विवेचनीय प्रश्न है।

मननशील मनीषियों के मत से इस क्रम में व्युत्क्रम की कल्पना महापातकजननी है। साधनाप्रतिपादन के अनन्तर स्तुति अनिवार्य है। १५ से लगा कर २० तक के पद्य पुरश्चरणनिदर्शक हैं। इनका उल्लेख साधना के साथ अनुपयुक्त है। जिस साधना का उल्लेख १० वें पद्य में किया गया है, उसी का पुरश्चरणरूप में निदर्शन १७ वें, १८ वें एवं २० वें पद्यों में किया गया है। इसका विवेचन सूक्ष्म दृष्टि से करना चाहिये।

— —

स्तुति-प्रकरण

[१२]

प्रसूते संसारं जननि जगतीं पालयति च,
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च।
अतस्त्वां धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि,
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौति भवतीम्।

अन्वय

हे जननि, भवती संसारं प्रसूते, जगतीं च पालयति, प्रलयसमये समस्तं क्षित्यादि च संहरति, अतः त्वां धाता अपि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिः अपि, महेशः अपि प्रायः भवतीं स्तौति, मादृशः जनः भवतीं सकलम् अपि किं स्तौति।

व्याख्या

हे माता, आप जगत्प्रपञ्च का प्रसव करती हैं, अर्थात् जिस प्रकार जननी के गर्भ से अर्भक की प्रसूति होती है, उसी प्रकार आपसे भी जगत् का जन्म होता है। प्रसव के अनन्तर आप अपनी सन्तति के समान इस विश्व का पालन करती हैं. तथा प्रलय के समय कार्य-कारणविशिष्ट समस्त क्षिति आदि पञ्च भूतों का संहार करती हैं, अपने में, स्वकारण देह में लीन कर लेती हैं। इन उपर्युक्त तीन वाक्यों से यह अभिव्यञ्जित होता है कि आप ही सृष्टिकर्त्री प्रजापति शक्ति हैं, पालनकर्त्री वैष्णवी शक्ति हैं तथा संहारकर्त्री शाङ्करी शक्ति हैं।

अत एव जब विधाता (ब्रह्मा), त्रिभुवनस्वामी लक्ष्मीपति तथा महादेव महेश्वर भी पूर्णतया आप की स्तुति करने में असमर्थ हैं, तब मत्सदृश पण्डितंमन्य आपकी स्तुति पूर्णतया कैसे कर सकता है। आपके स्वरूपाख्यान की चर्चा कैसे चला सकता है, अर्थात् जब सृष्टि-स्थितिप्रलयकारक ब्रह्मा विष्णु महेश आपकी महिमा कीर्तन के अवसर पर कुछ न कह कर मौनावलम्बन ही श्रेयस्कर समझते हैं, तो मत्सदृश अल्पज्ञ का क्या कहना है।

श्री सप्तशती का कथन है कि विश्व का धारण जगत् का सृजन, संसार का पालन एवं त्रिलोकी का भक्षण आप ही करती हैं।

त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।

सप्तशती।

जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य जी का कथन है कि इसके मानने में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं कि ब्रह्मा संसार का निर्माण करते हैं, विष्णु पालन करते हैं, रुद्र संहार करते हैं, ईश्वर तिरोधान करते हैं, और सदाशिव अनुग्रह करते हैं, पर ये सब करते हैं आपकी सकृत्-चलित भ्रूलता से अनुज्ञा पा कर।

जगत् सूते धाता हरिरवति रुद्रः क्षपयते
तिरस्कुर्वन्नेतत् स्वमपि वपुरीशस्तिरयति।
सदापूर्वः सर्वं तदिदमवगृह्णाति च शिवः
तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयोर्भ्रूलतिकयोः।

सौन्दर्यलहरी।

स्तुति करने में असमर्थता का उल्लेख सप्तशती में बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया गया है। ब्रह्मा महाराज कहते हैं कि हे देवि आप ही से हम तीनों का—ब्रह्मा विष्णु तथा महेश का—उद्भव हुआ है, इसलिये आपकी स्तुति कौन कर सकता है। ब्रह्मा विष्णु और महेश आद्य

पुरुष तो अवश्य हैं, पर अपनी माता के गुणशीलादि की चर्चा पुत्र पूर्णतया नहीं कर सकता ।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।
सप्तशती ।

स्तोत्रों में भगवती के विषय में कहा गया है कि उत्पत्ति, स्थिति और संहार के लिये श्री देवी तीन रूपों का धारण करती हैं, इस संसार की रचना त्रिगुणात्मिका है, अतः ब्रह्मा विष्णु और शिव आप की विकृति हैं ।

उत्पत्तिस्थितिसंहृतीर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुम्
त्रैगुण्याज् जगतः त्वदीयविकृतिर्ब्रह्माऽच्युतः शूलभृत् ।
स्तोत्र ।

त्रिपुटा स्तोत्र में लिखा है, कि जिस समय आप संसार की सृष्टि करती हैं, उस समय आप क्षितिस्वरूप ब्रह्मा है, जिस समय आप जगत् का पालन करती हैं, उस समय आप जलस्वरूप विष्णु नारायण हैं, और जिस समय आप विश्व को क्षुब्ध करती हैं, संहार करती हैं, उस समय आप अग्निस्वरूप रुद्र हैं। अतः यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि आप वायु एवं गगन स्वरूप हो कर ऐश्वर्य-मयी है ।

क्षितिस्त्वं विधाता जगत्सृष्टिकर्त्री
त्वमापोऽपि विष्णुः जगत्पालिका च ।
त्वमग्निस्तु रुद्रो जगत्क्षोभकर्त्री
त्वमैश्वर्यरूपा वियद्वायुरूपा ।
त्रिपुटा स्तोत्र ।

———

[१३]

अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान्
विमूढास्ते मातः किमपि न हि जानन्ति परमम् ।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरञ्च्यादिविबुधैः
प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ।

अन्वय

हे मातः, अनेके वाचा विमूढ़ाः सन्तः भवदधिकगीर्वाणनिवहान् सेवन्ते, ते तव परमं तत्त्वं किमपि नहि जानन्ति । अतः हरिहर-विरञ्च्यादिविबुधैः समाराध्यां रतिरसमहानन्दनिरताम् आद्यां स्वैरं प्रपन्नोऽस्मि ।

व्याख्या

हे माता, बहुत से लोग प्रतारकों की बातों में आ कर सूर्यादि देवताओं को आप से अधिक मान कर उनकी उपासना करते हैं, परन्तु वे विवेकशून्य होने के कारण 'आरोग्यं भास्करादू इच्छेत्' आदि पुष्पित वाक्यों से बहकावे में पड़ कर आपके परम तत्व को—सर्व देवात्मक स्वरूप को—बिलकुल नहीं जानते । वे चाहे जाने अथवा न जाने, पर मैं तो आपके विषय में जान ही चुका हूँ । आप आद्या शक्ति हैं, आपकी उपासना त्रिभुवनपति ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता किया करते हैं । ऐसी अवस्था में सूर्यादिदेव आप से अधिक कैसे हो सकते हैं । यह सब समझ कर, तथा महाकाल के साथ विपरीत रति-जन्य महानन्द में निमग्न होने के कारण आप को प्रसन्न मुद्रा में देख कर मैं पूर्णरूप से आप के शरण में आया हूँ । शरणागतों के प्रति आप की दयालुता सर्वविदित है । सप्तशती में भी शरणागत दीन एवं आर्तों के प्रति आप की दयालुता की, परित्राणता की एवं दुःखनिवा-रणता की गाथा गाई गई है ।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।
देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद ।
सप्तशती ।

भगवान् शङ्कराचार्य जी कहते है कि विविधविध सेवा से प्रसाद्यमान देवताओं की उपासना का परित्याग कर दिया है, इस समय मेरी अवस्था ८५ वर्ष से अधिक हो गई है, अब हे माता यदि आपकी कृपा मेरे ऊपर नहीं होती, तो निरालम्ब मैं किसके शरण में जाऊँ।

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ।
देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र ।

योगिनी तन्त्र का कथन है कि जो रूप परमानन्द का प्रदाता है, और जो जगत् का कारण स्वरूप है, श्री भगवती का वह रूप उदयास्त विवर्जित है, अनादि एवं अनन्त है।

परमानन्दकं रूपं जगतां कारणं महत् ।
तस्या देव्यास्तु तद् रूपम् उदयास्तविवर्जितम् ।
योगिनी तन्त्र ।

अर्गला स्तोत्र में ब्रह्मा कृष्ण तथा शङ्कर से कीर्तन किये जाने का उल्लेख किया गया है। वहाँ लिखा है कि 'हे चतुर्भुजे, परमेश्वरि, आपका स्तव चतुरानन ने किया है, हे अम्बिके देवि, परम भक्ति से आपका कीर्तन कृष्ण (विष्णु) ने किया है, और हे परमेश्वरि, आपका गान पार्वतीपति ने किया है, अर्थात् त्रिदेवों ने आपकी स्तुति की है।

चतुर्भुजे चतुर्वक्रसंस्तुते परमेश्वरि।
कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्तया सदाम्बिके।
हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि।
अर्गला स्तोत्र।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी का कथन है कि भगवती कालिका की उपासना के विना जो पुरुष कलियुग में सिद्धि की कामना करता है, वह शक्ति के विना रतिरस की इच्छा रखता है, नील साधन का परित्याग कर निष्फल साधनों के चक्कर में घूमा करता है और षड्रस-मिश्रित भोजन का परित्याग कर भिक्षुकवृत्ति की अभिलाषा रखता है।

अत एव वही धन्य है, वही विज्ञानी है, वही देववन्दित है, वही दीक्षित है, वही सुखी है, वही सज्जन है, वही सत्यवादी है, वही जितेन्द्रिय है, वही वेदवक्ता है, वही स्वाध्यायपरायण है और वही लोकपूजित है जिसके मनोमन्दिर में भगवती कालिका सदा निवास करती हैं।

कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित् सिद्धिकामुकः।
स तु शक्तिं विना देवि रतिसम्भोगमिच्छति।
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित् सिद्धिमिच्छति।
सनीलसाधनं त्यक्त्वा परिभ्रमति सर्वतः।
कलौ कालीं विहायाथ यः कश्चित् सिद्धिमिच्छति।
स भोजनं परित्यज्य भिक्षुवृत्तिमभीप्सति।
स धन्यः स च विज्ञानी स एव सुरपूजितः।
स दीक्षितः सुखी साधुः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
स वेदवक्ता स्वाध्यायी स एव जनवन्दितः।
यस्य चित्ते महाकाली विधत्ते वसतिं सदा।
शाक्तानन्दतरङ्गिणी।

समस्त तन्त्रों का सिद्धान्त है कि यह भगवती श्री कालिका महा-महाब्रह्मविद्यारूपिणी विद्या हैं, जिनके समाश्रयण से नीचातिनीच पुरुष भी निर्वाण मुक्ति पा जाता है।

महामहाब्रह्मविद्या विद्येयं कालिका मता।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः।

अतः आगम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवती श्री कालिका के समान न तो कोई विद्या है और न कोई फल, न कोई ज्ञान है और न कोई तप। अतः श्री कालिका का ही समाश्रयण करना चाहिये।

न हि कालीसमा विद्या न हि कालीसमं फलम्।
न हि कालीसमं ज्ञानं न हि कालीसमं तपः।

कतिपय विद्वानों का मत है कि 'रतिरसमहानन्दनिरताम्' इस पद में रति से सम्भोग और रस से मद्य का अर्थ बोधित होता है। परन्तु मेरा मत है कि कर्पूरस्तव में कारण का प्रयोग स्पष्ट अथवा अस्पष्ट शब्दों में भी नहीं किया है, दक्षिणाचारी अथवा दिव्याचारी कारण को ग्रहण नहीं करता। हां अलबत्ता वीराचारी इसका ग्रहण करता है। इसकी विवेचना साधना-निदर्शन में की जा चुकी है।

———

[१४]

धरित्री, कीलालं, शुचिरपि, समीरोऽपि, गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम्।
स्तुतिः का ते मातर्निजकरुणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः।

अन्वय

हे कालि, कल्याणी गिरिशरमणी त्वम् एका धरित्री, कीलालं, शुचिः अपि, समीरः अपि, गगनम् सकलम् असि, हे मातः, ते अन्या का स्तुतिः। निजकरुणया अगतिकं मां प्रति त्वं प्रसन्ना भूयाः। भवम् अनु मम जनुः न भूयात्।

व्याख्या

हे कालभयनिवारिणी काली, भौतिक एवं आध्यात्मिक परमानन्द प्रदान से आप भक्तों का मङ्गल करती हैं, आप कूटस्थ परब्रह्म की (गिरिशः=कूटस्थः) पट्टमहिषी हैं। आप अपनी अघटित घटना पटीयसी माया से चतुर्विंशति तत्त्वस्वरूपिणी हैं। अत एव आप ही पृथिवी हैं, आप ही जल हैं, आप ही अग्नि हैं, आप ही वायु हैं और आप ही आकाश हैं। कहाँ तक कहें आप ही सब कुछ हैं, आप ही चतुर्विंशति तत्त्व हैं। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' इस वाक्य के आधार पर आप ही ब्रह्मरूपिणी हो कर जगत्प्रपञ्च में अवस्थित हैं। इसलिये हे माता, इससे अतिरिक्त आप की क्या स्तुति की जा सकती है। इस प्रकार स्तुति करने के अनन्तर मेरा यह आत्मनिवेदन है कि मैं साधनहीन हूँ, उपायरहित हूँ, पर मेरी यह प्रार्थना है कि अपने असाधारण दयामय स्वभाव के कारण आप मेरे ऊपर ऐसी प्रसन्न हों कि मेरा जन्म इस संसार में फिर न हो, मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि आप मुझे अपने चरणकमलों में लीन कर लें।

भगवान् श्री शङ्कराचार्य जी कहते हैं कि आप मन हैं, आप आकाश हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं और आप पृथिवी है। नित्या, सर्वव्यापिनी, एकरूपा आपका यह प्रथम परिणाम है, इस पूर्व परिणत पृथ्वी आदि का द्वितीय परिणाम पर्वत घट आदि

हैं। इस प्रकार आप बीजरूप से स्थित हो कर भी, विश्वप्रपञ्च में महेश की महिला हो कर भी चिदानन्दरूप में परिणत हैं।

मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा
चिदानन्दाकारं शिवयुवतिभावेन विमृषे।
सौन्दर्यलहरी।

गुप्तार्णव तन्त्रकार का कथन है कि हे कामरूपिणी, स्पष्ट प्रतीयमान दशनच्छविमयी, कराल कालिका, आप भूमि हैं, आप जल हैं, आप अग्नि हैं, आप वायु हैं, आप आकाश हैं, आप मन हैं, आप प्रकृति हैं, आप महत् हैं, आप अहङ्कार हैं, आप आत्मा हैं और आप परमात्मा हैं। हे माता, आप से अतिरिक्त कुछ और है भी नहीं, इसलिये मैं अपने अपराधों की आप से क्षमा चाहता हूँ।

त्वं भूमिस्त्वं जलौघस्त्वमसि हुतवहस्त्वं जगद्वायुरूपा
त्वं चाकाशो मनश्च प्रकृतिरपि महत्पूर्विकाहङ्कृतिश्च।
आत्मा चैवासि मातः परमपि भवती त्वत्परं नैव किञ्चित्
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितरटने कामरूपे कराले।
गुप्तार्णव तन्त्र।

इस स्थल पर तुलनात्मक दृष्टि से महिम्न स्तोत्र का अधोलिखित श्लोक अनुपयुक्त न होगा जिसमें भगवान् शङ्कर की महिमा का गान करते हुए कहा गया है कि आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं और आप आत्मा हैं। परिनिष्ठित बुद्धिसमन्वित पुरुष आपके विषय में परिच्छिन्न रूप से इस प्रकार की वाणी कहा करें, पर हम तो उस तत्त्व को नहीं जानते, जो कि आप नहीं है।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहः
त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत् तत्त्वं वयमिह तु यत् त्वं न भवसि ।
महिम्न स्तोत्र ।

देवी सूक्त का वचन है कि आप एक हो कर भी अनेक हैं, विकार-रहित सूक्ष्मरूपधारिणी हो कर भी करोड़ों ब्रह्माण्डों की जननी है ।

एकानेका सूक्ष्मरूपाऽविकारा
ब्रह्माण्डानां कोटिकोटिं प्रसूषे ।
देवी सूक्त ।



पुरश्चरण-प्रकरण

[१५]

श्मशानस्थः स्वस्थो गलितचिकुरो दिग्पटधरः
सहस्रं त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम् ।
जपंस्तत् प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो
महाकालि स्वैरं स भवति धरित्रीपरिवृढः ।

अन्वय

हे महाकालि, श्मशानस्थः स्वस्थः गलितचिकुरः दिग्पटधरः तव ध्याननिरतः तव साधकः निजगलितवीर्येण मिलितम् अर्काणां सहस्रं कुसुमं, तत्प्रत्येकं तव मनुम् अपि जपन् जुहोति, सः स्वैरं धरित्रीपरिवृढः भवति ।

व्याख्या

मन्त्रोद्धार, ध्यान, साधना तथा स्तुति के अनन्तर पुरश्चरण-प्रक्रिया का निरूपण करते हैं। पुरश्चरण के विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार देही जीवविहीन होने पर सम्पूर्ण कार्यकलाप के सम्पादन में असमर्थ रहता है, उसी प्रकार पुरश्चरण से विरहित होने पर साधक की साधना असफल रहती है। अत एव युग के भेद से एक, दो, तीन अथवा चार पुरश्चरण करना चाहिए, अर्थात् सत्ययुग में एक से, त्रेता में दो से, द्वापर में तीन से और कलियुग में चार पुरश्चरणों से सिद्धि मिलेगी। इसलिये प्रयत्नपूर्वक पुरश्चरण करना चाहिये।

जीवहीनो यथा देहो सर्वकर्मसु न क्षमः।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।
सकृद् द्विधा त्रिधा वापि चतुर्धा युगभेदतः।
कर्तव्यं च प्रयत्नेन पुरश्चरणमुत्तमम्।

पूजापद्धति।

यद्यपि निष्काम पुरश्चरण का, देवता की प्रसन्नता के लिये विहित पुरश्चरण का महत्त्व वर्णनातीत है, तथापि साधारण साधक मनोभिलषित सिद्धि के लिये पुरश्चरण का अनुष्ठान यथासाध्य साधन से स्वयं करता है, अथवा ब्राह्मणों से सम्पादित करवाता है। लेखक के मत से अन्य द्वारा विहित अनुष्ठान की सिद्धि सन्देहावरण से आच्छादित रहती है। इसका अधिक विवेचन धनकामुक ब्राह्मणों के कोप का सम्बर्धन करेगा। अत एव इस विषय में मौनावलम्बन ही श्रेयस्कर है।

श्री दक्षिणकालिका के पुरश्चरणानुष्ठान से मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, स्तम्भन, शान्ति, पुष्टि आदि कर्म शीघ्र ही स्वल्प परिश्रम से सम्पादित हो जाते हैं। इसका यथार्थ वर्णन वह भी नहीं कर सकता है जिसके एक करोड़ मुख हों और प्रत्येक मुख में एक करोड़ जिह्वायें। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि इस विद्याराज्ञी के समान विद्या, इस मन्त्रराज के जप के समान जप, तथा कालीतत्त्व के समान ज्ञान त्रिभुवन में एवं त्रिकाल में असम्भवित है।

आकर्षणवशीकारमारणोच्चाटनं तथा।
शान्तिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनया चिरात्।
किं वक्तव्यमनेनापि वर्णितुं नैव शक्यते।
जिह्वाकोटिसहस्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि।
अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं, न भूतं न भविष्यति।

काली तन्त्र।

साधना के लिये दो स्थल ही सर्वोत्तम हैं एक योनि और दूसरा श्मशान, जिसमें प्रथम जन्म का अथवा सृष्टि का प्रतीक है और द्वितीय मरण का अथवा प्रलय का। यही भगवती के दो स्वरूप हैं एक चिता और दूसरी योनि। यही कारण है कि पामर से पामर व्यक्ति को भी इन्हीं दो स्थलों पर क्षणिक ज्ञान का उद्रेक होता है। यदि इन स्थलों पर साधना की जाय, तो भौतिक एवं पारलौकिक सिद्धियां समुपलब्ध होगी—इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है।

मैथुनान्ते श्मशानान्ते भोजनान्ते च या मतिः।
सा मतिः सर्वदा तिष्ठेत् को न मुच्येत बन्धनात्।
धर्मशास्त्र।

कर्पूरस्तव में पञ्चविध साधनाओं का उल्लेख किया गया है।

२ श्मशान साधनायें।
१ योनि समर्चन।
१ यन्त्र समर्चा।
१ वलि प्रदान।
१ लता साधना।

श्मशान साधना—

हे महाकाली। दीक्षितोपनिषद् के अनुसार भगवती श्री कालिका के भेद संख्यातीत और अनन्त हैं। पर उपासना की सुविधा के लिये मुख्यतया आठ भेदों की कल्पना की गई है। (१) चिन्तामणि काली (२) स्पर्शमणि काली, (३) सन्ततिप्रदा काली (४) सिद्धि काली (५) दक्षिणा काली (६) कामकला काली (७) हंस काली और (८) गुह्य काली। इनमें से दक्षिणा काली की मुख्यता सर्वविदित है।

साधक साधना के लिये श्मशान भूमि में समुपस्थित है। वहाँ की भयानकता एवं बीभत्सता से उसके चित्तपटल पर किसी प्रकार की व्यग्रता का सञ्चार नहीं हो रहा है। वह स्थिरचित्तता के

साथ मुक्तकेश एवं दिगम्बर हो कर समर्चन के निमित समानीत सहस्र-संख्याक सूर्यसुमन (आक के पुष्प) के समूह को स्वकीय शुक्र से समनुलिप्त कर रहा है। तदनन्तर पूर्ववर्णित (पृष्ठ ५५-७३)भगवती श्री दक्षिणकालिका के ध्यान में निमग्न हो कर एक-एक पुष्प उठा रहा है और प्रत्येक पुष्प के साथ आप के मन्त्र (विद्याराज्ञी) को जप कर हवन कर रहा है। हे महाकाली, इस साधना का फल यह होता है कि वह अनायास ही भूमिनायक हो जाता है। आप के ध्यान का वर्णन मन्त्रमहोदधि में इस प्रकार किया गया है—

सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं
घोरास्यां शिरसां स्रजा सुरुचिराम् उन्मुक्तकेशावलिम्।
सृक्कासृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतिं
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्।
मन्त्रमहोदधि।

(१) अर्कपुष्प

इस पुरश्चरण का, स्वकीयवीर्य-संमिश्रित १००० अर्क पुष्पों से पूजन का, विधान इसी रूप में अनेक तन्त्रों में समुपलब्ध होता है।

श्मशानस्थो भवेत् स्वस्थो गलितं चिकुरं चरेत्।
दिगम्बरः सहस्रं च सूर्यपुष्पं समानयेत्।
स्ववीर्येण युतं कृत्वा प्रत्येकं प्रजपन् हुनेत्।
ध्यात्वाभ्यर्च्य महाभक्त्या कुलालापः स्तवं पठेत्।
महाकाल संहिता।

शावं हृदयमारुह्य निर्वासाः प्रेतभूगतः।
अर्कपुष्पसहस्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा।
देवीं यः पूजयेद् भक्त्या पत्रैरेकैकशो मनुम्।
सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत्।
मन्त्रमहोदधि।

स्वरेतोऽभ्यक्तपत्रेणाप्यर्कस्यैव सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्चयेद् देवीं सर्वसिद्धिं स विन्दति ।
काली तन्त्र ।

(२) विल्वपत्र

स्वगात्ररुधिर से संपृक्त १००० विल्व पत्रों से समर्चन करने पर बृहस्पति बन जाता है, एवं मज्जा से मिश्रित १००० विल्व पत्रों से पूजन करने पर राजा बन जाता है, यदि वह पलायनपरायण नहीं होता।

स्वगात्ररुधिराक्तैश्च विल्वपत्रैः सहस्रशः ।
श्मशानेऽभ्यर्च्य कालीं तु वागीशसमतां व्रजेत् ।
काली तन्त्र ।

महाचीनक्रमलतामज्जाभिर्विल्वपत्रकम् ।
सहस्रं देवीमभ्यर्च्य श्मशाने साधकोत्तमः ।
तदा राज्यमवाप्नोति यद्यसौ न पलायते ।
काली तन्त्र ।

(३) अमिश्रित सुमन तथा विल्वपत्र—

यदि साधक रक्त कमलों से हवन करता है तो कुवेर से भी अधिक सम्पत्तिशाली हो जाता है; यदि विल्वपत्र से हवन करता है, तो उसे राज्य की प्राप्ति होती है, और यदि रक्त पुष्प से हवन करता है तो वह किसी के भी वश करने में समर्थ हो जाता है। जो साधक १००० विल्व पत्रों से अथवा १००० करवीर (कनेर) के कुसुमों से, अथवा १००० कमलों से, अथवा वेला, चम्पा, जूही, चमेली, मालती, गुलाब आदि के १००० सुमन से समर्चन करता है, वह भगवती श्री दक्षिणकालिका से मनोभिलषित वरदान की प्राप्ति करता है। इस समर्चन की विशेषता यह है कि प्रत्येक विल्वपत्र अथवा सुमन के समर्पण के समय विद्याराज्ञी मन्त्र का जप अवश्य करें। इस पद्धति

से पूजन के लिये श्मशानस्थल अपेक्षित नहीं है। यह पूजन भवन में सुगमता से किया जा सकता है। व्याख्यालेखक इस पद्धति को सर्वोत्तम पद्धति मानने के लिये विवश हैं। भगवती श्री कालिका को यह पद्धति अत्यन्त प्रिय है, इसके लिये प्रमाणोपन्यास की आवश्यकता नहीं।

रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्त्री धनैर्जयति वित्तपम्।
विल्वपत्रैर्भवेद् राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः।
मन्त्रमहोदधि।

विल्वपत्रसहस्राणि करवीराणि वै तथा।
प्रतिनाम्ना पूजयेद्धि तेन काली वरप्रदा।
कमलानां सहस्रं तु प्रतिनाम्ना समर्पयेत्।
चक्रं सम्पूज्य देवेशि कालिकावरमाप्नुयात्।
पूजनपद्धति।

(४) श्मशान में जप (पुष्पों के विना)—

यदि रात्रि के समय साधक श्मशान भूमि में जाता है, और वहाँ पर दिगम्बर एवं मुक्तकेश हो कर १००० विद्याराज्ञीनामक मन्त्र का जप करता है तो उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।

दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि।
जपेद् योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वकामनाः।
मन्त्रमहोदधि।

श्मशानालयमागत्य मुक्तकेशो दिगम्बरः।
जपेद् अयुतसंख्याकं सर्वकामार्थसिद्धये।
काली तन्त्र।

(५) शव-साधना

काली के उपासकों में शवसाधना एवं मुण्डसाधना अधिक प्रसिद्ध हैं। वीराचारी कौल इन साधनाओं से मूढ जनता को यत्-

किञ्चित् चमत्कार प्रदर्शित कर अपनी सिद्धता सिद्ध कर लेते हैं। मृदु, कोमल, चूडक, एवं अचूडक शवों की चर्चा वीराचार के निरूपण के अवसर पर (पृ० ९८) की जा चुकी है। इस स्थल पर एतद्विषयक एक दो पुरश्चरणों का उल्लेख अस्थानीय न होगा।

महीधर का मत है कि यदि मन्त्रवित् साधक शव के ऊपर आरूढ हो कर विद्याराज्ञी का एक लक्षात्मक जप करता है, तो सकल अभिलषित पदार्थों का देने वाला यह मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। जो साधक इस प्रकार भगवती श्री कालिका की उपासना करता है, उसे अश्वमेध आदि यज्ञों के अनुष्ठान का, एवं दान और तपश्चर्या का फल मिल जाता है। सदा इस प्रकार भगवती श्री कालिका के पूजन करने से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, लक्ष्मी, गणेश, सूर्य आदि देवगण पूजित हो जाते हैं।

यो लक्षं प्रजपेन् मन्त्रं शवम् आरुह्य मन्त्रवित्।
तस्य सिद्धो मनुः सद्यो सर्वेप्सितफलप्रदः।
तेनाश्वमेधप्रमुखैः यागैरिष्टं सुजन्मना।
दत्तं दानं, तपस्तप्तम्, उपास्ते यस्तु कालिकाम्।
ब्रह्मा विष्णुः शिवो गौरी लक्ष्मीगणपती रविः।
पूजिताः सकला देवा यः काली पूजयेत् सदा।

मन्त्रमहोदधि।

यदि दिगम्बर एवं मुक्तकेश साधक मृदु, चूडक, कोमल अथवा योनित्वचा पर आसन जमा कर, अथवा कफन अथवा पुष्पवस्त्रासन का विस्तर सजा कर सुरतसंलग्नता के साथ कालीमन्त्र का जप करता है, और तदनन्तर स्तोत्र का पाठ करता है, तो उसे खेचरी सिद्धि की उपलब्धि होती है। मृदु, कोमल, चूडक आदि का निरूपण ९८ पृष्ठ में किया जा चुका है।

मृदुचूडकयोर्योनित्वचि वा कोमले शिवे ।
विष्टरे शववस्त्रे वा पुष्पवस्त्रासनेऽपि वा ।
मुक्तकेशो दिशावासा मैथुनी शयने स्थितः ।
जप्त्वा कालीं पठेत् स्तोत्रं खेचरीसिद्धिभाग् भवेत् ।
पूजनपद्धति ।

यदि साधक विल्ववृक्ष के नीचे बैठ कर, शव को अपनी गोद में रखता है, और नृसिंहमुद्रा से उसका अवलोकन करता हुआ इस मन्त्र का जप एक लक्ष करता है, तो उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ समुपलब्ध हो जाती हैं ।

विल्ववृक्षे निजक्रोडे शवम् आरोप्य यत्नतः ।
नृसिंहमुद्रया वीक्ष्य जपेन् मातृकया नरः ।
सहस्रं तत्र जप्त्वा वै सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
काली तन्त्र ।

यदि साधक वट के नीचे शव को ले जा कर वहाँ पर देवी का पूजन करता है, और उस स्थल पर बैठ कर मन्त्र का जप करता है, तो वह सम्पूर्ण सिद्धियों का अधिपति हो जाता है ।

वटमूले शवं नीत्वा तत्र देवीं प्रपूज्य च ।
स्थित्वा तत्र मनुं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
काली तन्त्र ।

दिव्याचारपरक अर्थ—

दक्षिणाचार एवं वामाचार के अनुकूल 'श्मशानस्थः स्वस्थोः०' इस पद्य की व्याख्या से हृदय में इस भाव का उदय होता है कि क्या यही कर्पूरस्तवराज है जिसके विषय में इतना संकीर्तन किया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक दे कर हम यह कहने की धृष्टता कर सकेंगे कि यह इसका बाह्य रूप है, इसका आभ्यन्तर स्वरूप

इससे पूर्णतया भिन्न है। इसकी चर्चा हम पूर्व श्लोकों की व्याख्या में भी कर आये हैं।

महाप्रलय के समय सम्पूर्ण जीव, समस्त तत्त्व, परब्रह्म में लीन हो जाते हैं। अत एव जीवों की संज्ञा शव होती है, और परब्रह्म की श्मशान। अतः दिव्यभावापन्न ब्रह्मपरायण (श्मशानस्थः) साधक मायावरण से रहित हो कर (दिग्पटधरः) स्थिरचित्त से (स्वस्थः) अथवा आत्माराम भाव से आपके सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करता है और आपके विद्याराज्ञी नामक मन्त्रराज का जप करता है। इसके प्रताप से कोटयनुकोटि सौदामिनी के समान प्रकाशमयी, ज्ञानमयी, सर्वतत्त्वमयी, आनन्दमयी विग्रहात्मिका भगवती के दर्शन होते हैं। साधक प्रेम से विह्वल हो कर कलङ्कपङ्कमय अपने मानसमय आसन पर समासीन होने के लिये विनयपूर्वक आग्रह करता है, पर भगवती शान्त भाव से खड़ी मुसकरा रही हैं। साधक के नयनों से अविरल अश्रुधारा बह रही है जिसके द्वारा वह अपने इस भाव की अभिव्यक्ति करता है कि 'हे माता ऐसा सुना है कि आप पङ्कज में निवास करती हैं, तो फिर मेरे इस पङ्कमय मानस में समासीन होने के लिये इतनी हिचकिचाहट क्यों ?' इस पर जगदम्बा साधक के हृत्पद्मरूपी आसन पर बैठ जाती हैं। अब साधक यथासाध्य समुपलब्ध समर्चनसामग्री से पराम्बा का पूजन करता है। सहस्रार से परिस्रुत अमृतमय पानीय से पदपद्मों में पाद्यप्रदान करता है, अर्घ्य के लिये अपना मन उपस्थित करता है, चित्त को पुष्प के रूप में दे कर प्राणों की धूप देता है, तथा भक्तिमयी दीपमालिका प्रज्वलित कर पुष्प-पूजन के लिये प्रस्तुत होता है।

यदि पङ्कजमध्ये वससि हे जगदम्ब तदैव।
तव वसतिर्मम मानसे पङ्कमयेऽप्युचितैव।

कमला स्तुति।

हृत्पद्ममासनं दद्यात् सहस्रारच्युतामृतैः।
पाद्यं चरणयोर्दद्यात्, मनस्त्वर्घ्यं निवेदयेत्।
चित्तं प्रकल्पयेत् पुष्पं, धूपं प्राणान् प्रकल्पयेत्।
महानिर्वाण तन्त्र।

ब्रह्मरन्ध्रचन्द्रपात्रात् तर्पयेत् तारिणीं पराम्।
तत्रस्थसूर्यपात्राच्च अर्घ्यं दद्यान् मनोहरम्।
तारा रहस्य।

सहस्रार शतदल से स्वभावतः परिस्रुत सुधा से समनुलिप्त सहस्र-संख्याक सूर्यसुमन का समर्पण करता है। इन प्रसूनों की प्राप्ति उसे ब्रह्मरन्ध्र से हुई है। वहाँ पर पिङ्गला के समीप अग्नि नामक एक ऋषि का रूप धर कर सूर्य भगवान् मस्तक में निवास करते हैं। सहस्र किरणों से अनुप्राणित इस ऋषि का आकार सूर्य के समान हैं। इस सूर्य के सम्मुख ही चित्त रहता है, अतः चित्तवृत्ति रूपी दस पुष्पों की उपलब्धि भी यहीं पर होती है, जिनके नाम हैं—

दया	ज्ञान (बुद्धि)	क्षमा	इन्द्रियनिग्रह	ज्ञान (विद्या)
दान	पुण्य	अहिंसा	आनन्द	अर्चन

अथवा

दया	ज्ञान	क्षमा	इन्द्रियनिग्रह	ज्ञानदान
पुण्य	अहिंसा	आनन्द	साधना	अर्चन।

अथवा

अनहङ्कार,	अमद,	अराग,	अमोह,	अद्वेष
अदम्भ,	अमाय,	अमात्सर्य	अक्षोभ्य,	अलोभ

अतः जो दिव्य साधक पराम्बा के पदपद्मों में श्रद्धा भक्ति के साथ इन पुष्पों का समर्पण करता है, वह इन्द्रियों का अधीश्वर हो कर सहजावस्था को प्राप्त करता है।

सूर्याग्रे वसते चित्तं चन्द्राग्रे जीवितं प्रिये।
ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र।
इडायां चन्द्रमा ज्ञेयो पिङ्गलायां रविः स्मृतः।
याज्ञवल्क्य संहिता।

तत्र सूर्योऽग्निर्नाम सूर्यमण्डलाकृतिः सहस्त्ररश्मिभिः
परिवृतः एकः ऋषिर्भूत्वा मूर्ध्नि तिष्ठति इति।
प्राणाग्निहोत्र।

दयाज्ञानक्षमापुष्पम् पुष्पम् इन्द्रियनिग्रहः।
ज्ञानदानपुण्यपुष्पम् अहिंसा पुष्पमुत्तमम्।
आनन्दपुष्पं दातव्यं पुष्पं च साधनार्चनम्।
दश पुष्पं यः प्रदद्यात् स गच्छेत् तारकापदम्।
तारा रहस्य।

अहिंसा परमं पुष्पं पुष्पम् इन्द्रियनिग्रहः।
दया पुष्पं क्षमा पुष्पं ज्ञानपुष्पं च पञ्चमम्।
इत्युक्तैरुत्तमैः पुष्पैः पूजयेत् परदेवताम्।
उत्तर तन्त्र।

सहजावस्था--

जिस समय योगी भगवती शक्ति के परिज्ञान हो जाने पर सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग कर देता है, उस समय उसे स्वयं ही सहजावस्था उपलब्ध हो जाती है, जिसके ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश से भगवती कालिका की प्राप्ति होती है।

सहजावस्था को उत्तम, ध्यान धारणा को मध्यम, जप स्तुति को अधम और होम पूजा को अधमाधम कहते हैं।

उत्पन्नशक्तिबोधस्य त्यक्तनिःशेषकर्मणः ।
योगिनः सहजावस्था स्वयमेवोपजायते ।
कालिकातनुतामेति ज्ञानादित्यप्रकाशनात् ।
महोपनिषद् ।

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा ।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाऽधमाधमा ।
कुलार्णव तन्त्र ।

———

[१६]

गृहे सम्मार्जन्या परिगलितवीर्यं हि चिकुरं
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने ।
समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत् कालि सततं
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ।

अन्वय

हे कालि, यः साधकः गृहे सम्मार्जन्या परिगलितवीर्यं समूलं चिकुरं कुजदिने मध्याह्ने प्रेम्णा तव मनुम् अपि सकृत् समुच्चार्य चितायां वितरति सः सत्कविवरः क्षितिपरिवृढः सन् सततं गजा-रूढः याति ।

व्याख्या

हे काली, अर्थात् महाकाल की पट्टमहिषी । इस पद की व्याख्या पूर्व पद्यों में विस्तार से की जा चुकी है । इस स्थल पर कालतन्त्र के

मतानुसार इस पद की व्याख्या अस्थानीय न होगी। बह्वर्थबोधक कल धातु से इस पद की निष्पत्ति हुई है। जो कालशक्ति से इस जगत्-प्रपञ्च का परिचालन करती है, अथवा जो इस विश्व का उत्पादन पालन एवं तिरोधान करती है, उसे काली कहते हैं।

'कालशक्त्या सर्वमिदं जगत् परिचालयति, सैव काली प्रकीर्तिता। यद्वा कालयति कलयति वा उत्पादयति, पालयति, प्रलयसमये पुनरात्मन्येव विलापयति इति काली। (कल धातुः बह्वर्थबोधिनी)।'

काल तन्त्र।

जो साधक मङ्गलवार के मध्याह्न अथवा मध्यरात्रि के समय गृहगत सम्मार्जनी से समूल समुत्पाटित एवं परिगलितवीर्य केश की आहुति चिता में करता है, तथा उस समय आपके द्वाविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र का समुच्चारण एक बार भी प्रेम से करता है, तो वह महाकवि एवं पृथ्वीनायक हो जाने से यावज्जीवन गज पर समारूढ हो कर सर्वत्र विचरण करता है।

इस पद्य में पदत्रय की गृह, संमार्जनी तथा परिगलित वीर्य की व्याख्या विशेष विवेचनीय है, क्योंकि विभिन्न अर्थों की आधार भित्ति यही पदत्रयी है।

गृह = (१) भवन, (२) गृहिणी (३) मदनसदन

संमार्जनी = (१) कंघी, (२) मदनदण्ड (३) दासी आदि कुलाङ्गना

परिगलितवीर्यम् = (१) परिगलितं नष्टं वीर्यं स्वस्थानस्थितिरूपिणी शक्तिः यस्य सः परिगलितवीर्यः तम्।

(२) परिगलितं मिलितं वीर्यं शुक्रं यस्मिन् सः परिगलितवीर्यः तम्।

(३) परिगलितं रमणजनितनिःसृतं च तत् वीर्यं परिगलितवीर्यं तत्।

इन विग्रहों के आधार पर 'गृहे संमार्जन्या परिगलितवीर्यम्' इस वाक्यांश के तीन अर्थ होंगे।

(१) गृहिणी से कंघी के द्वारा ऐंछे हुए उस केश की जिसकी स्वस्थानस्थितिरूपिणी शक्ति का क्षय हो गया है।

(२) सदन में संमार्जनी (कंघी) के द्वारा समुत्पाटित एवं शुक्र से समनुलिप्त कुन्तल की।

(३) दासी आदि कुलाङ्गना के मदनागार में मदनदण्ड से विहित रमण से निःसृत शुक्र की और समूल समुत्पाटित केश की।

इस अर्थत्रय की प्रामाणिकता विभिन्न तन्त्रों के आधार पर की जा सकती है। ताराकपूर स्तव में भी इसी प्रकार का एक पुरश्चरण उल्लिखित है। विधिविधान में समानता होने पर भी मन्त्र और फल में अन्तर है। उसमें 'ऐं ह्रीं स्त्रीं हूं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से आहुति देने पर साधक दीर्घायु एवं वाग्मी होता है।

भवानि श्रीमातर्निजगलितवीर्याप्तचिकुर-
मथ प्रेम्णा लब्ध्वा वचनभुवनेशीयुतमनुम्।
समुच्चार्य क्षोणीतनयदिवसे प्रेतसदने
स दीर्घायुर्वाग्मी भवति शतहोमात् क्षितितले।
ताराकर्पूर स्तोत्र।

कुलचूडामणि का मत है कि यदि मङ्गलवार की मध्य रात्रि में मुक्तकेश दिगम्बर साधक नख, केश, स्ववीर्य और संमार्जनी से समुपलब्ध अन्य समग्र वस्तु की आहुति देता है, और उसके साथ द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी का जप करता है, तो उसे पृथ्वीशाकर्षण सिद्धि समुपलब्ध होती है।

नखं केशं स्ववीर्यं च यद् यत् सम्मार्जनीगतम्।
मुक्तकेशो दिशावासा मूलमन्त्रपुरस्सरम्।

कुजवारे मध्यरात्रौ जुहुयाद् वै श्मशानके।
पठेन्नाम सहस्रं च पृथ्वीशाकर्षणं चरेत्।
कुलचूड़ामणि।

चिकुरं योगमासाद्य शुक्रोत्सारणमेव च।
जप्त्वा श्री दक्षिणां कालीं शक्तिपातशतं भवेत्।
पूजनपद्धति।

उत्तरतन्त्र का कथन है कि साधक को चाहिये कि समस्त सिद्धि की समवाप्ति के लिये मांस, रक्त, तिल, केश, नख, भात, खीर और विशेष कर घृत की आहुति दे। ऐसा करने पर उसे उत्तम सिद्धि की उपलब्धि होती है। उसकी सम्पूर्ण कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। वह मनुष्य हो कर भी देवता के समान अनेक सुखों का उपभोग करता है।

मांसं रक्तं तिलं केशं नखं भक्तं च पायसम्।
आज्यं चैव विशेषेण जुहुयात् सर्वसिद्धये।
एवं कृतेन सर्वत्र लभते सिद्धिमुत्तमाम्।
यद् यत् कामयते कामी तत् तत् प्राप्नोति निश्चितम्।
देववत् मानवो भूत्वा भुनक्ति बहुलं सुखम्।
उत्तर तन्त्र।

परन्तु इस पद्य का वास्तविक अर्थ दिव्य मार्ग के मत से सुघटित प्रतीत होता है।

मङ्गलवार का दिन है। मध्य रात्रि का समय है। सहस्रदल-कमल के निवासी परम शिव के साथ कुलकुण्डलिनी रमण कर रही है। उससे क्षरित वीर्यामृत की आहुति देनी है। इसके लिये विभिन्न उपकरणों का आयोजन है। मन स्रुवा है, वासनासहित अहङ्कार, असत्य, पैशुन्य आदि हवि हैं, और मूलाधार स्थित सर्वसंस्कार-दाहक अग्निकुण्ड में चित्स्वरूपा भगवती ज्वालारूप से विद्यमान हैं। जो साधक एक बार भी प्रेमपूर्वक आपके मन्त्र को जप कर

अपने को इसमें विलीन करता है, सर्ववृत्तियों के निरोध से निर्बीज समाधि का सम्पादन करता है, वह लौकिक एवं पारलौकिक सुखों की प्राप्ति करता है, भोग और मोक्ष की उपलब्धि करता है।

मूलाधारगते देवि देवताग्निसमुज्ज्वले।
धर्माधर्मान्विते न्यस्तैः मूलमन्त्रपुरस्सरम्।
अहं जुहोमि स्वाहेति प्रत्येकं जुहुयात् सुधीः।
अहन्ताऽसत्यपैशुन्यकामक्रोधादिकं हविः।
मन एव स्रुवः प्रोक्त उन्मनी स्रुगुदीरिता।
उत्तर तन्त्र।

धर्माधर्महविर्दीप्तावात्माग्नौ मनसा स्रुवा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् स्वाहा।
बृहन्नील तन्त्र।

गन्धर्वमालिका तन्त्र का मत है कि सदाशिव के साथ परमेश्वरी के क्षणिक रमण से उस अमृत का क्षरण होता है जिसका रङ्ग लाक्षारस के समान है। अतः इस अमृत से पराम्बा का तर्पण करना चाहिये।

सदाशिवेन देवेशि क्षणमात्रं रमेत् प्रिये।
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात् परमेश्वरि।
तदुद्भवामृतं देवि लाक्षारससमप्रभम्।
तेनामृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम्।
गन्धर्वमालिका तन्त्र।

इस पद्य में आहुतिसंख्या का निर्देश नहीं किया गया है, अतः संख्याविषयिणी जिज्ञासा का उदय स्वाभाविक है। इसकी निवृत्ति के लिये पूर्व पद्य में प्रयुक्त (पृ० १४५) सहस्र पद ही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त कुलचूड़ामणि का अधोलिखित कथन भी विशेषतया मननीय है।

जिस जप में अथवा हवन में संख्या का निर्देश न किया गया हो, उसकी संख्या १००८ माननी चाहिये।

यस्मिन् जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः।
तत्रेयं गणना प्रोक्ता गजाधिकसहस्रकम्।
·कुलचूड़ामणि।

———

[१७]

स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो
पुरो ध्यायन् ध्यायन् यदि जपति भक्तस्तव मनुम्।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरपि कवित्वामृतनदी—
नदीनः पर्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति।

अन्वय

हे मातः, यदि स्वपुष्पैः आकीर्णं कुसुमधनुषः मन्दिरं पुरः ध्यायन् ध्यायन् तव भक्तः तव मनुं जपति, अहो, तदा सः गन्धर्वश्रेणीपतिः अपि कवित्वामृतनदीनदीनः पर्यन्ते परमपदलीनः सन् प्रभवति।

व्याख्या

पूर्वोक्त पद्यद्वय में श्मशानसाधना का उल्लेख कर अब योनि-साधना की पद्धति का निरूपण करते हैं। श्मशानसाधना के अनन्तर योनिसाधना का निरूपण रहस्यमय है। जीव श्मशान पर पहुँच कर फिर योनि में प्रवेश करता है, मरण के अनन्तर पुनर्जन्म ग्रहण करता है। इस आवागमन के मूल कारण हैं श्मशान और योनि।

अतः यदि साधक सदा इन दोनों का स्मरण करता रहे, तो उसके मुक्त होने में सन्देह नहीं। इस पद्य में न तो भगवती की ही विपरीत रति का निदर्शन है और न साधक की ही सुरतसमासक्ति का। अतः समस्त विश्व की जननी योनिस्वरूपा भगवती का ध्यान इसमें वर्णित है। प्रतीकोपासना के लिये साधक स्वकीया अथवा परकीया शक्ति की योनि का ध्यान कर सकता है।

हे माता, यदि आपका उपासक स्वकीयाग्रवर्ती रजःपरिपूर्ण मदन-मन्दिर का निरन्तर ध्यान करता हुआ आपके द्वाविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र का जप करता है, तो वह गायकश्रेष्ठ गन्धर्वराज चित्ररथ के समान हो कर सुधामयी कवितानदी का पर्य्यवसानात्मक समुद्रस्वरूप हो जाता है, और देहावसान के अनन्तर आपके पदपद्मों में लीन हो जाता है, अथवा परमपद की प्राप्ति कर अकरणकरण में समर्थ हो जाता है। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है कि इस साधारण उपासक को भी फलत्रय की—गान, कवित्व और सायुज्य मुक्ति की उपलब्धि होती है।

शाक्तों ने योनि दो प्रकार की मानी है, मलिन अर्थात् रजःपरिपूर्ण और शुद्ध। इसमें प्रथम से वीराचारियों की उपासना होती है और द्वितीय से दक्षिणाचारियों की।

पुष्पहीना पशोः शक्तिः वीरस्य पुष्पसंयुता।
कुलचूडामणि।

वीराचारियों के मत से पुष्प रज का पर्य्यायवाची है, इसकी संख्या सात है। स्व पुष्प, वीर पुष्प, स्वयम्भू पुष्प, वज्र पुष्प, कुण्डोद्भव पुष्प, गोलक पुष्प और गोपीचन्दन पुष्प। इसके अतिरिक्त एक और पुष्प भी माना जाता है सर्वकालोद्भव पुष्प। इनका कथन है कि इन पुष्पों से पूजन के अनन्तर इनसे (रज से) यन्त्र का निर्माण कर उसके द्वारा शिवा की समर्चा करे।

पञ्चपुष्पेण वा सप्तपुष्पेण पूजयेत् शिवाम् ।
पूजयित्वा निशीथे तु रमणं शक्तिभिः सह ।
स्वपुष्पं च स्वयम्भूं च वज्रं कुण्डोद्भवं शिव ।
गोलकं पञ्चधा पुष्पैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
गोपीचन्दनपुष्पेण वीरपुष्पेण शङ्कर ।
सप्तपुष्पेण संपूज्य निशीथे रमणेन तु ।
उद्धृतेनैव पुष्पेण यन्त्रं कृत्वार्चयेत् शिवाम् ।

(१) स्व पुष्पम्—

विवाहितायाः कन्यायाः प्रथमे ऋतुसङ्गमे ।
तत् शोणितं महेशान स्वपुष्पं परिकीर्तितम् ।

(२) वीर पुष्पम्—

स्वस्त्रीषु मैथुने देव यत् पुष्पं समुपस्थितम् ।
तत् पुष्पं वीरपुष्पं च स्वयम्भूकुसुमं शृणु ।

(३) स्वयम्भू पुष्पम्—

अविवाहितायाः कन्यायाः लिङ्गस्पर्शाद् रजस्वला ।
तद् द्रव्यं च महादेव स्वयम्भूकुसुमं प्रभो ।

(४) वज्र पुष्पम्—

विवाहितायाः कन्यायाः पुरुषस्य च ताडनात् ।
यदि पुष्पं समुद्भूतं वज्रं तत् परिकल्पितम् ।

(५) गोपीचन्दन पुष्पम्—

पुरुषे मैथुने युक्ते यद् रक्तं शुक्रमिश्रितम् ।
क्षरते च भगाद् रक्तं तद् द्रव्यं गोपीचन्दनम् ।

(६) कुण्डोद्भव पुष्पम्—

भर्तृयुक्ता च या नारी पुरुषान्यस्य योगतः ।
रक्तं समुद्धरेद् योन्या अथवा गर्भसङ्कटात् ।
कुण्डोद्भवं तद् विज्ञेयं शृणु गोलोद्भवं प्रिय ।

(७) गोलक पुष्पम्—

स्वामिशून्या च या नारी जारयोगाद् रजस्वला।
तद् रक्तं गोलकं ज्ञेयं सर्वकालोद्भवं शृणु।

(८) सर्वकालोद्भव पुष्पम्—

मासि मासि च यद् रक्तं स्रवते योनिमण्डलात्।
तद् रक्तं परमेशान सर्वकालोद्भवं प्रिय।

सर्वोल्लास तन्त्र।

घोर कौलों ने पूर्वोक्त निर्वचन से विभिन्न नव पुष्पों की कल्पना की है।

आलिङ्गन	चुम्बन	स्तनमर्दन	दर्शन	स्पर्शन
विकाशन	घर्षण	प्रवेशन	शक्तिस्थापन --	

आलिङ्गनं चुम्बनं च स्तनयोर्मर्दनं ततः।
दर्शनं स्पर्शनं योनौ विकाशो लिङ्गघर्षणम्।
प्रवेशः स्थापनं शक्तेर्नव पुष्पाणि पूजने।

पुरश्चर्यार्णव।

दक्षिणाचारियों के मत से इनसे पूर्णतया भिन्न नव पुष्पों की कल्पना की गई है, परन्तु इन पुष्पों से योनिपूजन अभीष्ट नहीं है।

कुम्भ,	शङ्ख,	श्री,	शक्ति,	गुरु,
मुक्ति,	योगिनी,	भैरव,	बलिपात्र	—

कुम्भं शङ्खं श्रियं शक्तिं गुरुं मुक्तिं तथैव च।
योगिनीं भैरवं चैव बलिपात्रं शुभं नव।
पुष्पैरभ्यर्च्य साधारं शङ्खं संधारयाम्यहम्।

ललिताहृदय।

दिव्याचारियों के सिद्धान्त से एतद्व्यतिरिक्त अन्य दश पुष्पों की सिद्धि की गई है। इसका निर्वचन (१५४ पृष्ठ में) किया गया है।

(१) पुष्पवती योनि—

अनेक तन्त्रों का मत है कि यदि साधक, रजोमलिन योनि का अवलोकन करता हुआ, इस द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र का १०००० जप करता है, और उस जप के समय आपका ध्यान करता है, तो वह मनोरथमयी सिद्धि की उपलब्धि के साथ साथ अपनी रमणीय कविता से जनता के मानस को मोहित कर लेता है और एक लाख जप करने पर राजा होता है।

रजःकीर्णं भगं नार्याः ध्यायन् योऽयुतमाजपेत्।
स कवित्वेन रम्येण जनान् मोहयति ध्रुवम्।
तन्त्रकल्पद्रुम, मन्त्रमहोदधि।

ऋतुमत्या भगं पश्यन्नयुतं प्रजपेन् नरः।
अनर्ध्यकविता तस्य गद्यपद्यमयी भवेत्।
कुलार्णव।

कुलागारं पुष्पिताया दृष्ट्वा यो जपते नरः।
अयुतैकप्रमाणेन साधकः स्थिरमानसः।
केवलं गुप्तभावेन स तु विद्यानिधिर्भवेत्।
संस्कृताः प्राकृताः शब्दा लौकिका वैदिकाश्च ये।
वशमायान्ति ते सर्वे साधकस्य नचान्यथा।
काली तन्त्र।

कुलपुष्पयुतं दृष्ट्वा तत्र कालीं विचिन्त्य च।
विद्याराज्ञीं तु सम्पूज्य पठेन्नाम सहस्रकम्।
मनोरथमयी सिद्धिस्तस्य हस्ते सदा भवेत्।
कालीसहस्रनाम।

मलोदितां तथा दृष्ट्वा लक्षं जपति भूमिपः।
पूजनपद्धति।

रताद्यावस्था के अनन्तर रतान्तिमावस्था का, सन्तुष्टावस्था का उल्लेख अस्थानीय न होगा। रतान्त में योनि में ताम्रता आ जाती है, जिसका प्रमुख कारण है चरित रज। काम शास्त्र का कथन है कि 'तदा योनिः आताम्रा विकशिता च जायते।'

(२) रजोविरहिता योनि—

यदि साधक रजोविरहित योनि के दर्शन व्याज से आपका ध्यान करता हुआ १०००० जप करता है, तो वह विद्यानिधि हो जाता है। उसके मुखारविन्द से निर्गत सरस्वतीप्रवाह से सहृदय मुग्ध हो जाते हैं, वादी कुण्ठित हो जाते हैं। उसके काव्य के परिचय से मूर्ख पण्डित हो जाते हैं, अकवि कवि हो जाते हैं, और कवि महाकवि हो जाते हैं। इस पुरश्चरण का प्रयोग वशीकरण में भी किया जाता है।

नग्नाम्बरयुतां पश्यन्नयुतं यस्तु साधकः।
प्रजपेत् स भवेत् सद्यो विद्याया वल्लभः स्वयम्।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनः कुण्ठतां गताः।
गद्यपद्यमयी वाणी तस्य वक्त्रात् प्रवर्तते।
तत्पदे सुधियः सर्वे प्रणमन्ति मुदान्विताः।
तस्य वाक्यपरिचयाज् जडा भवन्ति वाग्मिनः।
काली तन्त्र।

अपि शिशुरकविः कविः प्रसादाद् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण।
हरविजय महाकाव्य।

सुदृशो मदनावासं पश्यन् यः प्रजपेन् मनुम्।
अयुतं स चिरादेव वाक्पतेः समतामियात्।
मन्त्रमहोदधि।

निर्मलं च तथा दृष्ट्वा वश्यार्थमयुतं जपेत्।
पूजनपद्धति।

छन्दः शास्त्र के अध्ययन एवं सरस काव्य के परिशीलन के विना ही साधक के मुखकुहर से प्रवहित काव्यामृत विद्वज्जनों के मानस को उद्वेलित करता रहता है। इसका प्रमुख कारण है जगदम्बा की अनुकम्पा जिससे उसे शक्ति का अधिगम हो जाता है। यह वही प्रतिभापर्यायवाचिनी शक्ति है जिसके विना काव्य का निर्माण ही नहीं होता। यदि अक्षरयोजना से काव्य का निर्माण भी हुआ, तो वह उपहसनीय होता है।

नाधीत्य छन्दःशास्त्राणि विनालापं कवेरपि।
गद्यपद्यमयी वाणी वक्त्रात् तस्य प्रजायते।
ताराकर्पूर व्याख्या।

शक्तिः कवित्वबीजरूपः (देवतादिप्रसादजन्मा) संस्कारविशेषः, यां विना काव्यं न प्रसरेत्, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्।
काव्यप्रकाश।

यदि साधक पूर्वोक्त पुरश्चरणपद्धति से अनुष्ठान करता है, तो मन्त्रजप के अनन्तर योनिस्तोत्र का पाठ भी अनिवार्य है।

योनि स्तोत्रम्

भगरूपा जगन्माता सृष्टिस्थितिलयान्विता ॥
दशविद्यास्वरूपात्मा योनिर्मां पातु सर्वदा ॥१॥
कोणत्रययुता देवि स्तुतिनिन्दाविवर्जिता ॥
जगदानन्दसम्भूता योनिर्मां पातु सर्वदा ॥२॥

रक्तरूपा जगन्माता योनिमध्ये सदा स्थिता ॥
ब्रह्मविष्णुशिवप्राणा योनिर्मां पातु सर्वदा ॥३॥
कार्तिकीकुन्तलं रूपं योन्युपरि सुशोभितम् ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदा योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा ॥४॥

वीर्यरूपा शैलपुत्री मध्यस्थाने विराजिता ॥
ब्रह्मविष्णुशिवश्रेष्ठा योनिर्मां पातु सर्वदा ॥५॥
योनिमध्ये महाकाली छिद्ररूपा सुशोभना ॥
सुखदा मदनागारा योनिर्मां पातु सर्वदा ॥६॥

काल्यादियोगिनी देवी योनिकोणेषु संस्थिता ॥
मनोहरा दुःखलया योनिर्मां पातु सर्वदा ॥७॥
सदाशिवो मेरुरूपो योनिमध्ये वसेत् सदा ॥
कैवल्यदा कामयुक्ता योनिर्मां पातु सर्वदा ॥८॥

सर्वदेवस्तुता योनिः सर्वदेवप्रपूजिता ॥
सर्वप्रसवकर्त्री त्वं योनिर्मां पातु सर्वदा ॥९॥
सर्वतीर्थमयी योनिः सर्वपापप्रणाशिनी ॥
सर्वगेहे स्थिता योनिः योनिर्मां पातु सर्वदा ॥१०॥

मुक्तिदा धनदा देवि सुखदा कीर्तिदा तथा ॥
आरोग्यदा वीररता पञ्चतत्त्वयुता सदा ॥११॥
योनिस्तोत्रमिदं प्रोक्तं यः पठेद् योनिसन्निधौ ॥
शक्तिरूपा महादेवी तस्य गेहे सदा स्थिता ॥१२॥

दिव्याचारपरक अर्थ—

दिव्य साधक स्वयम्भू लिङ्ग से अधिष्ठित, मूलाधार अथवा हृत्-पद्म पर स्थित त्रिकोणात्मक योनि का ध्यान बारंबार कर रहा है, तथा द्वाविंशत्यक्षरात्मक मन्त्र का मानसिक जप कर रहा है। यद्यपि उसका यह अनुष्ठान किसी कार्य की सिद्धि के लिये, किसी कामना की अवाप्ति के लिये नहीं किया जा रहा है, तथापि अनेक सिद्धियाँ उसे स्वयं ही उपलब्ध हो रही हैं। उसकी वाणी में मधुरता का सञ्चार हो रहा है, उससे समुच्चरित पदावली गानलहरी की सुमधुर झंकृति दे रही है, गानसरस्वती की अनुकम्पा से वह साक्षात् सदाशिव का दर्शन कर रहा है। तदनन्तर उसकी वाणी से रसात्मक कवितासरस्वती का

समुद्गम होता है, जिसमें अवगाहन कर सहृदय अपने को धन्य समझते हैं। इस प्रकार अज्ञानान्धकार में निमग्न विमूढ़ जनता को ज्ञानालोक के सुशीतल प्रकाश से शान्तिप्रदान करने के अनन्तर, वह स्वयं सच्चिदानन्दमयी भगवती के पदपद्मों में विलीन हो रहा है, निर्वाणमुक्ति का अधिगम कर रहा है।

मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य एवं योनिमुद्रा के परिज्ञान से मन्त्र (विद्या) सिद्धि समुपलब्ध होती है, केवल जपमात्र से नहीं। इसका यह आशय नहीं है कि 'जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः वरानने' इस सिद्धान्त का यहाँ प्रत्याख्यान किया गया है।

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
लक्षकोटिजपेनापि तस्य विद्या न सिध्यति।
शाक्तागम।

तस्मिन्नाधारपाथोजे कर्णिकायां सुशोभना।
त्रिकोणा वर्तते योनिः सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
शिवसंहिता।

स्वकीयहृदये ध्यायेद् योनिमण्डलमुत्तमम्।
रजोभिश्च समोपेतं त्रिकोणं सर्ववर्णकम्।
ताराहस्य।

———

(१८)

त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम् ।
समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो
जनो यो ध्यायेत् त्वामयि जननि स स्यात् स्मरहरः।

अन्वय

अयि जननि, नक्तं स्वयम् अपि रतानन्दनिरतः, त्वयि समासक्तः यः अपि त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि महाकालेन उच्चैः मदनरसलावण्यनिरतां स्मेरवदनां त्वां ध्यायेत् अपि, सः स्मरहरः स्यात्।

व्याख्या

हे जगज्जननी, यदि आपका साधारण साधक ध्यानैकाग्रता से स्थिरचित्त हो कर एवं 'देवो भूत्वा देवतां यजेत् (देव स्वरूप हो कर देवता की उपासना करे) इस सिद्धान्त के अनुसार स्वयं भी रात्रि के समय विपरीतरतिजनित आनन्द में निमग्न हो कर आपके वक्ष्यमाण स्वरूप का ध्यान करता है, तो वह काम आदि षड् रिपुओं के विजेता मदनदहन भगवान् शङ्कर के समान हो जाता है।

पञ्चकोणात्मक यन्त्र के ऊपर शवरूप सदाशिव के हृदय पर समासीन होने के कारण आपके मुखारविन्द में विलसमान स्मितरेखा एक अनिर्वचनीय भाव की अभिव्यक्ति करती है। 'क्या यह वही सदाशिव है जो इतना विकत्थन किया करता था।' इस भावना से मुखारविन्द पर स्मितरेखा का सञ्चरण तर्कसम्मत नहीं जचता। देहलीदीपक न्याय से इसका सम्बन्ध अग्रिम पद के साथ भी है। महाकाल के साथ प्रौढ़ सुरतविलास से समुत्पन्न आनन्द में निमग्न होने के कारण आप की स्मितरेखा अपनी क्रीड़ा से आप की प्रसन्नमुद्रा प्रदर्शित कर, भक्तों को आत्मनिवेदन के लिये प्रेरित कर रही है।

महाकाल के साथ कालिकाविहित विपरीतरति की विवेचना ध्याननिरूपण के प्रसङ्ग में (पृ० ६४-६७) विस्तार से की जा चुकी है। इस स्थल पर पार्वतीपरमेश्वर के अविनाभाव की चर्चा अनुचित न होगी। गिरा और अर्थ का, वीचि और जल का एवं शक्ति और शिव का सम्बन्ध अविनाभाव कहलाता है।

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।
कालिदास।

स्त्रीपुंरूपमिदं विश्वं शिवशक्त्यात्मकं बुधैः।
भवादृशैरुपास्यं स्यात् शिवज्ञानविशारदैः।
शिव पुराण।

अविनाभाव से समवस्थित महाकाल का ध्यान भगवती श्री दक्षिणकालिका के साथ ही हो जाता है। योनि एवं चिता के रूप में भगवती के दर्शन होते हैं और अणीयान् एवं महीयान् के रूप में महाकाल के।

इस महाकाल के विषय में अथर्ववेद का कथन है कि सृष्टि स्थिति एवं प्रलय से, निर्माण पोषण एवं संहार से, 'महादेव' पदविभूषित यह महाकाल ही संसार का पिता है। इससे बढ़ कर कोई तेज, कोई शक्ति नहीं है। इसीने ही आकाश को बनाया है, और इसीने ही पृथ्वी को रचा है। इस पर ही भूत वर्तमान एवं भविष्यत् निहित हैं।

स इमा विश्वा भुवनान्यजनयत् कालः स ईयते प्रथमोऽनुदेवः।
स एव संभुवनान्याभरत् स एव संभुवनानि पर्य्यैत्।
पिता सन्न भवत पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत् परमस्ति तेजः।
कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथवीरुतः।
कालेहभूतं भव्यं चेषितं हविस्तिष्ठते।
अथर्ववेद।

निगम एवं आगम के सामञ्जस्य के लिये भगवती विहित सृष्टि स्थिति एवं संहृति (पृ० १३५-१३७) विवेचनीय हैं।

इस अविनाभाव का एक सुन्दर उदाहरण है चणक जो विभक्त हो कर भी अविभक्त प्रतीत होता है।

मन्त्रमहोदधि में भी इसी विधि से जप का विधान प्रदर्शित किया गया है।

त्रिपञ्चारे महापीठे शवस्य हृदि संस्थिताम् ।
महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम् ।
तां ध्यायन् स्मेरवदनां विदधत् सुरतं स्वयम् ।
जपेत् सहस्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत् ।
मन्त्रमहोदधि ।

अस्मिन् पीठे यजेद् देवीं शिवरूपशवस्थिताम् ।
महाकालरतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ।
मन्त्रमहोदधि ।

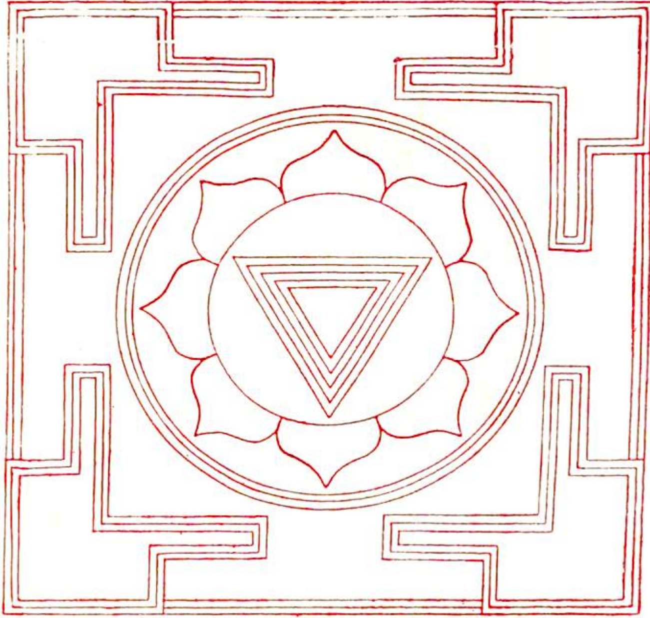
यन्त्रोद्धार विधि—

क्रीं तथा ह्रीं से समन्वित एक विन्दु मध्य में अवस्थित है। उसके ऊपर अधोमुख पञ्च समभुज त्रिकोणों की अवस्थिति है। ये एक अष्ट दल वृत्त से आवृत हैं। तदनन्तर वृत्तत्रय से आवृत्त इस के चारो ओर चतुरस्र चतुर्द्वार एक भूपुरमण्डल आलिखित है।

अथाहं कालिकायास्ते यन्त्रोद्धारं ब्रवीम्यहम् ।
सर्वार्थसिद्धिदं लोके सर्वकामप्रपूरकम् ।
त्रिकोणस्थं शून्यं तदुपरि शरत्कोणसहितं
त्रिकोणं षट्कोणं भगवति च वृत्तं वसुदलम् ।
त्रिवृत्तं तद्वाह्ये क्षितिभवनयुक्तं विजयताम्
इदं श्यामायन्त्रं मरणभयवर्गप्रमथनम् ।
देवी रहस्य ।

उत्तरास्यो लिखेन् यन्त्रं गुरुं नत्वा शिवं स्मरन् ।
निजबीजं ततो विन्दुं लज्जाबीजमतः परम् ।
पङ्क्तिक्रमे लिखित्वा तु त्रिकोणपञ्चकं क्रमात् ।
लिखित्वा वेष्टयेत् सम्यग् वृत्तेन परमेश्वरि ।
ततोऽष्टदलपद्मं च ततो वृत्तं लिखेद् बुधः ।

कालीयन्त्रम्



त्रिकोणस्थं शून्यं तदुपरि शरत्कोणसहितं
त्रिकोणं षट्कोणं भगवति च वृत्तं वसुदलम् ।
त्रिवृत्तं तद्वाह्ये क्षितिभवनयुक्तं विजयताम्
इदं श्यामायन्त्रं मरणभयवर्गप्रमथनम् ।

देवी रहस्य ।

ततो द्वाराणि कुर्वीत चतुर्दिक्षु समाहितः।
एवं यन्त्रं प्रकुर्वीत कालिकापूजने बुधः।
काली रहस्य।

आदौ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि यज् ज्ञात्वा ऽमरतां व्रजेत्।
आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्वहिर्न्यसेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम्।
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेद् अष्टदलं ततः।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद् भूपुरमेककम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्।
काली तन्त्र।

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्वहिर्न्यसेत्।
वहिस्त्रिकोणमालिख्य [1]षट्कोणं च लिखेद् वहिः।
मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम्।
षट्कोणात्तु वहिर्वृत्तं ततश्चाष्टदलं लिखेत्।
वहिर्वृत्तेन संयुक्तं भूपुरैकेण वेष्टितम्।
ज्ञात्वैवं मुक्तिमाप्नोति यन्त्रमेनं न संशयः।
कुमारी तन्त्र।

अधोवक्त्रं पञ्चकोणम् अन्योन्यं चाप्यलग्नकम्।
एवंभूतं महायन्त्रं स्थापयेत् सिंहविष्टरे।
सिद्धेश्वर तन्त्र।

आदौ षट्कोणमारभ्य त्रिकोणत्रितयं ततः।
पद्ममष्टदलं वाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत्।
मन्त्रमहोदधि।

महाविद्या शक्तिविद्या के यन्त्रों का विरचन अधोमुख होना चाहिये, अन्यथा इससे संकीर्त्यमान गूढ़ तत्त्वों की अभिव्यक्ति न हो सकेगी।

१—षट्कोण से दो त्रिकोण अभिप्रेत हैं।

यत्र यत्र महाविद्या शक्तिविद्या प्रकाशिता।
तत्र तत्र त्रिकोणं च अधोमुखमुदीरितम्।
देवत्रिकोणे कर्तव्ये ऊर्ध्वास्यं परिकीर्तितम्।
तारा रहस्य।

त्रिपञ्चारे—

इस स्थल पर त्रिपञ्चार पद का निर्वचन विवक्षणीय है। साधारणतया संख्यानिर्देश के समय 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस सिद्धान्त का अनुसरण किया जाता है। अतः त्रिपञ्चारे का अर्थ होना चाहिये ५३ कोणात्मक यन्त्र, परन्तु विशेष परिशीलन करने पर भी एतादृश यन्त्र का आलेखन बुद्धिगम्य नहीं हो रहा है। वस्तुतः इस स्थल पर ३ और ५ ये संख्यायें अभिप्रेत हैं। संख्याओं के मध्य में संकलन आदि के चिह्नों की अनवस्थिति में गुणन का चिह्न मान लिया जाता है। अतः ३ × ५ = १५ कोण ही सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त पञ्च त्रिकोणों से एक अभिनव कल्पना का उदय होता है। त्रिकोण की भुजायें वाम दक्षिण एवं दिव्य भाव से उपासकों की अभिव्यञ्जना करती है और त्रिकोणपञ्चक पूर्वनिर्दिष्ट (पृ० १४७) पञ्चविध साधनाओं की।

दिव्याचार मूलक अर्थ—

पञ्च तत्त्वों से विनिर्मित एक भूपुर के आभ्यन्तर भाग में अविद्यारूपी वृत्त से आवेष्टित एक अष्टदल वृत्त सुशोभित हो रहा है, जिसकी कर्णिकाओं में पृथ्वी, जल, अनल, अनिल, गगन, मन, बुद्धि और अहङ्कार विराजमान हैं। इस वृत्त के अन्दर पञ्च त्रिकोण से समवस्थित १५ कोण दश इन्द्रिय (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय एवं पञ्च कर्मेन्द्रिय, जिनका विवेचन २८-३३ पृष्ठों में किया जा चुका है।) एवं पञ्च प्राणों के प्रतीक हैं। एवंविध सुघटित इस देहयन्त्र के मध्य में चैतन्यस्वरूप विन्दु की स्थिति है।

निष्क्रिय एवं निर्गुण होने के कारण सदाशिव की समवस्थिति शव के समान है, जिसमें भगवती की सत्ता सूक्ष्मरूप से विराजमान है। कल्पादि में ज्ञान-इच्छा-क्रिया स्वरूपिणी सदा आनन्दमयी भगवती दक्षिणाकालिका सगुण ब्रह्मस्वरूप परमशिव महाकाल के साथ विपरीत रति से, अविनाभाव से रमण कर रही हैं।

साधक योनिमुद्रा का अवलम्बन कर एवं स्वयं शक्तिमय हो कर परमात्मा के साथ लयरूप रतानन्द का अनुभव कर रहा है, पूर्व प्रतिपादित अपने देहयन्त्र में आपकी स्थिति का चिन्तन चिदाभास रूप से, छायारूप से कर रहा है, ज्ञाता और ज्ञेय में अभेद प्रतीति के कारण अपने से आपको अभिन्न समझ रहा है। इस अद्वैतभाव के उदय होने पर आपका भक्त आपके पदारविन्द में लीन हो रहा है, कैवल्य मुक्ति का अधिगम कर रहा है।

या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।
सप्तशती।

निर्लेपं निर्गुणं शुद्धं स्वात्मानं त्रिपुरामयम्।
आत्माभेदेन सञ्चिन्त्य याति तन्मयतां नरः।
अथवाऽद्वैतभावेन आत्मानं तन्मयं स्मरेत्।
अद्वैतभावसम्पन्नः त्रिपुरीकृतविग्रहः।
आत्मन्येव यजेद् देवीम् उपचारैर्यथाविधि।
गन्धर्व तन्त्र।

भगवती के ध्यान का समय महानिशा अथवा ब्राह्म मुहूर्त बतलाया गया है। इस समय ध्यान करने पर भगवती के परमानन्दमय स्वरूप का दर्शन प्रत्यक्षीकरण अवश्य होगा—इसमें सन्देह की कल्पना का अवसर नहीं है।

महानिशायां ब्राह्मे वा मुहूर्ते ध्यानतत्परः ।
तद्रूपं परमानन्दं तदा पश्यति निश्चितम् ।
वृहन्नील तन्त्र ।

---

[१९]

सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमसिते
परं वौष्ट्रं मैषं नरमहिषयोश्छागमपि वा ।
बलिं ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ।

अन्वय

अयि असिते ते पूजायां मार्जारं वा औष्ट्रं वा मैषं वा नरमहिषयोः वा छागम् अपि वा सलोमास्थि परं पललं बलिं स्वैरं वितरतां मर्त्यवसतां सतां प्रतिपदम् अपूर्वा सर्वा सिद्धिः प्रभवति ।

व्याख्या

पूर्व पद्य में यन्त्र का निरूपण कर अब बलिविधान की विवेचना करते हैं ।

हे दक्षिणकालिका (असिते) । काली पद की विवेचना विस्तार से की जा चुकी है ।

यद्यपि असिता पद का प्रयोग कृष्णा काली के अर्थ में किया गया है तथापि इससे एक विचित्र भाव की अभिव्यञ्जना होती है । बन्धनार्थक षिङ् धातु से क्त प्रत्यय करने के अनन्तर सित पद की निष्पत्ति होती है तदनन्तर नञ् समास में 'न सिता असिता' इस

पद की सिद्धि होती है। अतः इस पद का अर्थ है अबद्धा अर्थात् नित्यमुक्तस्वभावा।

जो साधक आपकी नैमित्तिक पूजा के अवसर पर विडाल के, ऊँट के, मेष के, मनुष्य के, महिष के, अथवा छाग के मांस की और वह भी रोम एवं अस्थि सहित उत्तम मांस की बलि आपके पदपद्मों में समर्पित करता है, उस भूलोकनिवासी सज्जन को पद-पद पर अपूर्व सिद्धि की, आश्चर्यमयी कर्मसफलता की समुपलब्धि होती है।

तान्त्रिकों का मत है कि यदि साधक इन अधोलिखित जीवों के रोम अस्थि एवं त्वचा से संपृक्त मांस की बलि करता है, तो उसको अनेक सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। काली स्वरूप का अधिगम, भगवती कालिका का भवन में निवास, एवं माता के समान व्यवहार, कुल-नायकता की उपलब्धि, त्रिलोकी तथा समस्त जीवों का वशीकरण, विशेषतः राजवशीकरण, युवतिवशीकरण, विद्या लक्ष्मी यश पुत्र आदि का सुख, आदि कतिपय फलों की प्राप्ति इस पुरश्चरण की निदर्शिका है।

मेष,	महिष,	मार्जार,	मूषक,	शूकर,	छाग,
गज,	खर,	ऊँट,	हरिण,	खड्ग,	शशक,
कपोत,	टिट्टिभ,	काक,	कोकिल,	उलूक	मत्स्य,

इत्यादि इत्यादि

कालिका पुराण में विविध पशुओं का परिगणन किया गया है।

चण्डिकां बलिदानेन तोषयेत् साधकः सदा।
पक्षिणः कच्छपा ग्राहाः छागलाश्च बलाहकाः।
महिषा गोधिका शोषाः तथा नवविधा मृगाः।
चामराः कृष्णसाराश्च शराः पञ्चाननास्तथा।
मत्स्याः स्वगात्ररुधिरैः चाष्टधा बलयो मताः।

अभावे च तथैवैषां कदाचित् हयहस्तिनौ ।
छागलाः शरभाश्चैव नरश्चैव यथाक्रमात् ।
कालिका पुराण ।

निशीथे कल्याणि प्रमुदितमना यः पितृवने
बलिं ते मेषाद्यैः सनरमहिषैर्वा परिचरेत् ।
स राजानं क्षिप्रं वशयति मृगाक्षीसमुदयं
त्रिलोकीं वा भूमौ स भवति जनः सत्कविवरः ।
ताराकर्पूरराज स्तोत्र ।

अस्थिलोमत्वचायुक्तं मांसं मार्जारमेषयोः ।
उष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत् ।
भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः ।
विद्यालक्ष्मीयशःपुत्रैः सुचिरं सुखमेधते ।
श्यामारहस्य, मन्त्रमहोदधि ।

छागं वा महिषं वापि शूकरं वा पतत्रिणम् ।
हस्तिनं मूषकं वापि मार्जारं चापि मेषकम् ।
दत्वा देवि महादेव्यै स भवेत् कुलनायकः ।
तारा रहस्य ।

मेषमाहिषमार्जारखरछागनरादिकैः ।
खड्गिशूकरकापोतैः टिट्टिभैः शशकैः पलैः ।
शोणितैः सास्थिमांसैश्च कारण्डैः दुग्धपायसैः ।

× × ×

स्वजातिकुसुमैः पूज्यां जपान्ते तर्पयेत् शिवाम् ।
सर्वसाम्राज्यनाम्ना तु स्तुत्वा नत्वा स्वशक्तितः ।
शक्त्या लभन् पठेत् स्तोत्रं कालीरूपो दिनत्रयात् ।
दक्षिणा कालिका तस्य गेहे तिष्ठति नान्यथा ।
पूजनपद्धति ।

जो साधक पूर्वोक्त पशुओं के रक्त से भगवती श्री दक्षिण कालिका का तर्पण करता है, उसे अनेक सिद्धियों की उपलब्धि होती हैं—जैसे सरस कवित्वशक्ति, बृहस्पति की प्रतिभा, पाप पुण्य से असंपृक्तता, तथा जीवन्मुक्तता।

मेषमाहिषरक्तेन नररक्तेन चैव हि।
मूषमार्जाररक्तेन तर्पयेद् देवतां पराम्।
एवं तर्पणमात्रेण साक्षात् सिद्धीश्वरो भवेत्।
कविता जायते तस्य द्राक्षारसपरम्परा।
बृहस्पतिसमो भूत्वा देववद् भुवि मोदते।
न तस्य पापपुण्यानि जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
काली तन्त्र।

असृजा महिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत्।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः।
मन्त्रमहोदधि।

मन्त्रमहोदधि का मत है कि मार्जार मांस के हवन से शत्रु वश में हो जाते हैं। मधुघृत से संमिश्रित इसके मांस के हवन से स्त्रियों का आकर्षण होता है। मधु से संयुक्त शशक मांस के हवन से स्त्रियों का आकर्षण, एवं विद्या का अधिगम होता है। कनक तरु तथा काक और कोकिल के पत्तों के हवन से अविलम्ब शत्रुमारण होता है। वायस और उलूक के पत्तों के हवन से शत्रुओं में विद्वेष होता है। उल्लू के पत्तों के हवन से गर्भवती का गर्भपात हो जाता है। इत्यादि।

शस्त्राणि वशगानि स्युः हुतान्मार्जारमांसतः।
धनर्द्धिः छागमांसेन विद्याप्राप्तिस्तु पायसैः।
सद्योनिहतमार्जारमांसेन मधुसर्पिषा।
युक्तेनान्त्यजकेशाद्यैः हुतैराकर्षति स्त्रियः।
मध्वक्तशशमांसेन तत्फलं विद्यया सह।

उन्मत्ततरुभिर्दीप्ते चिताग्नौ जुहुयाच् छदैः।
कोकिलाकाकयोर्मन्त्री मारयेदचिराद् अरीन्।
वायसोलूकयोः पत्रैः होमाद् विद्वेषयेद् अरीन्।
गर्भपातः सगर्भाणाम् उलूकच्छदनैर्भवेत्।

सौत्र साहित्य में भी पूर्वोक्त पशु (पृ० १७७) ही बलिपशु माने गए हैं। कात्यायनविरचित श्राद्धकल्पसूत्र में भी अधोलिखित पशुओं का परिगणन हविरूप में किया गया है—

छाग, उष्ट्र, मेष, मत्स्य, हरिण, शकुनि, कच्छप, शूकर, महिष, खड्ग (गैंडा), लोहित छाग, तथा महाशल्क (मत्स्य)

छागोष्ट्रमेषान् आलभ्य। क्रीत्वा लब्ध्वा वा ऽस्वयंमृतान् आहृत्य पचेत्। मासद्वयं तु मत्स्यैः। मासत्रयं तु हारिणेन। चतुर औरभ्रेण। पञ्च शाकुनेन। षट् छागेन। सप्त कौर्मेण। अष्टौ वाराहेण। नव मेषमांसेन। दश माहिषेण। एकादश पार्षतेन। संवत्सरं तु गव्येन पयसा। पायसेन वा। वार्ध्रीनसमांसेन द्वादश वर्षाणि। (सप्तमी कण्डिका ६-१९) अथाक्षय्यवृप्तिः। खड्गमांसं कालशाकं लोहच्छागं च मांसम्। मधुमहाशल्कः। (अष्टमी कण्डिका १-३)

इस प्रकार यद्यपि बलिपशुओं का उल्लेख किया है, परन्तु वैदिक अथवा तान्त्रिक साहित्य इस बलिकर्म को केवल क्षत्रिय विषयक बतलाते हैं। तन्त्रों का मत है कि सात्त्विक एवं सदाचार-सम्पन्न ब्राह्मण को किसी भी अवस्था में बलि न करनी चाहिये। उसे तो दुग्ध-विनिर्मित पदार्थों की, खीर की, घृतान्वित पुष्प फल की, मधुसहित चावल की, खिचड़ी की तथा मोदकों की बलि करनी चाहिये।

ब्राह्मणो नियतः शुद्धः सात्त्विकं बलिमाचरेत्।
विप्राणां क्षीरबलयः शाल्यन्नं वाथ पायसम्।
घृतप्लुतं चर्व्यफलं पुष्पं तस्य घृतान्वितम्।

दद्यात् क्षीरं च दुग्धान्नं भक्तान्नं वा निवेदयेत् ।
शाल्यन्नं वाथ समधु कृषरं खण्डमोदकम् ।
परशुराम कल्पसूत्र ।

इसी सूत्र में क्षत्रियों के लिये पशुवलि का, वैश्यों के लिये धान्य-बलि का तथा शूद्रों के लिये क्षौद्र (मधु) बलि का विधान बतला कर, सब के लिये विकल्प में पशुबलि का प्रतिपादन किया गया है ।

राज्ञां हि पशवः शस्ता वैश्यानां व्रीहयस्तथा ।
क्षौद्रं वृषलजातीनां सर्वेषां पशवो ऽथवा ।
परशुराम कल्पसूत्र ।

ब्रह्मचारी, दयालु गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी और अहिंसक नागरिक पशुवलि न देकर अनुकल्प से बलिदान करें । इन सात्त्विक पुरुषों को चाहिये कि किसी भी दशा में जीवहिंसा न करें ।

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी गृहस्थो वा दयापरः ।
सात्त्विको ब्रह्मनिष्ठश्च यश्च हिंसाविवर्जितः ।
ते न दद्युः पशुबलिम् अनुकल्पं ददत्वपि ।

* * *

सात्त्विको जीवहिंसां वै कदाचिदपि नाचरेत् ।
तन्त्र ।

इस प्रकार पशुबलि का निषेध कर फल आदि की बलि का निरूपण किया है ।

कुष्माण्ड, कटहल, लौकी, ककड़ी, बेल, अनार, अंगूर, खजूर, लोकाठ, आम, आँवला, जामुन, एवं वन्य फलों की बलि से उतनी ही तृप्ति होती है जितनी छाग के मांस से । खोया, शालिचूर्ण, घृत, शर्करा, पुआ, यवान्नचूर्ण आदि से विनिर्मित पशुबलि से उतना ही फल होता है जितना कि सलोमास्थि पशु की बलि से । इतना ही नहीं, इन तान्त्रिकों ने पायस को गजस्थानीय, कुल्थी को

मार्जारस्थानीय, वृन्ताक (वैंगन) को कुक्कुटस्थानीय, तुम्बिका को मेषस्थानीय, मसूरान्न को महिषस्थानीय तथा तुम्बिका को उष्ट्र-स्थानीय भी माना है। इनकी बलि देने से निर्दिष्ट पशुओं की बलि हो जाती है।

कुमाण्ड-पनसाऽलाबु-कर्कटी-विल्व-दाडिमाः ।
द्राक्षा-खर्जूर-लकुच-रसाला-ऽऽमलक-जम्बुकम् ।
बलितुल्यानि चैतानि छागतुल्यानि तृप्तिषु ।

* * *

इक्षुदण्डं च कूष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम् ।
क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पशुं कृत्वा चरेद् बलिम् ।

* * *

कृत्वा घृतमयं सिंहं नरं व्याघ्रं च भैरव ।
अथवाऽपूपविकृतं यवक्षोदमयं तथा ।
घातयेच्चन्द्रहासेन तेन मन्त्रेण संस्कृतम् ।

* * *

पायसं तु गजत्वेन मार्जारत्वे कुलुत्थकम् ।
वृन्ताकं कुक्कुटत्वेन मेषत्वेन च तुम्बिकाम् ।
माहिषत्वे मसूरान्नम् उष्ट्रत्वेन च तुम्बिकाम् ।
तन्त्र ।

इस पद्य में समुल्लिखित नरबलि (नरमहिषयोः) समनुष्ठान के अधिकृत व्यक्ति भूपाल ही हो सकते हैं।

राजा नरबलिं दद्यान् नान्योपि परमेश्वरि ।
कालीकल्पलता ।

दिव्याचारपरक अर्थ—

श्री महाकाल महाराज ने मेष मार्जार आदि ६ पशुओं की बलि बतलाई है, पर इनमें से मेष तथा छाग के अतिरिक्त अन्य पशुओं का

मांस अग्राह्य है। अतः इस पद्य में परिगणित पशु किसी अन्य पदार्थ के प्रतीक प्रतीत होते हैं। ६ की संख्या भी काम क्रोध आदि षड् रिपुओं की अभिव्यञ्जिका है। गुणसाम्य से छाग काम का प्रतीक है, महिष क्रोध का प्रतीक है, मार्जार लोभ का प्रतीक है, मेष मोह का प्रतीक है, नर मद का प्रतीक है और ऊँट मात्सर्य का प्रतीक है।

अन्नदा कल्प में काम को छाग तथा क्रोध को महिष माना गया है।

कामक्रोधौ छागवाहौ बलिं दत्वा प्रपूजयेत्।
अन्नदाकल्प।

हे नित्यमुक्त स्वभावा, (असिते) जो साधुशील साधक आपके मानसिक पूजन के अवसर पर काम क्रोध आदि षड् रिपुओं की, पूर्णतया विनाश की कामना से, बलि करते हैं, आपको चित् स्वरूपा समझ कर उपायन के रूप में इनका समर्पण करते हैं, वे अपूर्व सिद्धियों की, क्रमशः पञ्चविध मुक्तियों की उपलब्धि करते हैं।

---

[२०]

वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो
दिवा मातर्युष्मच्चरणकमलध्याननिरतः।
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं
जपेल्लक्षं स स्यात् स्मरहरसमानः क्षितितले।

अन्वय

हे मातः, यः वशी दिवा हविष्याशनरतः तथा युष्मच्चरणकमलध्याननिरतः सन् लक्षं मन्त्रं प्रजपति, नक्तं नग्नः निधुवनविनोदेन च उपलक्षितः सन् परं लक्षं जपेत्, सः क्षितितले स्मरहरसमानः स्यात्।

व्याख्या

हे माता। इस कर्पूरस्तवराज में ९ बार प्रयुक्त यह पद (मातः जननि अम्ब) नवमातृका का अथवा सप्तशती कवच में उल्लिखित नव दुर्गा का ज्ञापक है।

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्।
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रिश्च महागौरीति चाष्टमम्।
नवमं सिद्धिदात्री च नव दुर्गाः प्रकीर्तिताः।
सप्तशती कवच।

अनेक पुरश्चरणों के उल्लेख करने के अनन्तर अब उस पुरश्चरण का उल्लेख करते है, जिसके अनुष्ठान से साधक मदनान्तक त्रिपुरान्तक की समानता का, 'शिवोहम्' इस भावना का अधिगम करता है।

इस अनुष्ठान के सम्पादन के लिये जितेन्द्रियता की अत्यन्त आवश्यकता है, जिसकी समवाप्ति के लिये साधक योगशास्त्र निरूपित हविष्यान्न का ग्रहण कर, भगवती श्री दक्षिणकालिका के चरण-कमलों में एकाग्रचित्त से ध्यान लगाता है और विद्याराज्ञी नामक मन्त्र का एक लक्ष जप करता है, यह दिनचर्या का विधान है। रात्रि-चर्या इससे पूर्णतया भिन्न प्रतीयमान होने पर भी उसकी उत्कट साधना की निर्देशिका है। जितेन्द्रियता एवं ध्यानैकाग्रचित्तता की इसमें अत्यन्त आवश्यकता है। रात्रि के समय वह नग्न हो कर सुरत-विनोद के साथ इसी मन्त्र का एक लक्ष जप करता है। इससे उसको शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है।

देखने में तो यह साधना सुगम प्रतीत होती है, पर है अत्यन्त कठिन, क्योंकि मन्त्र का एक लक्ष जप १०० दिनों में अथवा ४० दिनों में ही सम्भवित है, और इतने दिनों तक जितेन्द्रियता, वीर्य की अच्यु-

तता विना वज्रोली क्रिया से, एवं विना भगवती की अनुकम्पा से असम्भवित है। एक तन्त्रकार के मत से निधुवनविनोद के साथ मन्त्र का एक सहस्र जप भी अत्यन्त कठिन है, अतः विनोद पद का भाव वे इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं—

शतं भाले शतं केशे शतं सिन्दूरमण्डले।
शतत्रयं कुचद्वन्द्वे शतं नाभौ महेश्वरि।
शतं योनौ महेशानि संयोगे च शतत्रयम्।
जपेत् तत्र महेशानि तदन्ते प्रपठेत् स्तवम्।
पूजनपद्धति।

तन्त्रकल्पद्रुम का मत है कि यदि साधक दिन में हविष्याशन के साथ और रात्रि में सुरतानन्द के साथ इस मन्त्र का एक लक्ष जप करता है, तो वह राजा हो जाता है।

यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरन् जपेत्।
नक्तं निधुवनासक्तः लक्षं स स्याद् धरापतिः।
तन्त्रकल्पद्रुम।

आदौ पुरस्क्रियां कुर्यात् नियमेन यथाविधि।
लक्षमेकं जपेद् विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यः शय्यायां लक्षमानतः।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगार्हो नचान्यथा।
काली तन्त्र।

पशुभावरतो मन्त्री दिवा लक्षं जपं चरेत्।
स्वाचारनिरतो वीरो रात्रौ लक्षं जपं चरेत्।
पूजनपद्धति।

सुरतासक्ति के अभाव में भी हविष्यासनपूर्वक इस मन्त्र के जप से विद्याओं का अधिगम होता है।

अथवा मुक्तकेशश्च हविर्भुक्त्वा सुसंयुतः।
जपेत् लक्षप्रमाणेन स तु विद्यानिधिर्भवेत्।
पूजनपद्धति।

दिव्याचार मूलक अर्थ—

दिव्यभावापन्न आपका जितेन्द्रिय भक्त भी इसी क्रम से आराधना करता है। दिन के समय आपके चरणकमलों के ध्यान में निमग्न रह कर वह एक लक्ष जप करता है, जप के अनन्तर हविष्यान्न का ग्रहण करता है। रात्रि के समय दिव्य मैथुनानन्द में निरत रह कर फिर वह एक लक्ष जप करता है। इसका फल यह होता है कि वह शिव समान हो कर जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्रतिदिन कितना जपना चाहिये इस प्रश्न का उत्तर मुण्डमाला में दिया गया है।

प्रातःकाल से लगा कर मध्याह्न तक जितना जप प्रथम दिन किया जा सके, उतना ही जप प्रतिदिन करना चाहिये।

प्रातःकालं समारभ्य जपेन् मध्यदिनावधि।
प्रथमेऽहनि यज् जप्तं तज् जप्तव्यं दिने दिने।
मुण्डमाला।

इसी तन्त्र में रात्रिजपकाल का निरूपण किया गया है। रात्रि के प्रथम प्रहर के बीत जाने पर, द्वितीय एवं तृतीय प्रहर में जप करना चाहिये, चतुर्थ प्रहर में न करना चाहिये। अनेक विशिष्ट विद्वानों की सम्मति से रात्रिजप का काल इससे भिन्न है। वे कहते हैं कि रात्रि त्रियामा अर्थात् प्रहरत्रयात्मिका मानी गई है। अतः मध्यम प्रहर में ही जप करना चाहिये। प्रथम पद्धति से जप आदि के लिये ६ घंटे मिलते हैं और द्वितीय पद्धति से ४ घंटे, जो कि सर्वथा उपयुक्त हैं।

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि।
निशायां तु प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न च
मुण्डमाला

कतिपय तान्त्रिकों के मत से नित्यपूजन के अभाव में पर्वपूजन अवश्य करना चाहिये।

उत्तमा नित्यपूजा च मध्यमा पर्वपूजनम्।
अधमा मासमध्ये तु मासादूर्ध्वं पशुर्भवेत्।
समयाचार।

पर्वदिवस—

कालरात्र्यां महारात्र्यां वीररात्र्यामपि प्रिये।
महारात्र्यां चतुर्दश्याम् अष्टम्यां संक्रमेऽपि वा।
कुहूपूर्णेन्दुशुक्रेषु भौमामायां निशामुखे।
नवम्यां मङ्गलदिने तथा कुलतिथौ शिवे।
पूजनपद्धति।

षष्ठी भाद्रपदे मासे इषे कृष्णे तु पञ्चमी।
कार्तिकी नवमीयुक्ता मार्गशीर्षे तु पूर्णिमा।
पौषे चतुर्दशी कृष्णा माघे शुक्ले चतुर्थिका।
फाल्गुने नवमी कृष्णा चैत्रे कामचतुर्दशी।
राधेऽक्षयतृतीया च ज्येष्ठे कृष्णचतुर्दशी।
आषाढ़े नवमी कृष्णा श्रावणे कृष्णपञ्चमी।
समयाचार।

शुक्लकृष्णनवम्यां च तथाऽष्टम्यां विशेषतः।
एकादश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां कहूदिने।
व्यतीपाते च संक्रान्तौ तथाभिषेकवासरे।
अवश्यं पूजयेद् देवीं पञ्चतत्त्वैः प्रयत्नतः।
कुलावली।

फाल्गुने च महारात्रिः कृष्णैकादशिका तिथिः।
ज्येष्ठे या दशमी शुक्ला देवि वारयुता भृगोः।

रात्रावेकादशी चेत् स्यात् दिव्यरात्रिः प्रकीर्तिता ।
अमा भौमे संक्रमस्य कुलर्क्षग्रहणं यदि ।
भावरात्रिस्तु संप्रोक्ता भाग्यादेव तु लभ्यते ।
सिद्धरात्रिरष्टमी स्यात् चैत्रसंक्रमणान्विता ।
तृतीया माधवे शुक्ला कुलर्क्षे दारुणा तिथिः ।
दीपोत्सवचतुर्दश्याममया योग एव च ।
कालरात्रिर्महेशानि ताराकालीप्रियंकरी ।
कृष्णजन्माष्टमी देवि मोहरात्रिः प्रकीर्तिता ।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु क्रोधरात्रिः प्रकीर्तिता ।
घोररात्रिर्मार्गशीर्षे कृष्णाष्टम्यां महेश्वरि ।
चतुर्दशी भौमयुक्ता मकारेण समन्विता ।
कुलऋक्षसमायुक्ता वीररात्रिः प्रकीर्तिता ।
स्वतन्त्र तन्त्र ।



फलस्तुति

[२१]

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणमनु-
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ।
निशार्धे वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति
प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥

अन्वय

हे मातः, तव मनुसमुद्धारणम् पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् तव अनुस्वरूपाख्यम् स्तोत्रम् निशार्धे पूजासमयम् अधि वा यः तु पठति, तस्य अपि प्रलापः कवित्वामृतरसः प्रसरति ।

व्याख्या

हे माता ! यद्यपि इस पद की व्याख्या पूर्व पद्यों में विस्तारपूर्वक की जा चुकी है, तथापि इस स्थल पर भी इतना और कहने के लिये हमें विवश होना पड़ता है कि महाकाल की सम्मति से मातृमूलक उपासना ही करनी चाहिये । माता के कोमल हृदय में क्षमाप्रदान की क्षमता है । वत्स के प्रति उसका भयानक स्वरूप आकर्षक एवं रमणीय स्वरूप में परिणत हो जाता है । यह मातृशक्ति है जो हमें गर्भ में धारण करती है, जन्मग्रहण के अनन्तर अपने अमृतपरिपूर्ण स्तनों से हमारा पालन करती है, पिता, भ्राता, भगनी आदि से परिचय करा कर ज्ञान प्रदान करती है, और हमारी सम्पूर्ण आपत्तियों का निवारण करती है । इसी लिये शास्त्रकारों ने मा को प्रत्यक्ष देवता माना है । जब हमारी ऐहिक माता में इतना नैसर्गिक अनुराग है, तो

उस जगज्जननी भगवती कालिका के लिये किन पदों का प्रयोग किया जाय—कहा नहीं जा सकता। प्रकृति ने हमारे जन्मग्रहण के अवसर पर हमें 'मा' इस बीज का उपहार दिया है। अत एव हमारा प्रथम उच्चरित पद अम्मा (अम्ब) है।

महात्मा हजरत ईशा मशीह ने मातृतत्त्व का क्या ही सुन्दर उपदेश दिया है। उनका कथन है कि 'जब तक तुम बदलोगे नहीं अर्थात् दीक्षित नहीं होगे और लघु शिशु के समान नहीं होगे, स्वर्ग के भीतर न जा सकोगे।' इसकी विशद व्याख्या महात्मा पीटर ने इस प्रकार की है--'जब तुम द्वेष, छल, कपट, अहिंसा इत्यादि का परित्याग कर सद्योजात शिशु के समान शुद्ध तत्त्वमय मातृस्तन्य का पान करोगे, तब तुमको ईश्वर की (माता की) दयालुता का अनुभव होगा।

भगवती श्री दक्षिणकालिका के मन्त्राराधक को किन-किन फलों की समुपलब्धि रोती हैं इसका विवेचन पूर्व पद्यों की व्याख्या में किया जा चुका है। संक्षेपतः उसको अनायास ही--

कविता तथा विद्वत्ता का (१, २, ६, ७, १०, १६, १७ तथा २१)
प्रभुता तथा सम्पत्तिशालिता का (२, ५, ६, १५, १६ तथा २२)
सुरूपता तथा सुन्दरी सम्मोहनता का (२, ५ तथा २२)
एवं
लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियों का (१, ३, ४, ८, १०, ११, १४, १७, १८, १९, २० तथा २२)
अधिगम होता है।

यन्त्रोद्धार, ध्यान, साधनानिदर्शन, स्तुति तथा पुरश्चरण के निरूपण के अनन्तर स्तोत्रस्वरूप एवं फलस्तुति का निरूपण करते हैं।

आपके इस कर्पूरस्तव में द्वाविंशत्यक्षरी विद्याराज्ञी के (क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा— इस मन्त्र के) समुद्धार की पद्धति प्रदर्शित की गई है, इसमें आपके स्थूल

सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय, एवं सगुण तथा निर्गुण रूप का आख्यान किया गया है, और इसमें आपके पदपद्मद्वय की पूजन पद्धति की, अर्चन, हवन, बलि आदि की विधि प्रदर्शित की गई है। अतः जो साधक मध्यरात्रि के समय अथवा पूजन के समय आपके इस स्तोत्र का पाठ उच्च स्वर से करता है, चाहे वह इसका पाठ विधिविधान से, अथवा पुरश्चरणादिप्रपञ्च से विरहित हो कर ही करता है, पर इस स्तोत्र की महिमा से उसके भी प्रलाप, अर्थविहीन वाक्य समूह सरस रमणीय काव्यामृत में परिणत हो जाते हैं, अर्थात् वह कमनीय काव्य-निर्माण में कुशल हो जाता है; अथवा उसके अबुद्धिपूर्वक समुच्चरित वचन भी कान्तिदर्शिता के परिचायक होते हैं, अर्थात् वह भी ऋतवाक् हो जाता है।

पूजा पद की निरुक्ति शिव पुराण में इस प्रकार की गई है। पू पद से वेदार्थयोजना और भोगफलसिद्धि अभिव्यञ्जित होती है, अतः जिस कर्म से इनका समुद्भव होता है, उसे पूजा कहते हैं।

पूर्जायते ह्यनेनेति वेदेष्वर्थस्य योजना।
पूर्भोगफलसिद्धिश्च जायते तेन कर्मणा।
शिव पुराण।

इस पूजा का सम्पादन वैदिक (षोडशोपचार) अथवा तान्त्रिक (पञ्चोपचार) पद्धति से करना चाहिये। भगवती दक्षिणकालिका का पूजन पद्धतिद्वय से किया जाता है, वैदिक और तान्त्रिक। तान्त्रिक पद्धति के भी दो भेद माने गए हैं वामाचार और दक्षिणाचार।

द्विविधा मम पूजा स्याद् वाह्या चाभ्यन्तरापि च।
वाह्यापि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा।
श्रीमद्देवीभागवत।

विशेषतः पूजन रहस्य गुरुगम्य है। तथापि इसका विवेचन हमने अपनी 'पूजनपद्धति' नाम्नी पुस्तिका में किया है।

———

(२२)

कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं
वशस्तस्य क्षोणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ।
रिपुः कारागारं कलयति च तं केलिकलया
चिरं जीवन्मुक्तः प्रभवति स भक्तः प्रतिजनुः ।

अन्वय

प्रेमतरलं कुरङ्गाक्षीवृन्दं तम् अनुसरति । कुबेरप्रतिनिधिः क्षोणीपतिः अपि तस्य वशः भवति । तस्य रिपुः तं कारागारं कलयति । स च भक्तः केलिकलया चिरं जीवन्मुक्तः सन् प्रभवति ।

व्याख्या

प्रथम पद्य में कविता तथा विद्वत्ता का उल्लेख कर अब सुन्दरता तथा सुन्दरीसंमोहनता के, महाराजवशिता तथा सम्पत्तिशालिता के एवं लौकिक तथा पारलौकिक सिद्धियों के अधिगम की चर्चा चला कर ग्रन्थोपसंहार कर रहे हैं ।

(१) वामाचारमूलक अर्थ—

इस स्तोत्र के पाठक में ऐसी आकर्षणता आ जाती है कि मृगनयनी नितम्बिनियों का समूह प्रेम से आसक्त हो कर भोगादि की समवाप्ति के लिये उसका अनुसरण करने लगता है । इस कार्य के लिये उसे धन की आवश्यकता होती है, एतदर्थ उसे द्वितीय सिद्धि उपलब्ध होती है । कुबेर के समान सम्पत्तिशाली भूमिपाल उसके अधीन हो जाते हैं और धन आदि के उपहार से उसके समभिलषित मनोरथपूर्ति के सम्पादन में सहायक होते हैं । परन्तु उसके (स्तोत्र-पाठक के) इस अनाचारमूलक आचरण से शत्रुओं का समूह उसे परेशान करने लगता है । इस लिये वह अपनी तृतीय सिद्धि से इन

शत्रुओं को कारागार में निगडित करा देता है। तदनन्तर वह भक्त निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व तथा जीवन्मुक्त हो कर स्वतन्त्रतापूर्वक क्रीडाकला में लवलीन रहता है, तथा आगामी पुनर्जन्मों में भी एवंविध सुखोपभोग से जीवनयापन करता है।

दक्षिणाचारमूलक अर्थ—

हे भगवती, जो भक्त आपके इस कर्पूरस्तव का पाठ करता है, उसे अनेकानेक सिद्धियों की उपलब्धि होती है। उसकी अनर्गल वाणी में सरस कविता का प्रवाह प्रवहित हो कर सहृदयों के हृदय का आकर्षण करने लगता है। इसका निदर्शन 'इदं स्तोत्रं मातस्तव०' इस पद्य में कर आये हैं। अब अवशिष्ट सिद्धियों का समुल्लेख इस श्लोक में करते हैं।

हे माता, जो पुरुष आपके इस 'कर्पूर-स्तव' का केवल पाठ करता है, उसमें ऐसी अपूर्व सुन्दरता आ जाती है कि कमलनयनी कामनियाँ प्रेम विह्वल हो कर उसका अनुसरण करने लगती हैं। मनु महाराज का मत है कि 'सुन्दर पुरुष को देख कर नारी इतनी प्रेमविह्वल हो जाती है कि उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता'। परन्तु दैवी सम्पद् से समधिगत सुन्दरता पर यदि सुन्दरीसमूह प्रेम तरल हो जाता है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। इसी प्रकार भूमण्डल के शासक भी उसके अधीन हो जाते हैं जिससे उसकी प्रभुता का अनुमान लगाना असम्भव नहीं, तो दुरूह अवश्य है। प्रभुताप्राप्ति के अनन्तर वह धनाध्यक्ष कुबेर के समान सम्पत्तिशाली हो जाता है। जो पुरुष उससे जलते हैं, या उसके प्रतिकूल आचरण करने की इच्छा रखते हैं, या मन में उससे शत्रुता मानते हैं, वे सब उसे (स्तोत्रपाठक को) कारागार के समान भयानक देख कर अपने दुर्व्यवहारों से विमुख हो जाते हैं। तदनन्तर आपका वह भक्त साधक चिरजीवी हो कर विदेह के समान जीवन्मुक्त हो जाता है और इसी प्रकार अन्य जन्मों में आपकी समाराधना करता हुआ क्रमशः सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य

तया कैवल्य मुक्ति का अधिगम करता है। श्रीमद् भगवद्गीता में लिखा है कि—

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।
गीता ।

(३) दिव्याचारमूलक अर्थ—

हे माता, जो दिव्याचारसम्पन्न साधक आपके इस कर्पूरस्तव का पाठ करता है, उसके सन्निहित अनेकानेक दिव्य सिद्धियां उपस्थित हो जाती हैं। यक्षिणी, योगिनी आदि दिव्य अङ्गनायें उस पर अनुरक्त हो कर उसके पीछे इस प्रकार लग जाती हैं जिस प्रकार चुम्बक के पीछे लोहा। तदनन्तर अपने धनाध्यक्ष कुबेर के द्वारा (कुबेरः प्रतिनिधिः यस्य) सम्पत्तिप्रदाता भगवान् भूतभावन आशुतोष शङ्कर महाराज अथवा वाराहावतार में पृथ्वी का आलिङ्गन करने वाले विष्णु भगवान् उसके वश में हो जाते हैं और मनोभिलषित वरदान दे कर उसे सन्तुष्ट कर देते हैं जिसके फलस्वरूप उसके काम, क्रोध आदि छ शत्रु अनायास ही निगडित हो जाते हैं। अब सांसारिक बन्धनों से विमुक्त वह आपका भक्त पूर्व निर्दिष्ट मुक्तिपथ का पथिक हो कर पुनर्जन्म से रहित हो जाता है। (प्रति निवृत्तः जनुः यस्य सः प्रतिजनुः)



❀ श्री महाकाल महाराज ❀

देशकाल की परिधि के बहिर्भूत भगवान् महाकाल के विषय में लेखनी अवरुद्ध-सी है। इनके नाम से दो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं (१) कर्पूरस्तवराज तथा (२) महाकाल संहिता। विभिन्न शैली में विरचित होने के कारण इन दोनों ग्रन्थों को एककर्तृक मानना विवाद से विरहित नहीं है। इस स्थल पर हम विशेष न कह कर इतना कहने का अवश्य साहस करेंगे कि महाकाल संहिता के आधार पर इस कर्पूरस्तवराज के प्रणेता श्री महाकाल महाराज ही हैं।

महाकालरुद्रोदितं स्तोत्रमेतत् सदा भक्तिभावेन योऽध्येति भक्तः।
न चापन्न शोको न रोगो न मृत्युः, भवेत् सिद्धिरन्ते च कैवल्यलाभः।

आदिनाथ, परमशिव, परमेश्वर आदि अनेक नामों से व्यवहृत इस श्री महाकाल महाराज के स्वरूप, ध्यान और मन्त्र का भी उल्लेख इसी संहिता में किया गया है।

प्रलयानल के समान महाभयानक इस महाकाल का समुद्भव महाकाली की माया से हुआ है। यह महाकाली का मानसिक शिव है, यह परमशिव है, यह परात्पर है, यह गुणाकर है। कोट्यनुकोटि कालानल के समान देदीप्यमान चिताभस्म भासमान श्मशानोद्यानमाली मुण्डमाली कृतभक्तेच्छितपूर्ति मनोहरमूर्ति घोरचुम्बनप्रिय निष्क्रिय सक्रिय कालिकानुरक्त रतासक्त जटाजूटधारी भवभयहारी चतुर्भुज यह श्री महाकाल महाराज त्रिशूल, डमरु, खड्ग, और खप्पर धारण किये हुए हैं। शून्यालय में भी सर्वशून्य इन महाराज की छवि दर्शनीय है।

ॐ हूं हूं महाकाल प्रसीद प्रसीद ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

यह इनका मन्त्र है। इनके ऋषि आदि इस प्रकार हैं। अस्य श्री महाकालमन्त्रस्य कालिका ऋषिः, विराट् छन्दः, महाकालः देवता, हूं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, स्वाहा कीलकं, काल्यर्थे विनियोगः।

स्वरूपाख्यानम्—

महाकालः महाभीमः प्रलयानलसन्निभः ।
कालीमायासमुत्पन्नः कालीमानसिकः शिवः ।
महाकालः परः शम्भुः परातीतगुणाकरः ।

ध्यानम्—

कोटिकालानलाभासं चतुर्बाहुं त्रिलोचनम् ।
श्मशानाष्टकमध्यस्थं मुण्डाष्टकविभूषितम् ।
पञ्चप्रेतस्थितं देवं त्रिशूलं डमरुं तथा ।
खड्गं च खर्परं चैव वामदक्षिणयोगतः ।
बिभ्रतं सुन्दरं देहं श्मशाने भस्मभूषितम् ।
नानाशवैः क्रीडमानं कालिकां हृदयस्थिताम् ।
लालयन्तं रतासक्तं घोरचुम्बनतत्परम् ।
गृद्धगोमायुसंयुक्तं फेरवीगणसंयुतम् ।
जटापटलशोभाढ्यं सर्वशून्यालये स्थितम् ।
सर्वशून्यं मुण्डभूषं प्रसन्नवदनं शिवम् ।

मन्त्रम्—

अस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि येन रक्षेज्जगत्त्रयम् ।
कूर्चयुग्मं महाकाल प्रसीदेति पदद्वयम् ।
लज्जायुग्मं वह्निजायासंयुक्तः षोडशार्णकः ।
षोडशार्णा यथा मुख्याः सर्वश्रीचक्रमण्डले ।
तथायं सर्वकालीषु महाकालः प्रकीर्तितः ।
कालिकाऽस्य ऋषिः प्रोक्तो विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ।
देवता तु महाकालः सर्वरूपी निरञ्जनः ।
कूर्चं बीजं तथा माया शक्तिरस्य प्रकीर्तिता ।
स्वाहा कीलकमुद्दिष्टं काल्यर्थे विनियोगता ।

उपचार-प्रकरण

यद्यपि जगदम्बा भगवती श्री दक्षिण कालिका की समर्चा पञ्च, दश, द्वादश, षोडश, अष्टादश, षट्त्रिंशत्, षट्पञ्चाशत् चतुःषष्टि आदि अनेक उपचारों से तन्त्र शास्त्रों में वर्णित की गई है, तथापि किसी एक विशिष्ट उपचार के लिये विहित नियम का निदर्शन एवं विश्लेषीकरण अप्रासङ्गिक तथा अनुपयुक्त है। अतः इनका परिगणन ही वांछनीय है।

(क) पञ्च उपचार—

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च।
एते पञ्चोपचाराश्च कैवल्यफलदायिनः।
नवरत्नेश्वर।

(ख) दश उपचार—

पाद्यार्घ्याचमनीयं स्नानीयं चत्वार्यनुक्रमात्।
गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च।
पुनराचमनीयं च दशैतान् संप्रचक्षते।
महाकाल संहिता।

(ग) द्वादश उपचार—

पाद्यार्घ्याचमनं स्नानं पुनराचमनीयकम्।
गन्धाक्षतप्रसूनानि धूपदीपनिवेद्यकम्।
ताम्बूलं द्वादश प्रोक्ता उपचाराः प्रपूजने।
कुलरत्नावली।

(घ) षोडश उपचार—

पाद्यार्घ्याचमनस्नान - वसनाभरणानि च।
गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्याचमने तथा।

ताम्बूलमर्चना स्तोत्रं तर्पणं च नमस्क्रिया।
प्रयोजयेद् अर्चनायाम् उपचारांस्तु षोडश।

शारदातिलक।

(ङ) अष्टादश उपचार—

आसनं स्वागतं पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनीयकम्।
स्नानं वासोपवीतं च भूषणानि च सर्वशः।
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपम् अन्नं च तर्पणम्।
माल्यानुलेपनं चैव नमस्कारं विसर्जनम्।
अष्टादशोपचारैस्तु मन्त्री पूजां समाचरेत्।

नवरत्नेश्वर।

(च) षट्त्रिंशद् उपचार—

आसनाभ्यञ्जने तद्वद् उद्वर्तननिरीक्षणे।
सम्मानं वै सर्पिरादेः स्नपनावहने ततः।
पाद्यार्घ्याचमनीयानि स्नानीयमधुपर्ककौ।
पुनराचमनीयं च वस्त्रं यज्ञोपवीतकम्।

अलङ्कारा गन्धपुष्पे धूपदीपौ तथैव च।
ताम्बूलानि च नैवेद्यं पुष्पमाला तथैव च।
अनुलेपनशय्ये च चामरं व्यजनं तथा।
आदर्शदर्शनं चैव नमस्कारोप्यनन्तरम्।

गीतवाद्यवितानानि स्तुतिर्होमः प्रदक्षिणम्।
दन्तकाष्ठप्रदानं च ततो देवविसर्जनम्।
उपचारा इमे ज्ञेयाः षट्त्रिंशत् सुरपूजने।

सुन्दरीरहस्यवृत्ति।

प्रतिमा प्रकरण

भगवती श्री दक्षिणाकालिका का रूप साकार और निराकार दोनो है, परन्तु हमारे सदृश साधारण साधकों के लिये श्री महाकाल ने साकार स्वरूप का ही संकीर्तन किया है। भगवती जगदम्बा श्री दक्षिण कालिका की विविध प्रतिमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

	मनोमयी	मणिमयी	
हिरण्यमयी	रजतमयी	ताम्रमयी	कांस्यमयी
रीतिमयी	लौहमयी	आलेख्यमयी	आलेप्यमयी
पाषाणमयी	मृन्मयी	बालुकामयी	दारुमयी

सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत्।
पाषाणधातुसंयुक्ता रीतिकांस्यमयी तथा।
शुद्धदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते।
भविष्य पुराण

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिभयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता।
श्रीमद्भागवत

काष्ठं मधुकस्यैव

तच्चोक्तम्--

तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुन्धरे।
कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनाऽर्चयेत्।
वाराह पुराण।

पञ्चरात्रे तु--

मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टमयी न तु।
पञ्चरात्र।

पूजन-प्रकरण

उषषि मागधमङ्गलगायनैर्झटिति जागृहि जागृहि जागृहि ।
अयि कृपार्द्रकटाक्षविलोकनैर्जगदिदं जगदम्ब सुखीकुरु ।

परापूजा ।

(१) आवाहनम्—

सुमनसमूहस्वरूप निमन्त्रण-पत्रिका को अञ्जलि में रख कर भगवत्पाद श्री शङ्कराचार्य महाराज विरचित, परापूजापद्धति से अथवा वैदिक तान्त्रिक मार्ग से श्री दक्षिणकालिका की प्रतिमा का समानयन आवाहन पद से व्यपदिष्ट है ।

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वहितरते मातः एह्येहि परमेश्वरि ।
एह्येहि देवदेवेशि कालिके देवपूजिते ।
परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धिदे ।
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ।

कनकमयवितर्दि शोभमानं दिशि दिशि पूर्णसुवर्णकुम्भयुक्तम् ।
मणिमयमण्डपमध्यमेहि मातर्मम कृपया हि समर्चनं ग्रहीतुम् ।

(२) आसनम्—

तदनन्तर अर्थात् आवाहन, स्थापन, सन्निधापन तथा सम्मुखीकरण के अनन्तर समर्चाग्रहण के लिए समागत शिवसुन्दरी के लिये आसन प्रदान करना चाहिये । यह आसन ६ प्रकार का कहा गया है । (१) सुगन्धित सुमन विरचित । (२) कमनीय काष्ठ कलित । (३) विविध वसन विनिर्मित । (४) सिंह आदि के चर्म से रचित । (५) ऊनी रेशमी वस्त्रों से विहित । (६) सुवर्ण आदि धातु से खचित ।

पौष्पं दारुमयं वास्त्रं चार्मकौशेयतैजसम् ।
षड्विधं चासनं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ।
सारसङ्ग्रह ।

भगवान् श्री शङ्कराचार्य महाराज का कथन है कि—

कनकमयवितर्दिस्थापिते तूलिकाढ्ये
विविधकुसुमकीर्णे कोटिवालार्कवर्णे ।
भगवति रमणीये रत्नसिंहासनेऽस्मि-
न्नुपविश पदयुग्मं हेमपीठे निधेहि ।

(३) स्वागतम्—

आसनप्रदान के अनन्तर शुभासन पर सुखपूर्वक समासीन श्री भगवती का स्वागत कुशलप्रश्न के व्याज से करना चाहिये ।

स्वागतं कुशलप्रश्नं निगदेदग्रतस्ततः ।
ज्ञानमाला ।

(४) पाद्यम्—

तदनन्तर कमल आदि विविध पुष्पों से एवं विष्णुक्रान्ता तथा दूर्वा से समन्वित जल से पाद्य की कल्पना करनी चाहिये, और नमः इस मन्त्र से भगवती के पदपद्मों में समर्पण करना चाहिये ।

पाद्यं पदाम्बुजे दद्याद् देवस्य हृदयाणुना ।
ज्ञानमाला ।

दूर्वया सरसिजान्वितविष्णुक्रान्तया च सहितं कुसुमाढ्यम् ।
पद्मयुग्मसदृशे पदयुग्मे पाद्यमेतदुररीकुरु मातः ।

(५) अर्घ्यम्—

तदनन्तर गन्ध, पुष्प, यव, सरसों, तिल, अक्षत, दूर्वा, एवं कुश से संयुक्त जल से अर्घ्य की कल्पना करनी चाहिये, और उसे पात्र में रख कर 'स्वाहा' इस मन्त्र से करकमलों में समर्पण करना चाहिये ।

हस्ताब्जयोस्ततो दद्याद् अर्घ्यं तोयैः सुवासितैः ।
रुद्रयामल ।

यद्यपि क्रमदीपिका के आधार पर—

दत्वाऽऽसनं स्वागतमित्युदीर्य तथार्घ्यपाद्याचमनीयकानि।

अर्घ्य के अनन्तर पाद्यप्रदान का प्रतिपादन किया गया है तथापि विविध पूजापद्धतियों से प्रतिकूल होने के कारण इसकी मान्यता सन्देहावरण से आच्छन्न है।

गन्धपुष्पयवसर्षपदूर्वासंयुतं तिलकुशाक्षतयुक्तम्।
हेमपात्रनिहितं सह रत्नैरर्घ्यमेतदुररीकुरु मातः।

(६) आचमनीयकम्—

तदनन्तर जायफल, लौंग, कंकोल आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित सुशीतल जल का स्वधा इस मन्त्र से भगवती के मुखारविन्द में आचमनीयक के रूप में समर्पण करना चाहिए।

स्वधा मन्त्रेण वदने दद्याद् आचनीयकम्।
जातीलवङ्गकङ्कोलैः तदुक्तं मन्त्रवेदिभिः।
जलजद्युतिनारिकेलजातीफलकङ्कोललवङ्गगन्धयुक्तैः।
अमृतैरमृतैरिवातिशीतैर्भगवत्याचमनं विधीयतां हे।

(७) मधुपर्क—

तदनन्तर दूध, दही, घृत, मधु एवं शर्करा से विहित मधुपर्क का स्वधा इस मन्त्र से भगवती के मुखारविन्द में समर्पण करना चाहिये।

स्वधाणुना ततः कुर्यान् मधुपर्कं मुखाम्बुजे।
शारदातिलक।

माक्षिकं शर्करा सर्पिर्दधि क्षीरयुतं तथा।
मधुपर्कं कल्पयित्वा प्रदद्याद् विधिपूर्वकम्।
सर्वतः क्षौद्रमधिकं दधि सर्पिः सिता समम्।
क्षीरं तु सर्वतः स्वल्पं मधुपर्क उदाहृतः।
कुलोड्डीश।

निहितं कनकस्य सम्पुटे पिहितं रत्नपिधानकेन यत्।
तदिदं भवतीकरेऽर्पितं मधुपर्कं जननि प्रगृह्यताम्।

(८) पुनराचमनम्--

तदनन्तर शुद्ध सुगन्धित जल से पुनः आचमन कराना चाहिये।

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्याः स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्यै स्यात् पुनराचमनीयकम्।
श्री बगलापूजनपद्धति।

(६) तैलम्--

तदनन्तर अङ्ग प्रत्यङ्ग में तथा केश कलाप में लगाने के लिये सुगंधित तैल का समर्पण करना चाहिये।

एतच्चम्पकतैलमम्ब विविधैः पुष्पैर्मुहुर्वासितं
न्यस्तं रत्नमये सुवर्णचषके भृङ्गैर्भ्रमद्भिर्वृतम्।
सानन्दं सुरसुन्दरीभिरभितो हस्तैर्धृतं तन्मया
केशेषु भ्रमरप्रभेषु सकलेष्वङ्गेषु चालिप्यते।

(१०-११) उद्वर्तनम्-- उष्णोदक स्नानम्--

केशरकस्तूरीसंमिश्रित स्नेहसमन्वित सौवर्ण सार्षप अथवा गोधूमचूर्ण का समर्पण उद्वर्तनार्थ करना चाहिये। तदनन्तर उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

उद्वर्तनं विधायाथ स्नापयेद् उष्णवारिणा।
मेरुतन्त्र।

मातः कुङ्कुमपङ्कनिर्मितमिदं देहे तवोद्वर्तनं
भक्त्या हे कलयामि हेमरजसा संमिश्रितं केशरैः।
केशानामलकैर्विशोध्य विशद कस्तूरिकाद्यन्वितैः
स्नानं ते नवरत्नकुम्भसहितैः संकाशतोष्णोदकैः।

(१२-१३) दुग्धस्नानम् — शुद्ध जलस्नानम् —

तदनन्तर दुग्ध से स्नान करा कर शुद्ध उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

कामधेनुसमुद्भूतं सर्वेषां जीवनं परम्।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम्।

(१४-१५) दधिस्नानम्—शुद्ध जलस्नानम्—

तदनन्तर दधि से स्नान करा कर उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

पयसस्तु समुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम्।
दध्यानीतं मया देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।

(१६-१७) घृतस्नानम्— शुद्ध जलस्नानम्—

तदनन्तर घृत से स्नान कराकर उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

नवनीतसमुद्भूतं सर्वसन्तोषकारकम्।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।

(१८-१९) मधुस्नानम्— शुद्ध जलस्नानम्—

तदनन्तर मधु से स्नान करा कर उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु।
तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।

(२०-२१) शर्करास्नानम्--शुद्ध जलस्नानम्--

तदनन्तर शर्करा से स्नान करा कर उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

इक्षुसारसमुद्भूता शर्करा पुष्टिकारिका।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्।

(२२) शुद्ध जलस्नानम्--

तदनन्तर शुद्ध सुगन्धित जल से स्नान कराना चाहिये।

एलोशीरसुवासितैः सकुसुमैर्गङ्गादितीर्थोदकैः
माणिक्यां मणिमौक्तिकामृतयुतैः स्वच्छैः सुवर्णादिकैः।
मन्त्रान् वैदिकतान्त्रिकान् परिपठन् सानन्दमन्यादृशं
स्नानीयं परिकल्पयामि जननि, स्नानं त्वमङ्गीकुरु।

कालिका पुराण में स्नानीय द्रव्यों की कल्पना इस प्रकार की गई है—

पिष्टातकोऽथ कस्तूरी रोचनं कुङ्कुमं तथा।
गुडः क्षौद्रं पञ्चगव्यं सर्वौषधिगणास्तथा।
सिता निर्णजनं तैलं स्निग्धतैलेन तत्तिलाः।
अन्ते तोयमिति प्रोक्तं स्नानीयं कल्पकोविदैः।

(२३) वस्त्रम्--

तदनन्तर सुन्दर वस्त्रयुगल का समर्पण करना चाहिये।

बालार्कद्युति दाडमीयकुसुमप्रस्पर्द्धि सर्वोत्तमं
मातस्त्वं परिधेहि दिव्यवसनं भक्त्या मया कल्पितम्।
मुक्ताभिर्ग्रथितं च कञ्चुकमिदं स्वीकृत्य पीतप्रभं
तप्तं स्वर्णसमानवर्णमतुलं प्रावर्णमङ्गीकुरु।

साधक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अशुचि वस्त्र-प्रदान अनेक बाधा बाधाओं का जनक है।

तैलादिदूषिताद् रोगः, सच्छिद्राद् बाध्यता भवेत्।
परकीयाच्च दारिद्र्यं, जीर्णाद् आयुःक्षयो भवेत्।
दग्धाद् विपद् भवेद् आस्यदत्ते गात्रावलम्बिते।
सूचीबिद्धात् स्फोटकादि, मलिनात् कान्तिहीनता।
उप्तकेशे पुत्रनाशः, चाधौते दीनता भवेत्।
मिथ्याभिशापो भवति श्लेष्ममूत्रादिदूषिते।
मेरुतन्त्र।

(२४) नेत्ररञ्जनम्--

तदनन्तर भगवती के नेत्रों में कज्जल लगाना चाहिये।

सौवीराञ्जनमिदमम्ब चक्षुषोस्ते विन्यस्तं कनकशलाकया मया यत्।
तन्नूनं मलिनमपि त्वदक्षिसङ्गाद् ब्रह्मेन्द्राद्यभिलषणीयतामियाय।

(२५) भूषणानि--

तदनन्तर भगवती को भूषण पहिनाना चाहिये।

मञ्जीरे पदयोर्निधाय रुचिरां विन्यस्य काञ्चीं कटौ
मुक्ताहारमुरोजयोरनुपमां नक्षत्रमालां गले।
केयूराणि भुजेषु रत्नवलयश्रेणीः करेषु क्रमात्
ताटङ्के तव कर्णयोर्विनिदधे शीर्षे च चूडामणिम्।

(२६) गन्धः—

यद्यपि यक्षकर्दम, देवकर्दम, गन्धर्वकर्दम, आमोदसम्मर्द आदि विविध गन्ध तन्त्र आदि शास्त्रों में उल्लिखित हैं, तथापि गन्धों का पञ्चविधत्व सर्वमान्य है।

संघर्षजः परिमलः क्षोदजः प्राणिसम्भवः।
कृष्णसाराभिधानश्च गन्धः पञ्चविधो मतः।

सिद्धान्तसङ्ग्रह।

अतः कङ्कोल, कालागुरु कपूर कस्तूरी गोरोचन आदि से संयुक्त चन्दन, तथा गुलाब, केवड़ा, खस, हीना आदि के विविध इत्र लगाना चाहिये। इस स्थल पर लाक्षारस से पदारविन्द का रञ्जन भी अभिव्यञ्जित है।

मातर्भालतले तवातिविमले काश्मीरकस्तूरिका-
कर्पूरागुरुभिः करोमि तिलकं देहेऽङ्गरागं ततः।
वक्षोभ्राजिषु यक्षकर्दमरसैः सिक्त्वार्द्रपुष्पद्रवैः
पादौ कुङ्कुमलेपनादिभिरहं संपूजयामि क्रमात्।

(२७) सिन्दूरम्—

तदनन्तर भगवती की माँग में सिन्दूर लगाना चाहिये।

सीमन्ते ते भगवति मया सादरं न्यस्तमेतत्
सिन्दूरं मे हृदयकमले देवि हर्षं तनोतु।
बालादित्यद्युतिरिव सदा लोहिता यस्य कान्ति-
रन्तर्ध्वान्तं हरतु जगतश्चेतसा चिन्तयामि।

(२८) अक्षताः—

तदनन्तर अक्षतों का समर्पण करना चाहिये।

रत्नाक्षतैस्त्वां परिपूजयामि मुक्ताफलैर्वा रुचिरैरबिद्धैः।
अखण्डितैर्देवि यवादिभिर्वा काश्मीरपङ्काङ्किततन्दुलैर्वा।

(२९) पत्राणि—

तदनन्तर दूर्वा, अपामार्ग दल, भृंग पत्र, विल्व पत्र आदि से अर्चन करना चाहिये। विल्व पत्र के विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि भगवती को विल्व पत्र जितना प्रिय है, उतना न तो कोई पुष्प प्रिय है और न कोई पत्र। अतः त्रिपत्र विल्व पत्र से अवश्य पूजन करना चाहिये।

विल्वपत्रं यथा प्रीतिकरं देव्या वरानने।
न तथाऽन्यत् किञ्चिदस्ति पुष्पेषु प्रीतिकारकम्।
अतो यत्नेन दातव्यं विल्वपत्रं त्रिपत्रयुक्।
महाकाल संहिता।

(३०) माला:—

तदनन्तर सजातीय अथवा विजातीय, एकवर्णीय अथवा भिन्नवर्णीय सुमन समूहों से संग्रथित मालाओं का समर्पण करना चाहिये। इनके तीन भेद होते हैं वैकक्षिका, अधोरिणी और वनमाला। कतिपय तान्त्रिकों ने फलमाला, रत्नमाला आदि मालाओं का भी उल्लेख किया है।

नानापुष्पैर्विरचिता दातव्याः पुष्पमालिकाः।
महाकाल संहिता।

(३१) पुष्पाणि—

तदनन्तर अदूषित अनाघ्रात, अनिषिद्ध चयनित सुमन समूहों से भगवती का पूजन करना चाहिये। सुमन समर्चा का संकीर्तन १४५–१६१ पृष्ठों में किया जा चुका है। कालिका पुराण का मत है कि पुष्प पूजन से देवता इस लिये प्रसन्न होते हैं कि उनकी अवस्थिति पुष्पों में होती हैं। चराचरात्मक सकल जगत् का स्मरण सदा पुष्परस के रूप में किया जाता है। अधिक विवेचन करने की अपेक्षा पुष्प की इस प्रशस्य उक्ति का निर्देश ही पर्याप्त है कि पुष्पगत परा ज्योति पुष्प से ही प्रसन्न होती है। अतः तुष्टि पुष्टि लक्ष्मी एवं मोक्ष के

प्रदायक पुष्प से ही धर्म अर्थ और काम की उपलब्धि होती है। पुष्प के मूल में ब्रह्मा का, मध्य में विष्णु का, अग्र भाग में भूतभावन का एवं दलों में देवगण का निवास होता है। अतः भक्तिपरायण पुरुष को चाहिये कि वह सदा पुष्पों से देवपूजन किया करे।

पुष्पैः देवाः प्रसीदन्ति, पुष्पे देवाश्च संस्थिताः।
चराचराश्च सकलाः सदा पुष्परताः स्मृताः।
किं चातिबहुनोक्तेन पुष्पस्योक्तिर्मतल्लिका।
परं ज्योतिः पुष्पगतं पुष्पेणैव प्रसीदति।
त्रिवर्गसाधनं पुष्पं तुष्टिश्रीपुष्टिमोक्षदम्।
पुष्पमूले वसेद् ब्रह्मा पुष्पमध्ये तु केशवः।
पुष्पाग्रे तु महादेवः सर्वे देवाः स्थिता दले।
तस्मात् पुष्पैर्यजेद् देवीं नित्यं भक्तियुतो नरः।
कालिका पुराण।

भगवती के परमप्रिय पुष्पों का परिगणन इस प्रकार किया गया है—

श्वेतपुष्पं जपापुष्पं करवीरं तथा प्रिये।
तगरं मालती जाती सेवन्ती यूथिका तथा।
धत्तूराशोकबकुलश्वेतकृष्णापराजिताः।
बकपुष्पं तथा विल्वं चम्पकं नागकेशरम्।
मल्लिका झिण्टिका काञ्ची रक्तं यत् परिकीर्तितम्।
अर्कपुष्पं बर्बरं च बन्धूकं च प्रियंवदा।
अष्टम्यां च विशेषेण तुष्टा भवति पार्वती।
मुण्डमाला।

शिरीषैः कर्णिकारैश्च चम्पकैः कोविदारकैः।
बकुलैश्चैव मन्दारैः कुन्दपुष्पैः कुरण्टकैः।
लताभिर्ब्रह्मवृक्षस्य मृदु दूर्वाङ्कुरैरपि।
काञ्चनारैरशोकैश्च पुन्नागैः केतकीदलैः।
शेफालिकाभिर्यूथीभिर्जातीभिर्दमनैरपि।

शतपत्रैः मल्लिकाभिरम्लानैः बन्धुजीवकैः ।
झिण्टीभिश्च जपापुष्पैः करवीरैश्च किंशुकैः ।
पारिजातैः पाटलैश्च पद्मैर्नीलोत्पलैरपि ।
माधवीभिः मरुवकैरपराजितयाऽपि च ।
अशनैश्च कदम्बैश्च द्रोणपुष्पैः सकेशरैः ।
अर्चयेत् कुसुमैरेभिः देवीं साधकसत्तमः ।
महाकाल संहिता ।

(३१) धूपः—

इसके अनन्तर धूप जलाना चाहिये । धूप पद से उस अति मनोहर सुगन्धित द्रव्य का बोध होता है जिसका धूम नेत्र एवं नासिका को सुखदायक प्रतीत होता है। कुलार्णव ने इस पद की निरुक्ति इस प्रकार की है - धू = धूत = दूरीकृत । प = परम = अत्यन्त । अर्थात् सम्पूर्ण दोषों के साथ-साथ समस्त दुर्गन्ध के दूरीकरण से एवं परम सुगन्ध के जनन से इस द्रव्य की संज्ञा धूप है ।

नासाच्छिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽतिमनोहरः ।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां तुष्टिकारकः ।
धूताशेषमहादोषः पूतिगन्धप्रहारितः ।
परमामोदजननाद् धूप इत्यभिधीयते ।
कुलार्णव ।

यह पञ्चाङ्ग षडङ्ग, अष्टाङ्ग दशाङ्ग, द्वादशाङ्ग, अष्टादशाङ्ग आदि विविध भेदों से प्रतिष्ठित किया गया है । इसके द्रव्यों का परिगणन इस प्रकार किया गया है—

गुग्गुलु	अगुरु	सरल	देवदारु	पत्र	मलयज
ह्रीवेर	कुष्ठ	गुड	सर्जरस	कर्पूर	हरीतकी
नख	लाक्षा	शैलज	जटामासी	कस्तूरी	घृत
लोबान	मधु	सिता	शिलारस	उशीर	सिल्ह
सिद्धार्थ	नागरमोथा	इत्यादि			

लाक्षासंमिलितैः सिताभ्रसहितैः श्रीवाससंमिश्रितैः
कर्पूराकलितैः सितामधुयुतैर्गोसर्पिषा लोडितैः ।
श्रीखण्डागुरुगुग्गुलप्रभृतिभिर्नानाविधैर्वस्तुभिः
धूपं ते परिकल्पयामि जननि धूपं त्वमङ्गीकुरु ।

(३२) दीपः--

तदनन्तर दीप प्रज्वलित कर पारावतभ्रमाकार के रूप में उद्भ्रामित कर भगवती को निवेदित करे । घृतदीप को दाहिनी ओर अथवा सामने, और तैलदीप और धूप को बाईं ओर रखना चाहिये । दीर्घ अज्ञान, महा अन्धकार एवं अहङ्कार के दूरीकरण से तथा पर तत्त्व के प्रकाशन से इसकी संज्ञा दीप है । इस तेजोद्भव चतुर्वर्गप्रद दीप से विश्व पर विजय का अधिगम होता है, अतः दीप से भगवती का पूजन करना चाहिये । इस दीप को कभी भी बुझाना न चाहिये, क्योंकि दीप का निर्वापक काना होता है और दीप का हारक अंधा ।

सुप्रकाशो महादीप्तः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिः दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।
दीर्घाज्ञानमहाध्वान्ताहङ्कारपरिवर्जनात् ।
परतत्त्वप्रकाशाच्च दीप इत्यभिधीयते ।
दीपेन लोकान् जयति दीपस्तेजोद्भवः स्मृतः ।
चतुर्वर्गप्रदो दीपः तस्माद् दीपैर्यजेत् पराम् ।
नैव निर्वापयेद् दीपं देवार्थमुपकल्पितम् ।
दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
कालिका पुराण ।

इस दीप का सप्तविधत्व तन्त्रप्रतिष्ठित है ।

घृतप्रदीपः प्रथमः तिलतैलोद्भवस्ततः ।
सार्षपः फलनिर्यासजातः वाराजिकोद्भवः ।
दधिजश्चान्नजश्चैव दीपाः सप्त प्रकीर्तिताः ।

(३३) नैवेद्यम्--

तदनन्तर सौवर्ण राजत ताम्र पद्मपत्र आदि पात्रों में पक्व-अपक्व अन्न आदि पदार्थों को नैवेद्य के रूप में उपस्थित करे।

मातस्त्वां दधिदुग्धपायसमहाशाल्यन्नसन्तानकान्
सूपापूपसिताघृतैः सुबटकैः सद्राक्षरम्भाफलैः।
एलाजीरकहिङ्गुनागरनिशाकौस्तुम्बरैः संस्कृतैः
शाकैः साकमहं सुधाधिकरसैः सन्तर्पयाम्यर्पयन्।

(३४) दुग्धम्—

तदनन्तर सितासंमिश्रित दूध मलाई का समर्पण करना चाहिये।

क्षीरमेतदिदमुत्तमोत्तमं प्राज्यमाज्यमिदमुज्वलं मधु।
मातरेतदमृतोपमं पयः सम्भ्रमेण परिपीयतां मुहुः।

(३५) आचमनम्—

तदनन्तर पीने के लिये एवं कर तथा मुख के प्रक्षालन के लिये जल का निवेदन करना चाहिये।

अतिशीतमुशीरवासितं तव पानाय मया निवेदितम्।
पटपूतमिदं जितामृतं शुचि गङ्गामृतमम्ब पीयताम्।
उष्णोदकैः पाणियुगं मुखं च प्रक्षाल्य मातः कलधौतपात्रे।
कर्पूरमिश्रेण सकुङ्कुमेन हस्तौ समुद्वर्तय चन्दनेन।

(३६) फलानि—

तदनन्तर अंगूर अनार अमरूद आम जामुन केला खुमानी लोकाठ संतरा सेव आदि फलों का एवं अखरोट काजू किसमिस चिलगोला पिस्ता बादाम आदि मेवाओं का भोग लगाना चाहिये।

आम्राम्लरम्भाफलसंयुतानि द्राक्षाफलाक्षोटसमन्वितानि।
सनारिकेलानि सदाडिमानि फलानि ते देवि समर्पयामि।
कूमाण्डकोशातकसंयुतानि जम्बीरनारङ्गिसमन्वितानि।
सबीजपूराणि सयावनानि फलानि ते देवि समर्पयामि।

(३७) ताम्बूलम्—

तदनन्तर ताम्बूलद्वय का प्रदान करना चाहिये ।

कर्पूरेण युतैः लवङ्गसहितैः कङ्कोलचूर्णान्वितैः
सुस्वादुक्रमुकैः सगौरखदिरैः सुस्निग्धजातीफलैः ।
मातः केतकपत्रपाण्डुरुचिभिस्ताम्बूलवल्लीदलैः
सानन्दं मुखवासनार्थमतुलं ताम्बूलमङ्गीकुरु ।

(३८) पूगीफलम्—

तदनन्तर पूगीफल का समर्पण करना चाहिये ।

एलालवङ्गादिसमन्वितानि कङ्कोलकर्पूरविमिश्रितानि ।
ताम्बूलवल्लीदलसंयुतानि पूगानि ते देवि समर्पयामि ।

(३९) छत्रम्—

तदनन्तर छत्र से समर्चन करना चाहिये ।

मातः काञ्चनदण्डमण्डितमिदं पूर्णेन्दुबिम्बप्रभं
नानारत्नविशोभि हेमकलशं लोकत्रयाह्लादकम् ।
भास्वन्मौक्तिकजालिकापरिवृतं प्रीत्यात्महस्ते धृतं
छत्रं ते परिकल्पयामि शिरसि त्वष्ट्रा स्वयं निर्मितम् ।

(४०-४१) चामरम्—व्यजनम्

तदनन्तर चामर से एवं व्यजन से प्रमुदित करना चाहिये ।

शरदिन्दुमरीचिगौरवर्णैः मणिमुक्ताखचितैः सुवर्णदण्डैः ।
जगदम्ब विचित्रचामरैस्त्वाम् अहमानन्दभरेण बीजयामि ।

(४२) आदर्शदर्शनम्—

तदनन्तर दर्पण दिखाना चाहिये ।

मार्तण्डमण्डलनिभो जगदम्ब योऽयं भक्त्या मया मणिमयो मुकुरोऽर्पितस्ते ।
पूर्णेन्दुबिम्बरुचिरं वदनं स्वकीयम् अस्मान् विलोकय विलोलविलोचने त्वम् ।

(४३-४४-४५) वाद्यम्—गानम्—नृत्यम्—

तदनन्तर वाद्य, गान एवं नृत्य से भगवती का अनुरञ्जन करना चाहिये ।

अभिनवकमनोयैः नृत्यवादित्रगीतैः
भगवति भवदीयं मानसं रञ्जयामि ।

(४६) मन्त्र जपः—

तदनन्तर विद्याराज्ञी का कमसे कम ११०० जप करना चाहिये ।
त्वयां सावधानेन चित्तेन मातः समाकर्ण्यतां भो मया प्रार्थितासि ।

ऋष्यादिन्यास

ऋषि, छन्द, देवता आदि के अपरिज्ञान से मन्त्र फलदायक नहीं होता, अतः इनका परिज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। जो आगमविहित मार्ग से न्यासक्रिया नित्य किया करता है, वह देव स्वरूप हो कर मन्त्र सिद्धि की उपलब्धि करता है। जो न्यासरूपी कवच से संवृताङ्ग हो कर मन्त्र का जप करता है उसके दर्शन मात्र से विघ्न इस प्रकार भाग जाते हैं, जैसे पञ्चानन के दर्शन से मातङ्ग। जो मूढात्मा न्यासों को न करके जप करता है, वह विघ्नों से इस प्रकार पीडित होता है, जैसे व्याघ्रों से मृगशावक।

ऋषिच्छन्दाऽपरिज्ञानात् न मन्त्रः फलदो भवेत् ।
दौर्वल्यं याति मन्त्राणां विनियोगमजानताम् ।
वृहन्मत्स्य सूक्त ।

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदि ।
करोति साधको यच्च तत् सर्वं विफलं भवेत् ।
शाक्तानन्द तरङ्गिणी ।

आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान् नित्यं करोति यः ।
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।
यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये ।
दृष्ट्वा विघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्ट्वा यथा गजाः ।
अकृत्वा न्यासजालं यो मूढात्मा कुरुते जपम् ।
विघ्नैः स बाध्यते नूनं व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा ।
मेरु तन्त्र ।

ऋषि—जो शुद्धात्मा साधक श्री महेश्वर के मुखारबिन्द से मन्त्र का परिज्ञान कर उसकी साधना करता है, वह ऋषि इस नाम से व्यपदिष्ट होता है। गत्यर्थक ऋ धातु के कारण ऋ वर्ण का अर्थ है प्रापक, और षि इस वर्ण का अर्थ है विज्ञान। अतः ऋषि इस पद का अर्थ है विज्ञान का प्रापक।

महेश्वरमुखात् ज्ञात्वा यः साक्षात् तपसा मनुम्।
संसाधयति शुद्धात्मा स तस्य ऋषिरीरितः।
कालानल तन्त्र।

ऋगताविति धातोस्तु ऋवर्णः प्रापको मतः।
षिवर्णार्थस्तु विज्ञानम् अतस्तत्प्रापकस्तु सः।
मेरु तन्त्र।

छन्द--जिसके द्वारा मन्त्र के सम्पूर्ण तत्त्वों का आच्छादन होता है, उसे छन्द कहते हैं।

सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनात् छन्द उच्यते।
बृहन्मत्स्य सूक्त।

देवता—मन्त्र में जिसका संकीर्तन होता है, तथा साधक को जिससे सम्पूर्ण फलों की उपलब्धि होती है, उसे देवता कहते हैं।

क्रीडार्थकाद् दिवो धातोः सम्पूर्णं देवतापदम्।
साधकाय ददातीति देवता परिकीर्तिता।
मेरु तन्त्र।

ऋषि के गुरु होने के कारण इसका न्यास शीर्ष देश में अङ्गुष्ठ के द्वारा किया जाता है, छन्द के अक्षरमय तथा पदमय होने के कारण इसका न्यास मुख में मध्यमा और अनामिका से किया जाता है, देवता के हृदयस्थ होने के कारण इसका न्यास हृदय में अङ्गुष्ठरहित अङ्गुलिकाओं से किया जाता है, संलग्नाङ्गुष्ठ-अनामिका रूपी तत्त्व मुद्रा से गुह्य देश में बीज का विनिर्देश किया जाता है, मध्यम अङ्गुली

से पदद्वय में शक्ति का विनिर्देश किया जाता है, और व्यस्त हस्तयुगल से सर्वाङ्ग में कीलक का विनिर्देश किया जाता है।

गुरुत्वात् मस्तके ऋषेः न्यासस्तु परिकीर्तितः।
अक्षरत्वात् पदत्वाच्च मुखे छन्दः प्रकीर्तितः।
हृदयाम्भोजमध्यस्थां देवतां तत्र तां न्यसेत्।
गौतमीय तन्त्र।

ऋषिं न्यसेत् मूर्ध्नि देशे छन्दस्तु मुखपङ्कजे।
देवतां हृदये चैव बीजस्तु गुह्यदेशके।
शक्तिस्तु पादयोश्चैव सर्वाङ्गे कीलकं न्यसेत्।
शाक्तानन्द तरङ्गिणी।

अङ्गुष्ठं च शीर्षदेशे मध्यमानामिके मुखे।
अङ्गुष्ठरहितं देवि हृदि देवं विनिर्दिशेत्।
तत्त्वाख्यमुद्रया देवि गुह्ये बीजं विनिर्दिशेत्।
शक्तिस्तु विन्यसेद् भद्रे मध्याङ्गुल्या पदद्वये।
कीलकं विन्यसेद् देवि सर्वाङ्गे तलयोस्तथा।
काल्यर्चन चन्द्रिका।

करन्यास-अङ्गन्यास

सिद्ध मन्त्र के द्वारा विहित जप पूजन अर्चन एवं हवन करन्यास तथा अङ्गन्यास से विरहित होने पर अभीष्ट फलप्रद नहीं होते। अतः इनका विधान अनिवार्य है। अङ्गुष्ठादि षट्क में (अङ्गुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा तथा करतल करपृष्ठ में) तथा हृदयादि षट्क में (हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय तथा अस्त्र में) क्रमशः जाति षट्क का (नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् तथा फट् का) विन्यास करना चाहिये। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका से हृदय में न्यास करना चाहिये तर्जनी तथा मध्यमा से शिर में न्यास करना चाहिये, मुष्टिबद्ध हस्ताङ्गुष्ठ से शिखा में न्यास करना चाहिये, तर्जनी मध्यमा और अनामिका से नेत्रत्रय में न्यास करना चाहिये, तथा दक्षिण हस्त की

तर्जनी और मध्यमा से वाम हस्ततल पर तीन ताल देनी चाहिये।

पूजाजपार्चनाहोमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि।
अङ्गन्यासेन विधुरा न दास्यन्ति फलान्यमीः।
मुण्डमाला।

न्यसेदङ्गुष्ठमुख्येषु जातिभिर्नमसाऽथवा।
हृदादिषु षडङ्गेषु जातिषट्केन विन्यसेत्।
नमः स्वाहा वषट् हुं वौषट् फडेताश्च जातयः।
यामल।

हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वह्निवल्लभाम्।
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्।
नेत्रत्रयाय वौषट् स्याद् अस्त्राय फडिति क्रमात्।
शारदा तिलक।

हृदयं मध्यमानामातर्जनीभिः स्मृतं शिरः।
मध्यमातर्जनीभ्यां स्याद् अङ्गुष्ठेन शिखा स्मृता।
दशभिः कवचं प्रोक्तं तिसृभिर्नेत्रमीरितम्।
तर्जनीमध्यमानामा प्रोक्ता नेत्रत्रये क्रमात्।
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु ततोऽस्त्रं विन्यसेत् प्रिये।
तन्त्रसार।

(१) विनियोग—

ॐ अस्य श्री विद्याराज्ञीमन्त्रस्य महाकाल ऋषिः, उष्णिक् छन्दः, दक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, क्रीं कीलकम्, पुरुषार्थ-चतुष्टयसिद्धये (कामनासिद्धये वा) भगवती दक्षिणकालिका प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

(२) ऋष्यादिन्यास—

ॐ महाकालाय नमः। ॐ उष्णिक् छन्दसे नमः।
ॐ श्री मद्दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः। ॐ ह्रीं बीजाय नमः।
ॐ हूं शक्तये नमः। ॐ क्रीं कीलकाय नमः।

(३) करन्यास—

ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं।
ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

(४) अङ्गन्यास—

ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रूं शिखायै वषट्।
ॐ क्रैं कवचाय हुं। ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्रः अस्त्राय फट्।

(५) वर्णन्यास—

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ	नमः	हृदये।
ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ	नमः	दक्षभुजे।
ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ	नमः	वामभुजे।
ण त थ द ध न प फ ब भ	नमः	वामजङ्घायाम्।
म य र ल व श ष स ह क्ष	नमः	वामजङ्घायाम्।

इस प्रकार न्यास करने के अनन्तर जप करना चाहिये।

(४७) हवनम्

तदनन्तर जप के दशांश से हवन करना चाहिये।

(४८) तर्पणम्—

तदनन्तर निर्दिष्ट तर्पण करना चाहिये।

(४९) वलि —

तदनन्तर विन्दु-त्रिकोण चतुरस्र पर स्थापित एवं विधिवत् पूजित कुष्माण्ड नारिकेल आदि सात्त्विक वलि का (पृ० १८०-१८२) प्रदान करना चाहिये।

वलिं ते पूजायामयि वितरतां मर्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति।

(५०) नीराजनम्—

तदनन्तर हस्तप्रक्षालन कर नीराजन (आरती) करना चाहिये।

इन्द्रादयोऽप्यतितरैर्मुकुटप्रदीपैर्नीराजयन्ति सततं तव पादपीठम् ।
तस्मादहं तव शरीरमशेषमेतन्नीराजयामि जगदम्ब सहस्रदीपैः ।

(५१) पुष्पाञ्जलिः -

तदनन्तर पुष्पाञ्जलिप्रदान करना चाहिये ।

शिरसि विनिहितोऽयं रक्तपुष्पाञ्जलिस्ते
हृदयकमलमध्ये देवि हर्षं तनोतु ।

(५३) प्रदक्षिणा —

तदनन्तर प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।

पदे-पदे या परिपूजकेभ्यः सद्योऽश्वमेधस्य फलं ददाति ।
तां सर्वपापक्षयहेतुभूतां प्रदक्षिणां ते परितः करोमि ।

(५४) प्रणामः—

तदनन्दर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये ।

नमो नमो दक्षिणकालिकायै ।

(५५) स्तुतयः—

तदनन्तर कर्पूरस्तव का पाठ करना चाहिये । पाठ करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि स्तोत्र के मध्य में जो कुछ भी है वह स्तोत्र ही है. फल स्तुति आदि स्तोत्र के अङ्ग माने गये हैं ।

स्तोत्रमध्ये स्थितं यद् यद् तत् सर्वं स्तोत्ररूपकम् ।
फलस्तुत्यादिकं देवि अङ्गमित्यभिधीयते ।

रुद्र यामल ।

(५६) नित्य पूज्यमान प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाओं का विसर्जन करना चाहिये ।

सर्वश्रीमथुराप्रसादतनयैः गौरीप्रभागर्भजैः
विद्वद्वर्यभवानिदत्तगुरुतः सम्प्राप्तविद्योदयैः ।
श्रीकान्तीयसदाशिवैर्विरचिता रासोसमीक्षाऽनुजा
कर्पूरस्तवराजकस्य रुचिरा व्याख्या समाप्तिं गता ।

———

शुद्धि पत्रम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
xi	७	त्ङ्वदघ्रि	त्वदङ्घ्रि
क	८	गतामू	गतानाम्
११	२३	अथघा	अथवा
२७	५	प्रतीक	प्रतीत
३४	१४	तद्त्रयम्	तत्त्रयम्
	१६	स्महर	स्मरहर
	२०	त्रयमम्	त्रयम्
	२०	युग्मू	युग्मम्
३५	५	आनन्दमया	आनन्दमयी
	१९	हां ह्री दक्षिणे	ह्रीं ह्रीं दक्षिणे
४०	१७	जिनका	जिनकी
४१	१६	मन्त्रा हि	मन्त्रो हि
४३	१३	तदन्तर	तदनन्तर
	१४	चाच्चरेत्	चोच्चरेत्
४४	२३	तदन्तर	तदनन्तर
४६	१८	विन्द्धाश्वर	विन्द्धीश्वर
	१८	ककार का	ककार की
४७	१०	पेज	जपे
५०	१७	स्पश	स्पर्श
	२२	उष्माण	ऊष्माण
	२३	ऊपध्मानीय	उपध्मानीय
५३	२०	चतुबर्ग	चतुर्वर्ग
६९	१०	कौन पशु	और कौन पशु

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	१२	भबेन्नरः	भवेन्नरः
	१५	पराऽस्मात्	परोऽस्मात्
७१	१५	यानिप्रभेदतः	योनिप्रभेदतः
७६	१०	प्रजाजां	प्रजानां
८०	११	पशुत्व को	पशुत्व की
८३	१८	शून्य है	शून्य।
	१६	भक्तिहीनं	भक्त्यहीनं
८६	१२	इस पदों की	इन पदों की
११७	२१	अन्य स्थ ने	अन्यस्थाने
११६	१५	सतया	सक्त्या
१२२	१५	सूय	सूर्य
१२७	१४	रात्रौः	रात्रौ
	२०	मेदनि	मेदिनि
१३३	२	साहस्रा	साहस्रो
१४५	६	वीयंण	वीर्येण
१४६	१	देहा	देही
	१६	त्रिकाल में	त्रिकाल में भी
	२१	दनया चिरात्	दनयाऽचिरात्
१५१	१८	काला	कालीं
१६४	२१	वलिपात्र	बलिपात्रं
१६६	२२	स चिरादेव	सोऽचिरादेव

● ● ●